

आयुर्वेदीयग्रन्थमाला

तृतीयं पुष्पम् ।

श्रीवैद्यसोढलविरचिते

गदनिग्रहः ।



(प्रथमः प्रयोगखण्डः ।)



आचार्योपाह्वेन त्रिविक्रमात्मजेन यादवशर्मणा

संशोधितः

प्रकाशितश्च ।

(द्वितीयं संस्करणम्)

सं. १९८०

मूल्यं रूप्यकद्वयम् ।

ĀYURVEDĪYA GRANTHAMĀLĀ.

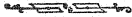
No. III.

GADANIGRAHA

(PRAYOGA KHAND VOL. 1.)

BY

VAIDYA SODHAL.



EDITED AND PUBLISHED

BY

VAIDYA JĀDAYJI TRICUMJI ĀCHĀRYA

No. 18, BORĀ BAZĀR STREET, FORT, BOMBAY.

SECOND EDITION.



1924 A. D.

Price Rs. 2 only.

Printed by Mr. Yeshvant Kashinath Padwal, at the "Tatva-Vivechaka Press," No. 3544 Parel Road, New Nagpada, Byculla, Bombay and published by Mr. Vaidy Jadvaji Tricumji Acharya No. 18, Bora Bazar Street, Fort, Bombay.

भूमिका ।



—:०:—

गदनिग्रहकर्ताऽयं सोढलवैद्यो गुर्जरदेशनिवासी, रायंकवालाख्यब्राह्मणजातीयः
वैद्यनन्दनपुत्रः, वत्सगोत्रोत्पन्नश्चेति तेन स्वविरचिते गुणसंग्रहापरपर्याये सोढलनि-
घण्टुनाम्नि ग्रन्थे प्रोक्तादात्मवृत्तान्तात् प्रतीयते । स चायं सोढलवैद्यः कस्मिन्
समये समजनीत्येतन्निर्णेतुं न किञ्चिदपि साधनमुपलब्धमस्माभिः । सोढलविरचितो
गदनिग्रहव्यतिरिक्तो गुणसंग्रहापरपर्यायः सोढलनिघण्टुरिति प्रसिद्धोऽन्योऽपि
ग्रन्थः समुपलभ्यते । तत्र धन्वन्तरिनिघण्टुराजनिघण्टुप्रभृतिष्वनुक्तानां प्रायो
गुर्जरदेशप्रसिद्धानामेकशतद्रव्याणां नामानि सुगुणान्यधिकान्युक्तानि । यद्यपि चिकि-
त्साविषयकाश्वक्रदत्तवङ्गसेनयोगरत्नाकरप्रभृतयो बहवो ग्रन्था मुद्रितास्तथापि भूरि-
प्रयोगवत्वात्, सरलत्वाच्चायमेव सर्वानतिशेते । ग्रन्थेऽस्मिन् प्रयोग-कायचिकित्सा-
शालात्रय-शाल्य-भूततन्त्र-बालतन्त्र-विषतन्त्र-रसायन-वाजीकरण—पञ्चकर्मा-
धिकाराख्या दश खण्डाः सन्ति । तत्र प्रथमे प्रयोगखण्डे वृत्ततैलचूर्णगुटील्लहासवाख्याः
षडधिकारा विद्यन्ते । तेषु षट्स्वधिकारेषु पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशतमिताः प्रत्यक्षफ-
लप्रदाश्चिकित्सायां नित्योपयोगिनश्च प्रयोगा उक्ताः । अत्रोक्तप्रयोगेषु बहवः
प्रयोगा मुद्रितेषु चिकित्साग्रन्थेष्वनुक्ताः । अतोऽयं खण्डो वैद्यानां चिकित्साया-
मतीवोपयुक्तो भविष्यतीति पृथगेवायं प्रसिद्धीकृतः । ग्रन्थस्यास्य आदर्शपुस्तकत्रय-
मुपलब्धं; एकं अस्मत्परमसुहृदां स्वर्गवासिनां वैद्यसुरारजीशर्मणां, अपरं च बुन्दी-
नगरनिवासिनां राजवैद्यानां श्रीप्रसादशर्मणां तृतीयं मोरवीनगरनिवासिनां राज-
वैद्यानां विश्वनाथ विट्ठलजी भट्ट इत्येतेषाम् । वृत्ततैलचूर्णगुटील्लहासवानां परिभाषाः
सोढलेनानुक्ता अप्यस्माभिर्ग्रन्थान्ते संनिवेशिताः । ग्रन्थस्यास्य संशोधने यथा-
मति क्रूतो यत्नः । तथापि भ्रमप्रमादादिवशाज्जातं स्खलनं क्वाप्युपलभ्येत चेत्सु-
धीभिः संशोधनीयं क्षन्तव्यश्चाहं, सफलीकर्तव्यश्च ममायं प्रयासो ग्रन्थस्यास्य पठ-
नपाठनपर्यालोचनादिनेति ॥

यादवशर्मा.

१. रायंकवालाब्राह्मणानां वसतिः सांप्रतं गुर्जरदेश एवोपलभ्यते । २. यथा—
“ वत्सगोत्रान्वयस्तत्र वैद्यनन्दननन्दनः । शिष्यः संघदयालोश्च रायंकवालवंशजः ॥
सोढलाख्यो भिषक् भालुवापदपङ्कजषड्पदः । चकारेमं चिकित्सायां समग्रं गुणसंग्र-
हम्—” इति ॥



जदनिग्रहस्य प्रयोगखण्डान्तर्गतविषयाणामनुक्रमणिका ।

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|---------------------------|-----|-----|--------------------------------|-----|-----|
| ग्रहजाचरणम् | १ | ५ | ब्रह्मे महागौर्याय घृतम् | १२ | २१ |
| प्रन्वानुक्रमणिका | १ | १६ | रक्तपित्ते दूर्वाय " " | १३ | ४ |
| घृताभिचारः प्रथमः । | | | नेत्ररोगे महात्रेफलं घृतम् | १४ | १५ |
| उबरे मञ्जिष्ठायां घृतम् | ३ | ३ | वातव्याधौ सतावरीघृतम् | १४ | २ |
| " द्वितीयं " " | " | १२ | सङ्क्षुब्ध्यायं घृतम् | " | १५ |
| " तिलवकायं " " | " | २१ | वाग्धैरे सारस्वतं घृतम् | " | २० |
| जीर्णउबरे कटुकं " | ४ | ३ | सन्तानार्थं कलघृतम् | १५ | ६ |
| श्वभिमान्ये अभिघृतम् | " | २० | क्षतक्षीणे श्वघ्न्यायं घृतम् | " | २३ |
| ग्रहण्यां चाङ्गीघृतम् | ५ | ६ | कामलायां द्राक्षायां " | १६ | ५ |
| शुद्धश्रेणे द्वितीयं " | " | १८ | कुष्ठे महावज्रकं " | " | ९ |
| शुद्धे शधिकं घृतम् | " | २५ | " द्वितीयं " " | " | १३ |
| " हृत्पायं " " | ६ | २ | " तित्तकं " " | " | १८ |
| रक्तपित्ते वासायं " | " | ९ | " महातित्तकं " " | " | २७ |
| " महावासार्थं " | " | १६ | " द्वितीयं " " | १७ | १३ |
| शुद्धे दवाङ्गं " | " | २५ | प्लङ्घि रोहितकं घृतम् | १८ | ३ |
| " लघुनष्टम् | ७ | ४ | " विल्वार्थं " | " | १८ |
| " नाराचकं घृतम् | " | १४ | सर्वोदरे द्विपञ्चमूलायं " | " | २३ |
| कुष्ठे नलिनीघृतम् | " | २७ | उदरे ब्राह्मी " | १९ | २ |
| शुद्धे विश्वार्थं घृतम् | ८ | ९ | कासे कण्टकारीघृतम् | " | ८ |
| " षट्पलं " | " | १४ | " द्वितीयं " " | " | १३ |
| " महाषट्पलं " | " | १९ | " च्युत्पायं घृतम् | " | १८ |
| कुष्ठे नीलं " | ९ | १ | ब्रह्मे गौर्याय " " | " | २७ |
| " महानीलं " | " | १३ | " शुग्गुल्लं तित्तकं " | २० | ८ |
| " त्रिफलायं " | १० | ७ | शोषे द्राक्षायां " | " | २५ |
| " आवर्तकीघृतम् | " | १४ | नेत्ररोगे त्रिफलायं " | २१ | ७ |
| शुद्धश्रेणे चव्यायं घृतम् | " | २१ | " पटोलायं " | " | २१ |
| प्रमेहे घान्वन्तरं " | ११ | १ | उदरे विन्दुघृतम् | २२ | ५ |
| बालरोगे कुमारकन्याणकं | | | शुद्धे महाविन्दुघृतम् | " | १३ |
| घृतम् | " | १८ | " विन्दुघृतम् | " | २४ |
| उन्मादे ब्राह्मीघृतम् | १२ | ७ | गुल्मे द्वितीयं महाविन्दुघृतम् | २३ | २ |
| श्ले शीघ्रपुरकार्यं घृतम् | " | १४ | कुष्ठे विन्दुघृतम् | " | ७ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|-----------------------------------|-----|-----|------------------------------------|-----|-----|
| वातव्याधौ द्वितीयं प्रमारणी तैलम् | ४७ | २२ | केशवृद्धौ द्वितीयं शृङ्गराज तैलम् | ६२ | १६ |
| ” तृतीयं ” | ४८ | १६ | केशवृद्धौ तृतीयं ” | ” | १९ |
| वातव्याधौ चतुर्थं ” | ४९ | १७ | ” बृहद्भृङ्गराजाद्यं तैलम् | ” | २२ |
| वातरक्तं अतामरीतैलम् | ५० | ४ | केशरांग असनाद्यं ” | ६३ | ११ |
| वातव्यधौ द्वितीयं ” | ” | १६ | शिरारंगे षड्विन्दुतैलम् | ” | १४ |
| ” राक्षस तैलम् | ५१ | २ | ” द्वितीयं ” | ” | २३ |
| ” शतह्वातलम् | ” | २६ | दन्तरोगे बकुलाद्य तैलम् | ६४ | ४ |
| ” मूलकतैलम् | ५२ | ६ | ” नीलसहचराद्यं ” | ” | ९ |
| ” सहचरतैलम् | ” | १६ | मुखरोगे इरिमदाद्यं ” | ” | १४ |
| ” द्वितीयं ” | ५३ | ५ | दन्तरोगे द्वितीयभिरिमेदाद्यं | ६५ | २ |
| ” रथनाकतैलम् | ” | १८ | ” खदिराद्यं ” | ” | १३ |
| सर्वाङ्गवाते श्वंष्ट्याद्यं तैलम् | ५४ | १८ | ज्वरे बृहत्क्ष्वादि तैलम् | ” | २६ |
| वातरक्ते खड्गाकपद्मकं ” | ५५ | २ | ” लघुलाक्षादि तैलम् | ६६ | १५ |
| ” महापद्मकं ” | ” | ६ | सन्निपातज्वरे जात्यादि- तैलम् | ” | ६७ |
| ज्वरे तृतीयं ” | ” | १५ | ज्वरे षट्चरणं तैलम् | ” | १४ |
| वातव्याधौ बृहन्माषतैलम् | ५६ | ६ | शोषे शिरीषाद्यं ” | ” | १७ |
| बाहुरोगे लघुपाषाणतैलम् | ” | २१ | ” सुकुमारतैलम् | ” | ६९ |
| वातव्याधौ तृतीयं महाभाषं ” | ” | २६ | अशसि लघुकासीसाद्यं तैलम् | ” | ७० |
| ” दशाङ्गतैलम् | ५७ | १२ | ” पृथुकासीसाद्यं ” | ” | ५ |
| ऊरुस्तम्भ सैन्धवाद्यं तैलम् | ५८ | ४ | ” चित्रकाद्यं ” | ” | १२ |
| वातरोगे कुमुमाद्यं ” | ” | ९ | कुष्ठे शिंशपासारतैलम् | ” | २० |
| भगन्दर मागध्याद्यं ” | ” | ३० | ” वज्रकं तैलम् | ” | २७ |
| ” चित्रकाद्यं ” | ५९ | २ | ” महावज्रकं ” | ७१ | ६ |
| गण्डभालाग्रामज तोदाद्यं ” | ” | ८ | ” श्वेतकरवीराद्यं ” | ” | १३ |
| वातव्याध्यावश्वगन्धाद्यं ” | ” | १७ | ” सिन्दूरार्द्यं ” | ” | १८ |
| वातरोगे द्वितीयमश्व- गन्धाद्यं ” | ६० | १५ | ” कुष्ठकालानलं ” | ” | २३ |
| कुंकुमाद्यं मुखकान्तिदं ” | ” | २६ | ” कनकक्षीर्याद्यं ” | ” | ७२ |
| वातरक्तं अष्टौषुकाद्यं ” | ६१ | ९ | पामायाभार्द्रिकाद्यं ” | ” | २२ |
| कर्णरोगे लघुक्ष्वा तैलम् | ” | २० | दहुरोगे दाढ्याद्यं सूर्यपाक- तैलम् | ” | २७ |
| ” बृहत्क्षारतैलम् | ६२ | २ | कुष्ठे गुग्गुलवाद्यं तैलम् | ७३ | ११ |
| नेत्ररोगे शृङ्गराजतैलम् | ” | १३ | | | |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|--|-----|-----|------------------------------|-----|-----|
| कुष्ठे विदावगं तैलम् | ७३ | १६ | कुमिरोगे महावीर्यं तैलम् | ८७ | २ |
| ” महापुगन्धं ” | ” | २३ | अन्धवृद्धौ गन्धर्वतैलम् | ” | २६ |
| ” मरीचाद्यं ” | ७४ | १४ | कर्णरोगे कुष्ठायं तैलं | ८८ | ६ |
| ” आमरिकं ” | ” | २६ | शिरोरोगे महानीलं ” | ” | ४ |
| त्रणे महाकषायं ” | ७५ | १२ | कुष्ठे त्रिफलाद्यं ” | ” | २८ |
| वल्मीके मनःशिलाद्यं ” | ” | २१ | मज्जिष्ठाद्यं ” | ” | ९ |
| गण्डमालायां फणिञ्जहाद्यं ” | ” | २५ | कुष्ठे सिद्धार्थकतैलम् ” | ” | २१ |
| ” काकादनतैलम् | ७६ | ९ | चूर्णाधिकारस्तृतीयः । | | |
| रक्तपित्ते मूर्धाद्यं तैलम् | ” | १६ | गुल्मे दिङ्गवाद्यं चूर्णम् | ९० | ३ |
| कुष्ठे विदावनं ” | ” | २२ | शुले द्वितीयं ” | ” | १६ |
| ” जीवन्ध्याद्यं ” | ७७ | २२ | गुल्मे शार्दूलं ” | ” | ११ |
| पामाया जीरकाद्यं तैलम् | ” | ७ | ” नाराचकं ” | ” | ९ |
| कुमिरोगे विडङ्गद्यं ” | ” | १० | ” पूतिकाद्यं ” | ” | १२ |
| वातरोगे शुद्धयंतैलम् | ” | १५ | ” दिङ्गवाद्यं ” | ” | ७१ |
| ” द्वितीयं ” | ” | २७ | श्रासे विजयं ” | ” | २० |
| ” सहचरं तैलं | ७८ | १४ | वातरोगे अजमोदाद्यं ” | १२ | ८ |
| ” नीलसहचरतैलम् | ” | २३ | ” धामाद्यं ” | ” | २१ |
| ” दशमूत्राद्यं तैलम् | ७३ | ८ | अतिसारे कपित्थाष्टकं | ९३ | ६ |
| भस्मे गन्धतैलम् | ८० | ८ | ग्रहण्यां द्वितीयं ” | ” | १३ |
| बृहत्सहचरतैलम् | ८१ | ५ | ग्रहण्यां दाडिमाष्टकम् ” | ” | २३ |
| तरुवाद्यं तैलम् | ” | २२ | अतिसारे द्वितीयं ” | ९४ | २ |
| व्याघ्रतैलम् | ८२ | १३ | गलरोगे एलाद्यं ” | ” | ११ |
| वातारिणतैलम् | ८३ | ८ | अरोचके वृद्धैलाद्यं ” | ” | १६ |
| दाहगके सारिवाद्यं तैलं | ” | १३ | ” कर्पूराद्यं ” | ” | २५ |
| वातरोगे दशहं ” | ” | २४ | ” त्रगलाद्यं ” | ९५ | ५० |
| ” कर्पूराद्यं ” | ८४ | १२ | गुल्मे त्रिलवणाद्यं ” | ” | १३ |
| ज्वरे लाक्षादिकं ” | ” | २० | अरोचके सूक्ष्मैलाद्यं ” | ” | २३ |
| कुष्ठे अन्वामनं ” | ८५ | ३ | ” लवङ्गाद्यं ” | ९६ | ५ |
| ” महानीलं ” | ” | १२ | ” द्वितीयं ” | ” | १८ |
| पलिते नील्याद्यं ” | ” | २४ | ” तृतीयं ” | ” | २४ |
| कक्षस्तम्भे द्विध्व- मूलाद्यं तैलम् | ८६ | ७ | रक्तपित्ते चन्दनाद्यं ” | ९७ | ६ |
| अरीसि दन्ध्याद्यं ” | ” | २५ | प्रतिदयाये व्योषाद्यं ” | ” | १९ |
| | | | शोषे घाडवं ” | ९८ | २ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|---------------------------------|-----|-----|--------------------------|-----|-----|
| शोथे महापाह्वं चूर्णम् | १८ | १० | दन्तरोगे तित्ककं चूर्णम् | १०६ | २८ |
| अरोचके दाडिमायं | ११ | १९ | ॥ पीतकं | १०७ | ७ |
| कासे लघुतालीसायं | ११ | २३ | गळरोगे कालकं | ११ | १४ |
| शुल्मे वार्वूलं | १९ | ६ | मुखरोगे द्वितीयं पीतकं | ११ | १९ |
| उदरे नारायणं | ११ | ११ | कासे जीवन्त्यायं | ११ | २४ |
| ॥ हृषुपायं | ११ | २७ | अतिसारे भूमिम्बायं | १०८ | ६ |
| ॥ नाराचकं | १०० | ८ | ग्रहण्यां पाठायं | ११ | ११ |
| ॥ सुवर्णसमकं | ११ | १६ | ॥ नागरायं | ११ | १५ |
| कुष्ठे पटोलायं | १०१ | ४ | राजयक्ष्मणि सितोपलायं | ११ | २० |
| ॥ द्राक्षायं | ११ | ११ | योनिदोषे पुष्यासुगं | ११ | २६ |
| आमवाते अलम्बुपायं | १८ | १८ | पाण्डुरोगे योगराजं | १०९ | १२ |
| ॥ द्वितीयमल- | | | कुष्ठ त्रिफलायं | ११० | २ |
| म्बुपायं | ११ | २५ | मन्दाग्नौ व्योषयं | ११ | ७ |
| श्रासकासे विडङ्गायं | १०२ | ४ | पाण्डुरोगे खण्डसमकं | ११ | १२ |
| मन्दाग्नौ वडवानलं | ११ | १३ | शोफे पाठायं | ११ | २३ |
| ॥ द्वितीयं | ११ | १६ | कुष्ठे बाकुचिकायं | ११ | २७ |
| ग्रहण्यामग्निमुखं | ११ | १९ | ॥ पृथुनिम्बपञ्चकं | १११ | ४ |
| शुल्मेद्वितीयमग्निमुखं | ११ | २४ | ॥ बृहत्पञ्चानिम्बकं | ११ | ९ |
| ॥ वृद्धमिमुखं | १०३ | ४ | मन्दाग्नौ रवणभारकरं | ११२ | ८ |
| अग्निमान्द्ये वैश्वानरं चूर्णम् | १०४ | ६ | शूले सामुद्रायं चूर्णम् | ११ | २५ |
| शुल्मे द्वितीयं | ११ | ३ | ॥ तुम्बकयं | ११३ | ७ |
| ॥ तृतीयं | ११ | १२ | ॥ हिङ्गवष्टकं | ११ | १२ |
| अग्निर्द्वयर्थं जवाला- | | | अरोचके द्वितीयं | ११ | १७ |
| मुखं | ११ | २३ | मन्दाग्नौ रमठायं | ११ | २२ |
| उदावर्ते नाराचकं | ११ | २८ | सर्वाङ्गुले चित्रकायं | ११ | २७ |
| मेघावृष्ट्यर्थं सारस्वतं | १०५ | ७ | मन्दाग्नौ सैन्धवायं | ११४ | १२ |
| बृहत्सारस्वतं | ११ | १६ | वातव्याधौ सामुद्रायं | ११ | १७ |
| अशौरोगे यवानिकायं | ११ | २५ | रसायनार्थं नारसिंहं | ११ | २३ |
| कासश्वासे विभीतिकायं | १०६ | ६ | अतिसारे गङ्गाधरं | ११५ | १ |
| हिक्काश्वासे रेणुकायं | ११ | ११ | शुल्मे कटुत्रिकायं | ११ | २६ |
| ॥ सुरसायं | ११ | १८ | स्थूल्ये व्योषयं | ११६ | ९ |
| तमकश्वासे शक्यायं | ११ | २३ | वातकासे विडङ्गायं | ११ | १९ |
| | | | शुल्मे वचायं चूर्णम् | ११ | २३ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|------------------------------|-----|-----|----------------------------|-----|-----|
| पाण्डुरोगे किराततिक्तायं | | | ग्रहण्यां पञ्चामृतसः | १२३ | २६ |
| चूर्णम् | ११७ | ४ | मन्दाग्रौ पञ्चसर्प चूर्णम् | १२४ | ८ |
| कुष्ठादौ खण्डसर्पं | ” | १२ | छर्षी बदरायं | ” | १३ |
| कुष्ठे बाकुचयायं | ” | २४ | उदरे नवक्षारकं | ” | २० |
| उदरे भस्मार्कचूर्णम् | ११८ | १४ | मन्दाग्रामवज्रमोदायं | ” | २५ |
| अर्शसि पूतीकरञ्जायं | ११९ | १० | दन्तरोगे जारीपत्रायं | ” | २८ |
| गुल्मे यवक्षारायं | ” | १५ | कासे जातीफलायं | २२५ | ४ |
| ज्वरातिसारे व्योषायं | ” | २० | ग्रहण्यां दाडिमायं | ” | १४ |
| शोफे कृष्णायं | १२० | २ | मन्दाग्रामवामलक्यादि | ” | २५ |
| श्वसहृद्रोगयोर्हिङ्गुपञ्चकं | ” | ७ | ह्यारोगे मेथिकायं | ” | २९ |
| शोषे तिलायं | ” | १० | कामन्दूदौ राजयोगः | १२६ | ८ |
| वधर्मरोगे बिल्वमूलायं | ” | १३ | क्षय आभायं | ” | २४ |
| सर्वमेहेष्विन्द्रयवायं | ” | १८ | पिप्पल्यायं | १२७ | ७ |
| शूले शकैरायं | ” | २३ | मन्दाग्रौ रुचकायं | ” | १७ |
| आनाहे द्विस्तरं | ” | | ” सिंहणचूर्णम् | ” | २२ |
| हिङ्गवायं | ” | २६ | अर्शसि सुरणायं चूर्णम् | ” | २७ |
| पानीयच्छायायां | | | वातरोगे हरीतकीयोगः | १२८ | ४ |
| मुस्तायं | ” | २९ | विद्रवौ भूनिम्बाय चूर्णम् | ” | ७ |
| मन्दाग्रौ शतपुष्पायं | १२१ | ३ | ज्वरे किराततिक्तायं | ” | १६ |
| गुल्मे नारायणं | ” | १२ | कासे दुरालभायं | ” | २३ |
| ” त्र्युषणायं | ” | २० | ग्रहण्यां पिप्पली- | | |
| मन्दाग्रौ सन्धवायं | ” | २५ | मूलायं | ” | १२६ |
| आमातीसारे पिप्प- | | | ग्रहण्यां कुठेरकायं | १२९ | २ |
| ल्यायं | १२२ | ४ | शोफे अयोरजक्षूणम् | ” | १५ |
| पीनसे चव्यायं | ” | ९ | किराततिक्तादिलौहं | १३० | ११ |
| कासेऽजमोदादिभस्मचूर्णम् | ” | ४१ | प्रवाहिकायां कुट- | | |
| दाहुरोगे द्राक्षादिचूर्णम् | ” | २३ | जायं | ” | १८ |
| पाण्डुरोगे नवायसं चूर्णम् | १२३ | २ | गुल्मे समशर्करं | ” | २३ |
| राजयक्ष्मणि द्वितीयं | | | शोषे तिलायं | ” | २८ |
| बृहन्नवायसं | ” | ६ | मन्दाग्रौ आमलकायं | १३१ | ३ |
| मन्दाग्रौ शुण्ठ्यायं चूर्णम् | ” | १२ | ” सौवर्चलायं | ” | ८ |
| हृद्रोगे तिक्तकं | ” | १५ | ” अग्निचूर्णम् | ” | १२ |
| लोकुष्ठकायं | ” | २१ | ” सिंहणचूर्णम् | ” | १६ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|------------------------------|-----|-----|-----------------------------|-----|-----|
| अग्निमान्द्येऽभयाद्या | | | कुष्ठे विषगुटिका | १४३ | २ |
| गुटिकाधिकारश्चतुर्थः । | | | ,, लङ्गुलीगुटिका | ,, | ९ |
| गुटिका | १३२ | ३ | कण्डूनां त्रिजातगुटिका | ,, | १८ |
| अर्शसि कांकायनवटकः | ,, | १६ | मुखरोगे खदिरगुटिका | ,, | २३ |
| गुल्मे कांकायनगुटिका | ,, | २६ | ,, द्वितीया | १४४ | १४ |
| ,, निकुम्भाद्या गुटिका | १३३ | १५ | ,, तृतीया | ,, | २० |
| विडम्बन्धेऽभयावटकाः | ,, | २२ | गलरोगे मरीचाद्या गुटिका | ,, | २५ |
| पाण्डुरोगे वज्रकगुटिका | १३४ | ८ | ,, पिप्पल्याद्या | १४५ | २ |
| श्ले शम्बूकाद्या गुटिका | ,, | २७ | कफरोगे वत्सनाभाद्या | ,, | ७ |
| अग्निमान्द्ये कल्याणवटकाः | १३५ | ८ | त्रिकटुकाद्या गुटिका | ,, | १२ |
| क्षतक्षीणे एलाद्या गुटिका | ,, | २१ | श्वसे भाङ्गयाद्या | ,, | १७ |
| ,, सर्पिगुटिका | १३६ | २ | ज्वरे त्रिद्रुताद्यो मोदकः | ,, | २० |
| पाण्डुरोगे मण्डूरवटकः | ,, | १५ | तृषायां कम्पिह्लाद्यो | ,, | २३ |
| ,, द्वितीयो | ,, | २५ | पार्श्वश्ले त्रिफलाद्यो | ,, | २७ |
| शोषे क्षारगुटिका | १३७ | ८ | ज्वरे सप्तलाद्यो | १४६ | ४ |
| कुष्ठे विडम्बसाराद्या गुटिका | ,, | १६ | भ्रमे कृष्णाद्या गुटिका | ,, | १३ |
| ,, माणिभद्रवटकः | ,, | २३ | ज्वरातिसारे कटुङ्गाद्या | | |
| अर्शसि सूरणवटकाः | १३८ | २ | वटकाः | ,, | १६ |
| ,, लघुसूरणवटिका | ,, | १९ | प्लीहोदरे रोहितकवटकाः | ,, | २३ |
| ,, मरीचाद्या गुटिका | ,, | २२ | गुहपाकविधिः | १४७ | २ |
| अर्शसि कलिङ्गाद्या गुटिका | ,, | २७ | धातुक्षये महाकल्याणको | | |
| गुल्मे गुहवटकाः | १३९ | २ | गुहः | ,, | ९ |
| अतिसारेऽभयाद्या वटकाः | ,, | ५ | ग्रहण्यां कल्याणको | १४८ | २ |
| सर्वातिसारेऽङ्गुलवटिका | ,, | ८ | ,, यवान्याद्या गुटिका | ,, | ८ |
| ,, बृहदङ्गुलवटिका | ,, | १४ | प्रमेहे चन्द्रप्रभा | ,, | १५ |
| अतिसारे कटुङ्गाद्या गुटिका | ,, | २१ | पित्ते कल्याणका | १४९ | ४ |
| ग्रहण्यां चित्रकाद्या | १४० | १० | अर्शसि प्राणदा | ,, | १३ |
| ,, क्षारगुटिका | ,, | १५ | अग्निमान्द्ये वार्ताकगुटिका | १५० | ६ |
| ,, तालिसाद्या गुटिका | ,, | २६ | पाण्डुरोगेऽभयाद्यो मोदकः | ,, | १२ |
| क्षयरोगे मरीचादिवटिका | १४१ | १४ | गुल्मेऽभयाद्या वटकाः | ,, | २४ |
| लवङ्गाद्या गुटिका | ,, | २० | विसूचिकायां जीरकाद्या | | |
| कुष्ठे तुवरास्थिवटकाः | १४२ | ३ | गुटिका | १५१ | ८ |
| ,, खदिरादिवटिका | ,, | १५ | बृहच्छिवगुटिका | ,, | १३ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|--|-----|-----|---|-----|-----|
| पाण्डुरोगे लघुशिव- गुटिका | १५३ | ८ | गण्डमालायामष्टचत्वारिंश- त्संज्ञा गुग्गुलुगुटिका | १६५ | १२ |
| कुष्ठे वज्रकगुटिका | " | २१ | भगन्दरे अमृताद्या गुटिका | १६६ | ३ |
| विषे सर्वपाथा गुटिका | १५४ | १९ | शोफे गुडार्द्रकगुटिका | " | ६ |
| भूतदोषे सिद्धार्थ- काथा | " | १५५ | गुल्मे आरोग्यलवणम् | " | ११ |
| शोफेऽश्वत्थवटकाः | " | १७ | गण्डमालायां काञ्चनार- गुग्गुलुः | १६७ | ६ |
| पाण्डुरोगे पुननवामण्णूरः | १५६ | १८ | " काञ्चनगुटिका | " | १८ |
| वातव्याधौ रसोनपिंडः | " | २६ | क्षतक्षीणे सर्पिगुटिका | " | २५ |
| वातव्याधौ बृहल्लघुनिःशुद्धः | १५७ | १२ | " क्षीरादिलेह- गुटिका | १६८ | ६ |
| " व्योषाद्या गुटिका | १५८ | १ | सर्वरोगे प्रभावतीवटिका | " | २४ |
| कुष्ठे स्वायम्भुवो गुग्गुलुः | " | ११ | वातरोगे अभिसुखवटी | १६९ | २ |
| " सप्तविंशतिका गुग्गुलुवटिका | " | २१ | श्लासादौ सूर्यचन्द्रप्रभा गुटिका | " | ११ |
| रालाद्यो गुग्गुलुः | १५९ | १३ | अतिसारे विशल्या गुटिका | १७० | १६ |
| आमवाते द्वात्रिंशका गुग्गुलुवटिका | " | १६ | वातरोगे त्रोटहरी | " | २२ |
| वातव्याधौ विल्वाद्यो गुग्गुलुः | १६० | ४ | कासे चन्द्रप्रिया | १७१ | ४ |
| अर्शसि योगराजो गुग्गुलुः | " | १३ | मुखरोगे खादिरगुटी | " | ८ |
| नाडीत्रणे त्रिफलाद्यो | १६१ | ३ | " द्वितीया | " | १८ |
| प्रमेहे गोक्षुरगुग्गुलुवटिका | " | ६ | वातरोगे त्वगेलाद्या गुटिका | १७२ | २ |
| वातगुल्मवातरक्तयोः कैशोरको गुग्गुलुः | " | १३ | स्वायनाथं विजया गुटिका | " | ५ |
| वातरोगे त्रिफलाद्यो | १६२ | ८ | वातरोगे योगोत्तमा गुटिका | १७३ | ४ |
| गृध्रस्यां कंसाख्यो गुग्गुलुः | " | १७ | प्रमेहे कर्पूरादिगुटिका | " | २६ |
| गण्डमालायां त्रिफलाद्या गुग्गुलुवटिका | १६३ | ३ | गुल्मे गुडवटकाः | १७४ | ६ |
| वातरक्ते बृहत्स्वायम्भुव- गुग्गुलुः | " | १८ | पाण्डुरोगे क्षारवटकाः | " | ९ |
| कासे सप्तचत्वारिंशतिका गुग्गुलुगुटिका | १६४ | ६ | कुष्ठे पथ्यावटकाः | १७५ | २ |
| वातरक्ते कन्यडिका | " | २९ | ज्वरे फलत्रिकाद्यो मोदकः | " | ११ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|----------------------------|-----|-----|----------------------------|-----|-----|
| रसायने त्रिफलाद्या | | | श्वासकासे विभीतकावलेहः | १८४ | ३ |
| वटकाः | १७५ | १५ | कासेऽगस्त्यहर्षितक्यवलेहः | " | ६ |
| अरुचौ लाजायो मोदकः | १७६ | ३ | " द्वितीयो " | " | १६ |
| राजयक्ष्मणि त्रिफलाद्या | | | वासिष्ठहरीतक्यवलेहः | १८५ | १० |
| गुटिका | " | ७ | वासाहरीतक्यवलेहः | १८६ | ६ |
| अर्शसि चित्रकगुटिका | | | गुरुमे दन्तीहरीतक्यवलेहः | " | १६ |
| प्रमेहे वामदेवेन कायिता | | | कासे व्याघ्रीहरीतक्यवलेहः | १८७ | ५ |
| गुटिका | " | २० | सर्वकासे द्वितीयो | " | १४ |
| जरायां गुग्गुलुगुटिका | " | २६ | प्रीहादरे रोहीतकावलेहः | " | २३ |
| शोफे लघुत्रिफलागुग्गुलु- | | | शोफे पुनर्नवाहरीत- | | |
| गुटिका | १७७ | ६ | क्यवलेहः | १८८ | २ |
| वातव्याधौ पृथुत्रिफलाद्या | | | " कंसहरीतक्यवलेहः | " | १३ |
| गुग्गुलुगुटिका | " | ९ | " हरीतक्यवलेहः | " | २० |
| गुरुमे त्रिवृताद्या | | | अर्शाःपीनसयोश्चित्रक- | | |
| गुटिका | " | २३ | हरीतक्यवलेहः | " | २७ |
| भ्रमरोगे कृष्णाद्या | " | ७ | मन्दाग्रौ द्वितीयश्चित्रक- | | |
| लेहाधिकारः पञ्चमः । | | | हरीतक्यवलेहः | १८९ | १ |
| अर्शसि पथ्यावलेहः | १७८ | २ | हर्षिमके आमलावलेहः | १९० | २ |
| " चित्रकावलेहः | १७९ | २ | कामलायां विडङ्गाद्यवलेहः | " | ११ |
| " द्वितीयः " | " | १४ | श्वासे हरीतक्यवलेहः | " | १८ |
| रक्तपित्ते कूष्माण्डावलेहः | " | २३ | अर्शसि कुटजावलेहः | १९१ | ६ |
| रक्तपित्ते खण्डकूष्माण्डा- | | | " द्वितीयः " | " | २३ |
| वलेहः | १८० | ८ | " कुटजाष्टकोऽवलेहः | १९२ | ७ |
| अर्शसि खण्डसूरणावलेहः | " | ३ | ग्रहण्यां मधुपाकविधिः | " | १६ |
| क्षये गुडकूष्माण्डकावलेहः | " | १६ | कासे कण्टकार्यवलेहः | " | २६ |
| शोषे एलाद्यवलेहः | १८१ | ५ | शोषे निदिग्धकायोऽव- | | |
| अर्शसि भल्लतन्त्रावलेहः | " | ६ | लेहः | १९३ | १२ |
| ग्रहण्यां कल्याणको | | | उदावर्ते पटोलमूलावलेहः | " | २४ |
| गुडावलेहः | १८२ | २ | मुखरोगे दाब्यवलेहः | १९४ | १२ |
| काश्ये पञ्चजरिकावलेहः | " | १४ | आमवाते नागराद्योऽवलेहः | " | २१ |
| योनिरोगे | " | २३ | कासे कसेर्वाद्योऽवलेहः | " | २७ |
| अर्शसि बाहुशालो | | | अर्शसि भल्लतकावलेहः | १९५ | ८ |
| गुडावलेहः | १८३ | ११ | पीनसे चित्रकावलेहः | " | १७ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|------------------------------------|-----|-----|---------------------------------|-----|-----|
| रक्तपित्ते खण्डखाद्योऽव- लेहः | १९६ | १० | षड्विंशतिः फलासवाः | २२१ | ५ |
| ,, द्वितीयो वामावलेहः | १९७ | १४ | एकादश मूलासवाः | ,, | १२ |
| श्वासकासयोर्भाङ्गीगुडाव- ले : | ,, | २२ | विंशतिः सारासवाः | ,, | १६ |
| ,, कुलत्थगुडावलेहः | १९८ | ८ | दश पुष्पासवाः | ,, | २१ |
| ,, पिप्पलीगुडावलेहः | ,, | १७ | चत्वारः काण्डासवाः | ,, | २५ |
| अतीमारे कुटजावलेहः | ,, | २२ | द्वौ पत्रासवौ | ,, | २७ |
| ,, द्वितीयः | १९९ | १२ | चत्वारस्त्वगासवाः | ,, | २९ |
| अर्शास्तु ,, ,, ,, | ,, | २० | शर्करासवः | २१२ | २ |
| जरायां च्यवनप्राशावलेहः | २०० | २ | आसवानां विकल्पसंस्कार- गुणाः | ,, | ४ |
| ,, बाह्यरसायनावलेहः | २०१ | २ | वातव्याघ्री विडङ्गासवः | ,, | १४ |
| क्षतक्षीणेऽपृतप्राशावलेहः | २०२ | १० | प्रमेहे रोप्रासवः | ,, | २६ |
| लघुच्यवनप्राशाऽवलेहः | ,, | २६ | प्रमेहे देवदार्वासवः | २१३ | ८ |
| शोषेऽमुनप्राशाऽवलेहः | २०३ | १२ | कुष्ठे कनकारिष्टः | ,, | २२ |
| शोषे पिप्पल्यायोऽवलेहः | २०४ | ३ | अर्शासि द्वितीयः | २१४ | ५ |
| ,, द्वितीयः | ,, | १५ | ग्रहण्यां दुरालभारिष्टः | २१५ | २ |
| क्षये रपाङ्गहरीतक्यवलेहः | ,, | २७ | अर्शासि दन्त्यारिष्टः | ,, | ११ |
| जीर्णउदरे खण्डार्द्रकावलेहः | २०५ | ६ | ,, अभयारिष्टः | ,, | २० |
| अतिमारेऽङ्कालमूलावलेहः | ,, | १५ | ग्रहण्यां द्वितीयो | २१६ | ५ |
| अर्शासि भङ्गतकावलेहः | ,, | २४ | प्रमेहे तृतीयो | ,, | १४ |
| अतिसारे कुटजाष्टकावलेहः | २०६ | २५ | पाण्डुरोगे मण्डूहारिष्टः | ,, | २४ |
| घातुक्षये मधुपकामलकी | २०७ | ८ | क्षयरोगे पिप्पल्यारिष्टः | २१७ | ५ |
| स्वरभङ्गे कुलिञ्जनाद्योऽव- लेहः | ,, | २० | शोफेऽष्टशतारिष्टः | ,, | १५ |
| कासे भार्याद्यवलेहः | २०८ | ६ | अर्शासि तक्रारिष्टः | ,, | २० |
| हृद्रोगे चन्दनावलेहः | ,, | १४ | अरोचके लघुचुकुसन्धा- नम् | २१८ | ३ |
| शुकक्षये गोक्षुराद्यवलेहः | ,, | २३ | मन्दाग्नौ बृहत्चुकुसन्धानम् | ,, | ८ |
| आसवाधिकारः प्रष्टः । | | | ,, लवङ्गासवः | ,, | १९ |
| उदरे कुमार्यासवः | २०९ | ९ | ह्रीहे रोहीतकासवः | २१९ | २ |
| गुल्मे द्वितीयः | २१० | १३ | अर्शास्तु गण्डिकाद्रोगः | ,, | ८ |
| नवविधा आसवयोनिः | ,, | २४ | कुष्ठे खदिरासवः | ,, | १० |
| षड्धान्यासवाः | २११ | २ | ,, द्वितीयः खदिरारिष्टः | २२० | ५ |
| | | | क्षयरोगे बन्धुल्यासवः | ,, | १४ |

| विषयाः | पृ. | पं. | विषयाः | पृ. | पं. |
|------------------------------|-----|-----|------------------------|-----|-----|
| १, पुष्करमूलासवः | २२० | २२ | धातुक्षये हरीतक्यासवः | २२८ | २६ |
| २, माचिकासवः | २२१ | ८ | दद्रौ आवर्तक्याद्यासवः | २३० | ४ |
| शोफे पुनर्नवासवः | " | १८ | क्षये दशमूलासवः | " | ९ |
| ३, त्रिफलारिष्टः | २२२ | २ | राजयक्ष्मणि खर्जूरासवः | २३१ | १५ |
| सर्वशोफे वासकासवः | " | ६ | ग्रहण्यां मस्त्रासवः | २३२ | ९ |
| अर्शासु शार्करासवः | " | १४ | ज्वरे कुञ्जकासवः | " | २३ |
| ग्रहण्यां द्राक्षासवः | " | २४ | धातुक्षये नालिकेरासवः | २३३ | ६ |
| अर्शासु द्वितीयो " | २२३ | १२ | " कूष्माण्डासवः | " | १८ |
| ग्रहण्यां बीजासवः | " | २४ | " रसायनारिष्टः | २३४ | १८ |
| अर्शासु पील्वासवः | २२४ | ७ | ज्वरे धान्यकाद्यरिष्टः | २३५ | ९ |
| रक्तपित्ते उशीरासवः | " | १६ | धातुक्षये लवङ्गासवः | " | १८ |
| श्यासकासयोस्त्रायमाण- सवः | " | २७ | विद्वर्षी वरुणासवः | २३६ | १० |
| गुल्मे चविकासवः | २२५ | १० | प्लीहरोगे रोहीतकासवः | २३७ | १० |
| ग्रहण्यां मूलासवः | " | २५ | शोषादौ गण्डीरासवः | " | २२ |
| क्षयरोगे बृहन्मूलासवः | २२६ | ७ | प्लीहरोगे रोहीतकासवः | २३८ | १९ |
| धातुक्षये शृङ्गाराजासवः | " | २६ | क्षये योगराजासवः | " | २६ |
| भगन्द्रे गुग्गुल्वासवः | २२७ | ८ | अर्शारोगे पील्वासवः | २३९ | २२ |
| अर्शासु ताम्बूलासवः | " | २६ | प्रमेहे मध्वासवः | २४० | २ |
| अपस्मारे पञ्चमूत्रासवः | २२८ | १७ | पाण्डुरोगे त्योद्दासवः | " | ९ |



५१/८३



श्रीशोढलविरचितो
गदनिग्रहः ।

अथ प्रयोगखण्डः प्रथमः ।

मङ्गलाचरणम् ।

करकिशलयसङ्गी यस्य पीयूषकुम्भः
परममरवधूनां भूयसे मङ्गलाय ।
स खलु निखिलदुग्धाम्भोधिरत्नेषु रत्नं
हरतु दुरितराशीनाथु धन्वन्तरिवः ॥ १ ॥
त्रिभुवनजनरोगग्रामसंग्रामजेता-
मृतभृतधृतकुम्भोद्दूर्णहस्तायुधश्रीः ।
अमरमथितदुग्धाम्भोधिलब्धोदयोऽसौ
दलयतु दुरितौघानाद्यवैद्याधिपो वः ॥ २ ॥
नानामुनिकृतैः श्लोकैः शोढलेनाल्पबुद्धिना ।
विवुधप्रतिबोधाय ग्रथ्यते गदनिग्रहः ॥ ३ ॥

ग्रन्थानुक्रमणिका

घृतं तैलं च चूर्णानि गुटीलेहौ तथाऽऽसवाः ।
आदावेते ह्यनेकार्था ग्रन्थेऽस्मिन् गदनिग्रहे ॥ ४ ॥
ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चाशोऽजीर्णं विमूचिका ।
अलसश्च विलम्बी च कृमिरुक् पाण्डुकामले ॥ ५ ॥
हलीमकमसृक्पित्तं राजयक्ष्मोरसः क्षतम् ।
कासो हिक्का सह श्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ ६ ॥
छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानान्मदात्ययः ।
दाहो वातविकाराश्च वातरक्तोरुक् तथा ॥ ७ ॥

आमवातस्तथा शूलं शूलं च परिणामजम् ।
 जरत्पित्तमथानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ ८ ॥
 हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाऽश्मरी ।
 प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ ९ ॥
 मेदोदोषोदरं शोफो विद्रधिर्दृष्टिरेव च ।
 कुष्ठं श्वित्रं शीतपित्तमुदरदः कोठ एव च ॥ १० ॥
 अम्लपित्तं विसर्पश्च विस्फोटोऽथ मसूरिका ।
 इति कायचिकित्सायां मया रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥
 शालाक्ये शिरसो रोगाः कर्णनेत्रामयास्तथा ।
 नासामुखामयाश्चैव द्वितीयेऽङ्गे चिकित्सिताः ॥ १२ ॥
 गण्डमालाऽपची गण्डः पिटिकार्बुदग्रन्थयः ।
 श्लीपदं व्रणशोफश्च सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ १३ ॥
 भयनाडीव्रणौ चैव भगन्दरोपदंशकौ ।
 शूकदोषाः क्षुद्ररोगाः शल्ये चाङ्गे चिकित्सिताः ॥ १४ ॥
 भूतोन्मादस्तथोन्मादस्तथाऽपस्मार एव च ।
 भूततन्त्रे चतुर्थेऽङ्गे सनिदानाश्चिकित्सिताः ॥ १५ ॥
 प्रदरो योनिव्यापच्च गर्भस्रावचिकित्सितम् ।
 मूढगर्भोऽथ वन्ध्या च योनिशुक्रगदास्तथा ॥ १६ ॥
 सूतिका स्तन्यदोषाश्च गाढनिर्लोमभेषजम् ।
 बालरोगचिकित्सा च बालतन्त्रेऽथ पञ्चमे ॥ १७ ॥
 सर्पलूताविषे चैव वृश्चिकोन्दुरुजं विषम् ।
 नखदन्तविषं चैव खार्जूरं कृत्रिमं विषम् ॥ १८ ॥
 षष्ठे त्वङ्गे विषाख्ये च प्रोक्तं चैषां चिकित्सितम् ।
 रसायनं सप्तमं च बाजीकरणमष्टमम् ॥ १९ ॥
 पञ्चकर्माधिकारे च स्नेहस्वेदविधिस्तथा ।
 वमनं च विरेकश्च नस्यकर्मेत्यनुक्रमः ॥ २० ॥

अथातः प्रथमो घृताधिकारः प्रारभ्यते ॥

ज्वरे मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

मञ्जिष्ठाऽतिविषा पथ्या वचा शुण्ठी च रोहिणी ॥ १ ॥

देवदारु हरिद्रा च द्रोणेऽर्पां पलिकान् पचेत् ।

काथेऽस्मिन् साधयेत् पिष्टैर्घृतप्रस्थं पिचून्मितैः ॥ २ ॥

शुङ्गवेरकणाहिङ्गुद्विक्षारपटुपञ्चकैः ।

तत्कफाघृतसर्वोत्थज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ३ ॥

वर्ध्मगुल्मानिलश्वासकासपाण्डुविकारिणाम् ।

गलग्नथिप्रमेहार्शःप्लीहापस्मारशोफिनाम् ॥ ४ ॥

उदावर्तपरीतानां मन्दाग्निभ्रुकुष्ठिनाम् ।

द्वितीयं मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

मञ्जिष्ठा द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी ॥ ५ ॥

नागरातिविषे चैव वचा कटुकरोहिणी ।

हिङ्गुवेतैरक्षमात्रैस्तु घृतप्रस्थं प्रसाधयेत् ॥ ६ ॥

एतन्माम्जिष्ठकं सर्पिवहून् रोगान्नियच्छति ।

द्विक्कां श्वासं ज्वरं दुष्टं ग्रहणीं पाण्डुरोगताम् ॥ ७ ॥

प्रमेहान्मधुमेहांश्च कृमीन् कुष्ठमरोचकम् ।

कासं शोषमुदावर्तमपस्मारं तथैव च ॥ ८ ॥

प्लीहानं गण्डमालां च हर्शांसि श्वयथुं तथा ।

ज्वरे तिल्वकाद्यं घृतम् ।

तिल्वकस्य पलान्यष्टौ त्रिवृन्मूलत्वचस्तथा ॥ ९ ॥

अंशमत्युरुबूकं च विल्वार्द्यं च पृथक् पलम् ।

यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं फलत्रिकात् ॥ १० ॥

तत्साधयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ।

घृतप्रस्थं पचेत्तेन दत्त्वा दध्नस्तथाऽऽढकम् ॥ ११ ॥

कर्षेण यावशूकस्य पकं तदवचूर्णयेत् ।

एतत्तु तैल्वकं नाम जीर्णज्वरविषापहम् ॥ १२ ॥

कृमिकुष्ठहरं चैव शोफपाण्डुमयापहम् ।

जीर्णज्वरे हारीताकटुकं घृतम् ।

त्रिफलां पञ्चमूल्यौ द्वे कुलत्थान् बदरान् यवान् ॥ १३ ॥

द्विपलांस्तु जलद्रोणे त्वष्टभागावशेषितम् ।

निःस्रान्य विपचेत्कल्कं दत्त्वा प्रस्थं च सर्पिषः ॥ १४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चन्यचित्रकनागरम् ।

पुष्करातिविषे भार्गी शटी सप्तच्छदो वचा ॥ १५ ॥

रजन्यौ नक्तमालश्च पाठे द्वे शिग्रुतुम्बरू ।

सोमवल्कोऽर्कमूलानि मदनं कटुरोहिणी ॥ १६ ॥

तेजस्विनी सगोजिह्वा चन्दनं कण्टकारिका ।

किराततिक्तकं मुस्तं पटोलं सदुरालभम् ॥ १७ ॥

वयःस्था पिचुमन्दश्च कटुकं हिङ्गुना सह ।

एतानक्षसमान् दत्त्वा क्षारौ हर्षपलोन्मितौ ॥ १८ ॥

लवणानां च पञ्चानां कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ।

सिद्धं तन्मात्रया पीतं सर्वजीर्णज्वरापहम् ॥ १९ ॥

हृत्प्रीहग्रहणीदोषश्वासकासारशसां हितम् ।

शुल्भघ्नं कटुकं नाम कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ २० ॥

दीर्घकालप्रसक्तानां ज्वराणाममृतोपमम् ।

अग्निमान्द्ये अग्निघृतम् ।

शतं पलानि भल्लाताज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २१ ॥

चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ।

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पलीम् ॥ २२ ॥

हिङ्गुचन्याजमोदं च पञ्चैव लवणानि च ।

द्वौ क्षारौ हपुषां चात्र दद्यादर्धपलोन्मितम् ॥ २३ ॥

मस्त्वम्लरसचुक्राणां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।

शृङ्गवेररसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४ ॥

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ।

अर्शासि वातरोगं च प्लीहोदरजलोदरे ॥ २५ ॥
 ग्रन्थ्यबुदापचीशोफकुष्ठमेदोऽनिलांस्तथा ।
 ये च कुक्षिगता रोगा ये च वस्तिसमाश्रिताः ॥ २६ ॥
 तान् सर्वात्राशयत्येतत्सूर्यस्तम इवोदितः ।

ग्रहण्यां चाङ्गेरीघृतम् ।

पिप्पली नागरं पाठा यवानी विश्वभेषजम् ॥ २७ ॥
 भागांस्त्रिपलिकान् कृत्वा कषायमुपकल्पयेत् ।
 भार्गी च पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यं सचित्रकम् ॥ २८ ॥
 श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ।
 एतैः पलार्धकैर्द्रव्यैः कृत्वा कल्कं विपाचयेत् ॥ २९ ॥
 पलानि सर्पिषस्तस्मिन् चत्वारिंशत्समावपेत् ।
 चतुर्गुणेन दध्ना च चाङ्गेरीस्वरसेन च ।
 मृदग्निना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ॥ ३० ॥
 ग्रहण्यशौविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
 शोफप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ ३१ ॥
 कासाहिकारुचिश्वाससूदनं सर्वगुल्मनुत् ।

अग्निवेशात् गुदभ्रंशे द्वितीयं चाङ्गेरीघृतम् ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ३२ ॥
 श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ।
 चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेषां विपाचयेत् ॥ ३३ ॥
 चतुर्गुणेन दध्ना तु तद्धृतं कफघातनुत् ।
 अर्शासि ग्रहणीरोगं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ३४ ॥
 गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ।

गुल्मे दाधिकं घृतम् ।

बिडदाडिमसिन्धूत्थहुतशुग्व्योषजीरकैः ॥ ३५ ॥
 हिङ्गुसौवर्चलक्षारुगृक्षाम्लाम्लवेतसैः ।
 बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् ॥ ३६ ॥
 साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत् प्लीहशूलनुत् ।

गुल्मे ह्युपायं घृतम् ।

ह्युषाव्योषमृद्रीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ॥ ३७ ॥
 साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्भृतम् ।
 सकोलमूलकद्रावं सदधिकीरदाडिमम् ॥ ३८ ॥
 तत् परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविनाशनम् ।
 योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ ३९ ॥
 बाहुहृत्पार्श्वशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ।

अग्निवेशाद्रक्तपित्ते वासायं घृतम् ।

समूलपत्रशाखस्य तुलां कुर्याद्वृषस्य च ॥ ४० ॥
 जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ।
 कल्केन वृषपुष्पाणामाढकं सर्पिषः पचेत् ॥ ४१ ॥
 तत्सिद्धं पाययेद्युक्त्या पादांशमधुना युतम् ।
 श्वासं कासं प्रतिश्यायं तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ४२ ॥
 रक्तपित्तं क्षयं चैव विषं सर्पिर्नियच्छति ।

हारीताद्रक्तपित्ते महावासायं घृतम् ।

वासकस्वरसे सर्पिः पयसा सह पाचयेत् ॥ ४३ ॥
 कल्कैः कुटजभूनिम्बमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
 उदीच्यमधुकानन्तासारिवोत्पलपद्मकैः ॥ ४४ ॥
 त्रायन्त्युत्पलमूर्वाभिर्मदयन्त्याश्च पल्लवैः ।
 सिताक्षौद्रयुतं हन्याद्रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४५ ॥
 पित्तं कासं च गुल्मं च स्वरभेदं हलीमकम् ।
 ये चान्ये कीर्तिता रोगा रक्तपित्तकफाश्रयाः ॥ ४६ ॥
 तान् सर्वांन्नाशयत्येतत्पीयमानं हिताशिनः ।

हारीताहुल्मे दशाङ्गं घृतम् ।

यावशूको वचा व्योषं विडङ्गं कटुरोहिणी ॥ ४७ ॥
 सौवर्चलं हरीतक्यश्चित्रकश्चाक्षसामितैः ।
 एभिः पचेद्भृतमस्थं दत्त्वा क्षीरजलाढकम् ॥ ४८ ॥

तत्पक्वं वातगुल्मघ्नं कृमिप्लीहज्वरापहम् ।
कासहिकारुचीर्हन्ति दशाङ्गं नाम दीपनम् ॥ ४९ ॥

गुल्मे हारीताल्लशुनघृतम् ।

लशुनाण्डस्य शुद्धस्य तुलार्धं निस्तुषस्य च ।
तदर्धं पञ्चमूलस्य ह्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ५० ॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा ॥
दाडिमाम्लसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्धकैः ॥ ५१ ॥
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ।
यवानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्धकैः ॥ ५२ ॥
सिद्धमेतद्भविः कल्कैर्गुल्मार्शोजठरापहम् ।
वर्ध्मपाण्ड्यामयप्लीहयोनिदोषज्वरापहम् ॥ ५३ ॥
वातश्लेष्मामयांश्चान्यान् घृतमेतद्व्यपोहति ।

हारीताल्लुमे नाराचकं घृतम् ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका ॥ ५४ ॥
स्रुहीक्षीरं विडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ।
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ ५५ ॥
चतुर्गुणेन तोयेन सम्यगेतन्मिताग्निना ।
तस्य काले पिबेन्मात्रां पलार्धसंमितां नरः ॥ ५६ ॥
उष्णोदकानुपानं स्यादल्पत्वादस्य सर्पिषः
विरिक्ते च यवागूः स्यात्सर्पिषा परिवर्जिता ॥ ५७ ॥
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक् ।
वातगुल्मस्युदावर्तं प्लीहाशौवर्ध्मकुण्डलम् ॥ ५८ ॥
ग्रहणीं दीपयेन्मेहान् कुष्ठदोषांश्च नाशयेत् ।
नाराचमिति विख्यातं सपिर्नाराचसंज्ञितम् ॥ ५९ ॥
भैषज्यं संप्रयोक्तव्यं नाराचमिव शत्रवे ।

कुष्ठे नीलिनीघृतम् ।

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां वचां कटुकरोहिणीम् ॥ ६० ॥

व्याघ्रीं पचेद्विडङ्गं च पलिकानि जलाढके ।
 रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६१ ॥
 दध्नः प्रस्थेन संयोज्यं सुधाक्षीरपलेन च ।
 ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् ॥ ६२ ॥
 जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च दापयेद्रसभोजनम् ।
 कुष्ठगुल्मोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ६३ ॥
 श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हन्त्येतन्नीलिनीघृतम् ।

सिद्धसाराहुल्मे विश्वाद्यं घृतम् ।

पलाशैर्विश्वचव्याग्निपिप्पलीक्षारसैन्धवैः ॥ ६३ ॥
 काथेन चिरबिल्वस्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
 गुल्मोदावर्तपाण्डुत्वग्रहणीश्वासकासजित् ॥ ६६ ॥
 दुष्टज्वरप्रतिश्यायप्लीहार्शःशमनं परम् ।

अमिवेशाहुल्मे षट्पलं घृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ ६६ ॥
 पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 क्षीरप्रस्थेन संयुक्तं हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ॥ ६७ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ।

हारीताहुल्मे महाषट्पलं घृतम् ।

सैन्धवं हपुषा पञ्चकोलं सौवर्चलं विडम् ॥ ६८ ॥
 अजमोदा यवक्षारो हिङ्गु जीरकमौद्गिदम् ।
 कृष्णजरणपूतीकं कल्कीकृत्य पलाघृतः ॥ ६९ ॥
 शृङ्गवेररसं चुक्रं घृतप्रस्थं समीकृतम् ।
 विपकं पाण्डुरोगघ्नं क्षयपीनसनाशनम्
 कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरगुल्मप्रमेहकम् ॥ ७० ॥
 वातरोगं तथा शोफं दौर्बल्यं वह्निसंक्षयम् ।
 महाषट्पलमातङ्कान् भिनत्त्यशनिवह्निरिम् ॥ ७१ ॥

कुष्ठे भेडानीलं घृतम् ।

द्रौ प्रस्थौ लोहचूर्णस्य त्रिफलात्र्याढकं तथा ।
 वायसीकाकमाचीभ्यां द्वे पले शङ्खिनीतुला ॥ ७२ ॥
 त्रिद्रोणेऽपां विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।
 घृतप्रस्थं पचेत्तेन गर्भं चैषां समावपेत् ॥ ७३ ॥
 वरुणश्च कलिङ्गश्च त्र्यूषणं देवदारु च ।
 अवल्युजफलं दन्तीफलान्यारग्वधस्य च ॥ ७४ ॥
 मार्कवः कण्टकारी च पारावतपदी तथा ।
 नीलकं नाम विख्यातमित्येतत्कुष्ठनुद्धृतम् ॥ ७५ ॥
 श्वित्राणि रञ्जयेच्चैव पानाभ्यङ्गे प्रयोजितम् ।
 पामाविचार्चिकासिध्मकिटिमानि च नाशयेत् ॥ ७६ ॥

भेडात्कुष्ठे महानीलं घृतम् ।

शम्पाकः काकमाची च बीजको मदयन्तिका ।
 एकैकस्य तुला देया प्रत्येकं त्रिफलाढकम् ॥ ७७ ॥
 दन्ती दावी हरिद्रा च वरुणः कुटजत्वचा ।
 चित्रकश्चार्कमूलं च काकमाची निदग्धिका ॥ ७८ ॥
 एषां दशपलान् भागान् त्रिद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
 अष्टभागावशिष्टं तु पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ७९ ॥
 वासारसस्तथा धात्र्या जातीस्वरस एव च ।
 दधि सर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं गोशकृद्रसः ॥ ८० ॥
 आढकाढकमेतेषां गर्भं चेमं समावपेत् ।
 अवल्युजा तथा व्योषं नक्तमालफलानि च ॥ ८१ ॥
 पिचुमर्दश्च जाती च पीलुतिल्वकपल्लवाः ।
 किराततिक्तकः श्यामा नीलिकानीलपल्लवाः ॥ ८२ ॥
 एतैः सिद्धं परिस्नान्य पाययेत्कुष्ठुरोगिणम् ।
 महानीलमिति प्रोक्तमेतत्कुष्ठापहं घृतम् ॥ ८३ ॥

भगन्दरमथार्शांसि कृमींश्चापि विनाशयेत् ।
 अष्टादशैव कुष्ठानि सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ८४ ॥
 अथर्वमहितो दीप्तो ब्राह्मो दण्ड इवासुरान् ।
 धित्राणि तु विशेषेण रञ्जयेच्च भिनत्ति च ॥ ८५ ॥
 सेव्यमानं प्रसङ्गेन पानेनाभ्यङ्गनेन च ।

कुष्ठे त्रिफलाद्यं घृतम् ।

त्रिफला मदनं कुष्ठं शार्ङ्गैश्चा रजनीद्वयम् ॥ ८६ ॥
 ह्युषा काकमाची च शुकनासा विषा वचा ।
 पाठा कोशातकी मूर्वा तिक्ता काकादनी तथा ॥ ८७ ॥
 एषां कषायकल्काभ्यां सिद्धं पीतं घृतोत्तमम् ।
 विशीर्यमाणविध्वस्तस्त्रायुकेशनखं नरम् ।
 कुष्ठातुरं सदा कुर्यान्मुमूर्षुमपि निर्गदम् ॥ ८८ ॥

हारीताकुष्ठे आवर्तकीघृतम् ।

आवर्तकीमूलशतं मुशुद्धं काथीकृतं कल्कपलाष्टयुक्तम् ।
 प्रस्थं पुराणाद्धविषः सुगव्यात् पक्वं शनैः साधु ततोऽवतार्य ॥ ८९ ॥
 मात्रां पिबेद्वाधिवलानुरूपां भुञ्जीत चान्नं सह काङ्गिकेन ।
 द्रवोत्तरं कोद्रवजं सुजीर्णं कामं पुरस्तादपरेऽह्नि शुद्धः ॥ ९० ॥
 त्रिसप्तत्रात्रं विधिनैवमाशु पीतं निहन्यादचिरेण कुष्ठम् ।
 स्रवद्रणं भग्नखाङ्गदेहं मण्डानुपूर्व्यां विधिनाऽथ चैतत् ॥ ९१ ॥

अग्निवेशाहुदभ्रंशे चव्याद्यं घृतम् ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बरूणि च ।
 यवानीं पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ ९२ ॥
 अभयां चित्रकं बिल्वं पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
 शकृद्वातानुलोम्यार्थं जले दध्नश्चतुर्गुणे ॥ ९३ ॥
 प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्त्रवम् ।
 गुदवंक्षणशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ९४ ॥

भेडात्प्रमेहे धान्वन्तरं घृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।
 वर्षाभूर्वैरुणो दन्ती चित्रकः सपुनर्नवः ॥ ९५ ॥
 कपित्थोर्कसुधाक्षीरं विल्वं भल्लातकानि च ।
 शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९६ ॥
 पृथग्दशपलान्येषां दत्त्वा तोयार्मणे पचेत् ।
 यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥
 तेन पादावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 निचुलं त्रिफला भार्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९८ ॥
 शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिलकस्तथा ।
 पिप्पली चविका चैव कुष्ठं च सममागतः ।
 गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययोद्धि यथावलम् ॥ ९९ ॥
 एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ।
 कुष्ठं प्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ १०० ॥
 ग्रीहानमुदराशींसि विद्रधिं पिडकास्तथा ।
 अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ १०१ ॥

खरनादाङ्गुमारकल्याणकं घृतम् ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह ।
 द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीवको बला ॥ १०२ ॥
 शटी दुरालभा विल्वं दाडिमं मुरसा स्थिरा ।
 मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला पिप्पली जलम् ॥ १०३ ॥
 श्वदंष्ट्राजतिविषा पाठा विडङ्गं दारु मालती ।
 मधूकपुष्पस्वर्जरं बदरं वंशरोचना ॥ १०४ ॥
 कल्कैरेषां समांशानां घृतं क्षीरचतुर्गुणम् ।
 कषाये कण्टकार्याश्च साधयेत्सौम्यदैवते ॥ १०५ ॥

एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् ।
 बलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निसुचिकारकम् ॥ १०६ ॥
 योज्यं सर्वग्रहालक्ष्मीदन्तकर्णगदापहम् ।
 सर्ववालामयं च मेध्यमायुष्यमुत्तमम् ॥ १०७ ॥
 रसायनमिदं सेव्यं विशेषादन्तजन्मनि ।

वाग्भटाद्ब्राह्मीघृतम् ।

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद्वाह्या घृतप्रस्थं च साधयेत् ॥ १०८ ॥
 व्योषश्यामात्रिवृद्वाह्मीशङ्खपुष्पीतृपद्रुमैः ।
 ससप्तलाविडङ्गाह्वैः कल्कितैरक्षसंमितैः ॥ १०९ ॥
 पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत यावन्भात्रा चतुष्पलम् ।
 हरेत्कुष्ठमपस्मारमुन्मादं च सुतप्रदम् ॥ ११० ॥
 वाक्स्मृतिस्वरमेधाकृद्जन्यं ब्राह्मीघृतं शुभम् ।

शूले बीजपूरकायं घृतम् ।

घृताचतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो दधि ॥ १११ ॥
 शुष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाद्रसः ।
 विडङ्गलवणक्षारयवानीपञ्चकोलकैः ॥ ११२ ॥
 पाठामूलककल्कैश्च सिद्धं पूरकसंज्ञितम् ।
 हृत्पाश्वशूलवैस्वर्यहिध्माश्वासभगन्दरान् ॥ ११३ ॥
 वर्ध्मगुल्मप्रमेहाशौवातव्याधीन् विनाशयेत् ।

कृष्णात्रेवाद्गणे महागौर्यायं घृतम् ।

गौरी निशा च मञ्जिष्ठा मांसी कटुकरोहिणी ॥ ११४ ॥
 प्रपौण्डरीकयष्ट्याहं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ।
 जातीनिम्बपटोलं च कारञ्जं बीजमेव च ॥ ११५ ॥
 कटफलं समधूच्छिष्टं समभागानि कारयेत् ।
 पञ्चबल्ककषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११६ ॥
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मूद्रग्निना पचेत् ।
 एतद्वैरं महावीर्यं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ११७ ॥

आगन्तुसहजाश्वैव शिरःश्लिष्टाश्च ये व्रणाः ।

विषमामपि नाडीं च रोपयेच्छीघ्रमेव च ॥ ११८ ॥

रक्तपित्ते दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वा चोत्पलकिञ्जल्कं मञ्जिष्ठा चैलवालुकम् ।

श्वेतदूर्वा तथोशीरं मुस्ता चन्दनपद्मकम् ॥ ११९ ॥

द्राक्षा मधुकयष्ट्याहं काश्मरी सितचन्दनम् ।

पिट्टैस्तैः कार्ष्णिकैर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२० ॥

तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं पृथग्दद्याच्चतुर्गुणम् ।

तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ॥ १२१ ॥

कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ।

चक्षुर्गते च रक्ते वै पूरयेत्तेन चक्षुषी ॥ १२२ ॥

मेदूपायुगते चापि वस्तिकर्म प्रयोजयेत् ।

मृष्टे रोमकूपेभ्यस्त्वभ्यङ्गे योजयेद्भृतम् ॥ १२३ ॥

वेदेहान्नेत्ररोगे महान्निफलं घृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।

पीडयित्वा वृषं बालं रसप्रस्थं च दापयेत् ॥ १२४ ॥

अजाक्षीरस्य च प्रस्थं, प्रस्थं तैः सर्पिषः पचेत् ।

त्रिफला चन्दनं द्राक्षा पिप्पली मधुकं बला ॥ १२५ ॥

काकोलीक्षीरकाकोलीमेदामरिचसैन्धवम् ।

शर्करा पुण्डरीकं च हरिद्रोत्पलनागरम् ॥ १२६ ॥

कल्कैः सिद्धं भिषग्दद्यान्नेत्ररोगविनाशनम् ।

काचं च नीलिकां शुक्रं वर्त्मरोगांश्च नाशयेत् ॥ १२७ ॥

नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डुं पिल्लमथापि च ।

अजकां तिमिरांश्चैव नेत्रस्रावांश्च दारुणान् ॥ १२८ ॥

त्रिफलासर्पिरेतद्धि पाननावनतर्पणैः ।

विदेहराजनिर्दिष्टं दृष्टिनैर्मल्यकारकम् ॥ १२९ ॥

वातव्याधौ शतावरीघृतम् ।

शतावरीमूलतुलां द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
 अष्टभागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३० ॥
 जीवनीयानि सर्वाणि रास्त्रा गोक्षुरकस्तथा ।
 शतपुष्पा वचा कुष्ठं सरलश्च पुनर्नवा ॥ १३१ ॥
 चन्दनं तगरं मांसी पत्रकं रक्तचन्दनम् ।
 सुरसा नागरं कृष्णा विडं मुस्ता तथोत्पलम् ॥ १३२ ॥
 एषामक्षसमैर्भागैः क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
 बृंहणं वातपित्तघ्नं क्षतशोषज्वरापहम् ॥ १३३ ॥
 पीठसर्पिभ्रपङ्कनामर्दिनेऽपि च शस्यते ॥
 पुंस्त्वोपघातिनां नृणां बन्ध्यानां चैव योजितम् ॥ १३४ ॥
 बलवर्णकरं ह्येतदलक्ष्मीघ्नं प्रजाकरम् ।
 इदं शतावरीसर्पिरश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १३५ ॥

शङ्खपुष्पाद्यं घृतम् ।

(शङ्खाब्राह्मीगुड्मूत्राशतावर्यकवल्लिकाः ।
 मलपूं ब्रह्मसोमां च कल्कीकृत्य घृतं पचेत् ॥ १ ॥
 दुग्धं चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।
 मेधाकरं तथाऽऽयुष्यमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ २ ॥)

सारस्वतं घृतम् ।

ब्राह्मीं समूलपत्रां तु सम्यक् प्रक्षाल्य वारिणा ।
 उल्लखलेन संक्षुब्ध रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ १३६ ॥
 चतुर्गुणे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 औषधानि च पेष्पाणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥
 हरिद्रा मालती चैव त्रिफला च हरीतकी ।
 एतेषां पालिका भागाः शेषाणां कार्ष्णिकाः स्मृताः ॥ १३८ ॥
 पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वृषः ।
 एतानि तु समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १३९ ॥

ततः पक्वं तु विज्ञाय क्षिप्तं तदवतारयेत् ।
 तस्य प्राशनमात्रेण वधिरत्वं प्रणश्यति ॥ १४० ॥
 सप्तरात्रोपयोगेन भवेत्कविरसंशयम् ।
 घृतं सारस्वतं नाम सरस्वत्या विनिर्मितम् ॥ १४१ ॥

सन्तानार्थं फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा ।
 अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गुः तिक्तकरोहिणी ॥ १४२ ॥
 काकोली क्षीरकाकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ।
 जीवकर्षभकौ मेदे रेणुका बृहतीद्वयम् ॥ १४३ ॥
 उत्पलं चन्दनं द्राक्षा पद्मकं देवदारु च ।
 एषामक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४४ ॥
 चतुर्गुणेन तोयेन विपचेन्मृदुनाऽग्निना ।
 एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ १४५ ॥
 पुत्रं जनयते वीरं मेधाढ्यं पुष्करेक्षणम् ।
 वन्ध्या च लभते गर्भं ज्यामा शीघ्रं प्रसूयते ॥ १४६ ॥
 या चैव स्थितगर्भा स्यान्मृतापत्या तु या भवेत् ।
 अल्पायुर्जननी चैव या च सूत्वा पुनः स्थिता ॥ १४७ ॥
 एतदेव कुमारानां सर्वाङ्गग्रहमोक्षणम् ।
 धन्यं यज्ञस्यमायुष्यं कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥ १४८ ॥
 ये च कल्याणके प्रोक्तास्ते चापीह गुणाः स्मृताः ।
 एतत्फलघृतं नाम ह्यश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १४९ ॥

अग्निवेशात्कृतक्षीणे श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रोक्षीरमञ्जिष्ठावलाकाश्मर्यकचृणम् ।
 पृश्निपर्णी स्थिरा दर्भमूलं च जीवकर्षभौ ॥ १५० ॥
 पालिकान् साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
 कल्कैर्जीविकजीवन्तीस्त्रिगुणामेदकर्षभात् ॥ १५१ ॥
 शतावर्ष्युष्टिमृद्रीकाशर्कराश्रावणीविसात् ।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्भवशूलनुत् ॥ १५२ ॥

मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः ।

धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रिन्नानां बलमांसदः ॥ १५३ ॥

कामलायां हारीताद्वाक्षाद्यं घृतम् ।

पिष्ट्वा गोस्तनिकायास्तु पलान्यष्टौ समावपेत् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थं पकं क्षीरे चतुर्गुणे ।

कामलापाण्डुरोगार्शोर्ज्वरकासातिनाशनम् ॥ १५४ ॥

वाग्भटाकुष्ठे महावज्रकं घृतम् ।

वासामृतानिम्बपटोलतिक्तान्याग्रीकरञ्जोदककल्कसिद्धम् ।

सर्पिर्विसर्पज्वरकामलार्तिकुष्ठापहं वज्रकमामनन्ति ॥ १५५ ॥

वाग्भटाकुष्ठे महावज्रकं घृतम् ।

त्रिफलात्रिकटुद्विकण्टकारीकटुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।

सवचातिविषाग्निकैः सपाटैः पित्तुभागैर्नव वज्रदुग्धमुष्ट्याः १५६

पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभिः क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।

कुष्ठश्वित्रप्रीहवध्मांशुल्मान्हन्यात्कृच्छ्रांस्तन्महावज्रकारण्यम् ॥

अग्निवेशाकुष्ठे तिक्तकं घृतम् ।

निम्बपटोलं दावीं दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम् ।

कुर्यादर्धपलांशं पर्पटकं त्रायमाणां च ॥ १५८ ॥

सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते ।

चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणाश्च ॥ १५९ ॥

मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान् भागान् ।

नवसर्पिषश्च षट्पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ १६० ॥

कुष्ठज्वरगुल्फार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथुहारि ।

विसर्पपामापिडकाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥ १६१ ॥

अग्निवेशाकुष्ठे महातिक्तकं घृतम् ।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् ।

मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपित्तुमर्दपर्पटकम् ॥ १६२

धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्यां पद्मकं हरिद्रे द्वे ।

षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥ १६३ ॥

वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च ।
 कल्कीकुर्यान्मतिमान् यष्टाहं त्रायमाणां च ॥ १६४ ॥
 कल्कश्चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
 द्विगुणो घृतात्पदेयस्तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिः ॥ १६५ ॥
 कुष्ठानि रक्तपित्तप्रवलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
 वीसर्पमम्लपित्तं पित्तासृक् पाण्डुतां गुल्मम् ॥ १६६ ॥
 विस्फोटकान् सपामानुन्मादं कामलां कृमीन् कण्डूम् ।
 हृद्रोगज्वरपिडका ह्यसृग्दरं गण्डमालां च ॥ १६७ ॥
 हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
 योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ १६८ ॥

जतुकर्पात्कुष्ठे द्वितीयं महातिक्तकं घृतम् ।

करञ्जसप्तच्छदपिप्पलीनां मूलानि कृष्णा मधुकं विशाला ।
 यवासकश्चन्दनमुत्पलं च स्यान्त्रायमाणा कटुका वचा च ॥ १६९ ॥
 उशीरपाठातिविपारजन्यः किराततिक्तः कुटजस्य बीजम् ।
 निम्बासनारग्वधमालतीनां पत्राणि मूलानि च कण्टकार्याः १७०
 शतावरीपद्मकदेवदारुस्तानि कालीयककेसराणि ।
 वासागुडूचीनतसारिवाश्च बला पटोलं त्रिफला च मूर्वा ॥ १७१ ॥
 नीपः कदम्बो धववेतसौ च कर्कोटकः पर्पटकः पयस्या ।
 वाराहकन्दं मदयन्तिका च ब्राह्मी समङ्गर्षभको बला च ॥ १७२ ॥
 एतैः समांशैरथ कार्ष्णिकैश्च घृतस्य पात्रं विपचेन्नवस्य ।
 द्रोणं जलस्याकलुषस्य दद्यात् पात्रद्रयं चामलकीरसस्य ॥ १७३ ॥
 पर्कं प्रशान्तं गतफेनशब्दं प्रयोजयेत् कुष्ठहरं प्रशस्तम् ।
 तद्रक्तपित्तानिलसन्निपातविस्फोटपाल्यामयविद्रधीनाम् ॥ १७४ ॥
 किलासकासज्वरगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदानि त्वथ वातरक्तम् ।
 हृत्पाण्डुरोगान् सभगन्दरांश्च निषेव्यमाणं नियमेन काले ॥ १७५ ॥
 घृतं महातिक्तामिदं प्रशस्तं निहन्ति सर्वांन् श्वयथूपादिष्टान् ।

१ 'मतिमान्' इति पा० । २ 'पाण्डुरोगं च' इति पा० । ३ 'हृद्रोगगुल्मपिडकाः'
 इति पा० ।

कृष्णात्रेयात्, ग्रीहि रोहीतकं धृतम् ।

ज्ञातं पलानि रोहीतात् संक्षुध वदराहकम् ।
 पाचयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १७६ ॥
 घृतप्रस्थं समावाप्य छागं क्षीरं चतुर्गुणम् ।
 तस्मिन् दद्यादिमांश्वैव सर्वान् कर्षसमन्वितान् ॥ १७७ ॥
 व्योषं फलत्रयं हिङ्गु यवानी तुम्बुरु विडम् ।
 अजाजी सैन्धवं कुष्ठं दाडिमं देवदारु च ॥ १७८ ॥
 पुनर्नवा विशाला च यवक्षारश्च पुष्करम् ।
 विडङ्गं चित्रकश्चैव हपुषा चविका वचा ॥ १७९ ॥
 एभिर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं स्थापयेद्भाजने शुभे ।
 पायथेच्च पलं मात्रां व्याधीन् शमयते क्षणात् ॥ १८० ॥
 ग्रीहं ग्रीहोदरं चैव ग्रीहशूलं तथैव च ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिशूलमरोचकम् ॥ १८१ ॥
 हन्ति विबन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम् ।
 छर्द्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम् ॥ १८२ ॥
 रोहीतकघृतं ह्येतत् ग्रीहानि शमयेद्भुतम् ।

क्षारपाणेः ग्रीहानि विल्वार्धं धृतम् ।

विल्वं पाठाऽभया धान्यं यवानी सैन्धवं विडम् ।
 मरिचं पञ्चकोलं च क्षारश्चैभिर्घृतं पचेत् ॥ १८३ ॥
 दद्यात् चतुर्गुणेनैव शकृद्रातविबन्धनुत् ।
 सर्वांगग्रीहवातार्तिशुद्रांशरुजापहम् ॥ १८४ ॥

हारीतात् सर्वोदरे द्विपञ्चमूलाद्यं धृतम् ।

द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृतानिकुम्भे सप्तलं चित्रकशिगुमूलम् ।
 कुरण्टवीजं त्रिफला गुडूची हेरण्डमूलं मदयन्तिका च १८५
 पाठा सभाग्नी सुषवी सनीला सरोहिषा पापंकुचेलिका च ।
 एषां पृथक् पञ्चपलं जलस्य द्रोणे पचेत्तच्चतुरंशशेषम् १८६
 घृतं विपकं सकषायकलकं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ।

उदरे ब्राह्मं घृतम् ।

शिलाह्वयं नागरकालशाके काकादनीमूलनिदग्धिके च ॥१८७
पञ्चैव दद्यालवणानि हिङ्गु कृष्णां च तैरक्षसमैः पृथक् च ।
प्रस्थं घृतस्याथ पचेन्नवस्य चतुर्गुणं मूत्रमथ प्रदाप्य ॥१८८ ॥
पयश्च दद्याद्विगुणं विपकं तद्ब्रह्मसृष्टं प्रवदन्ति सर्पिः ।
श्रीहोदरं दूष्यमथोदरं च संसेव्यमानं जठराणि हन्यात् ॥१८९ ॥

कासे कण्टकारीघृतम् ।

पाठाविडव्योषविडङ्गसिन्धुत्रिकण्टरास्त्राहुतभृग्वलाभिः ।
शृङ्गीवचाम्बोधरदेवदारुदुरालभाभार्ग्यभयाशटीभिः ॥ १९० ॥
सम्यग्विपकं द्विगुणेन सर्पिर्निदग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ।
श्वासाश्रिसादस्वरभेदभिन्नाभिहन्त्युदीर्णानपि पञ्चकासान् १९१

कासे द्वितीयं कण्टकारीघृतम् ।

धुद्रायाः स्वरसं सम्यक् ग्राहयेद्यन्त्रपीडितम् ।
चतुर्गुणे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १९२ ॥
दद्यान्निकटुकं गर्भं रास्त्रां गोक्षुरकं बलाम् ।
पञ्चकासानिदं सर्पिः पीतं सद्यो व्यपोहति ॥ १९३ ॥

अग्निवेशात् कासे व्यूषणाद्यं घृतम् ।

व्यूषणं त्रिफलां द्राक्षां काश्मर्यं च परूपकम् ।
द्वे पाठे देवदारुर्द्धिं स्वशुक्तां चित्रकं शटीम् ॥ १९४ ॥
व्याघ्रीमामलकीं भेदां काकनासां शतावरीम् ।
त्रिकण्टकं गुडूर्वीं च पिष्ट्वा कर्षसमं घृतात् ॥ १९५ ॥
प्रस्थं चतुर्गुणे क्षीरे सिद्धं कासहरं पिबेत् ।
ज्वरगुल्मारुचिष्ठीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १९६ ॥
कामलाशीं अनिलाष्टीलाक्षतशोषक्षयापहम् ।
व्यूषणं नाम विख्यातमेतद्घृतमनुत्तमम् ॥ १९७ ॥

कृष्णात्रेयाद्गणे गौर्याद्यं घृतम् ।

गौरीनिम्बपटोलरोध्रफलिनीयष्ट्याहनीलोत्पलै-
र्मञ्जिष्ठाकटुकेन्द्रवारुणिजपामूर्वानिशाचन्दनैः ।

जातीक्षोरकपत्रकेशरदलैः पूतीकघोष्ठाफलै-
स्तुल्यैः सिक्थकसारिवाद्रययुतैर्गन्धं घृतं पाचयेत् ॥१९८॥
गृष्टिक्षीरसपञ्चवल्कलदलकाथैश्च गौर्यादिभिः
सिद्धं सर्पिरिदं हितं त्रिषु भवेत्सद्यःक्षतेषु ध्रुवम् ।
ये गूढाश्विरकालजातगतयः प्रोच्छिन्नमांसा व्रणाः
सस्त्रावाः सरुजः सदाहपिडिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च १९९

भेदाद्गुणलितिककं घृतम् ।

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्या वृषस्य च ।
पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २०० ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
त्रिकटुत्रिफलामुस्तारजनीद्वयवत्सकम् ॥ २०१ ॥
शुण्ठी दारुहरिद्रा च पिप्पलीमूलचित्रकम् ।
भल्लातको यवक्षारः कटुकाऽतिविषा वचा ॥ २०२ ॥
विडङ्गं स्वर्जिकाक्षारः शतपुष्पाऽजमोदकम् ।
एषामक्षसमैर्भागेर्गुग्गुलोः पञ्चभिः पलैः ॥ २०३ ॥
सुसिद्धं पीयमानं च हेतद्गुणलितिककम् ।
विद्रधिं हन्ति सद्यो हि त्वग्दोषानपि दारुणान् ॥ २०४ ॥
कुष्ठानि स्वापसङ्कोचवेगवन्ति स्थिराणि च ।
वातश्लेष्मसमुत्थानि मेदःस्रावयुतानि च ॥ २०५ ॥
गण्डमालावृद्धग्रन्थिनाडीदुष्टभगन्दरान् ।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं पाण्डुरोगं ज्वरं क्षयम् ॥ २०६ ॥
विषमज्वरहृद्रोगलिङ्गदोषविषक्रिमीन् ।
प्रमेहासृग्दरोन्मादशुक्रदोषगदान् जयेत् ॥ २०७ ॥

हारीताच्छेषे द्राक्षार्धं घृतम् ।

द्राक्षायाः शोधितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् ।
पचेत्तोयार्मणे शुद्धे पादशेषेण तेन च ॥ २०८ ॥
पालिके मधुकद्राक्षे पिष्ट्वा कृष्णापलद्रयम् ।

प्रदाप्य सर्पिषः प्रस्थं पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २०९ ॥
 सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ।
 एतद्राक्ष्णाघृतं नाम क्षीणक्षुत्तृदसुखावहम् ॥ २१० ॥
 वातपित्तज्वरश्वासविस्फोटकहलीमकान् ।
 प्रदरं रक्तपित्तं च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ २११ ॥

विदेहात्सर्वेन्द्रोगे त्रिफलाद्यं घृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
 पीडयित्वा वृषं बालं रसप्रस्थं प्रदापयेत् ॥ २१२ ॥
 अजाक्षीरस्य च प्रस्थं कार्षिकैः श्लक्ष्णोपेषितैः ।
 पिप्पलीशर्कराद्राक्ष्णात्रिफलानीलपत्रकैः ॥ २१३ ॥
 मधुकक्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका—
 मञ्जिष्ठापत्रकोशीरसारिवादांरुचन्दनैः ॥ २१४ ॥
 घृतं प्रस्थं पचेत् प्राज्ञः कल्कैरेभिः समन्वितम् ।
 ऊर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानं विशिष्यते ॥ २१५ ॥
 अतिमदुष्टरक्ते च रक्ते चातिष्ठते तथा ।
 नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे सर्वनेत्ररुजासु च ॥ २१६ ॥
 बकैविद्योतिते भ्रान्ते सूर्यतेजोद्विषे तथा ।
 गृध्रदृष्टिकरं धन्यं बलवर्णाशिवर्धनम् ॥
 त्रिफलाया घृतं सिद्धं सर्वनेत्ररुजान्तकृत् ॥ २१७ ॥

पटोलाद्यं घृतम् ।

पटोलं मधुकं दावीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।
 दुरालभां च त्रायन्तीं पर्यटं च पलोन्मितम् ॥ २१८ ॥
 प्रस्थमामलकानां च काथयेत्सलिलार्मणे ।
 तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २१९ ॥
 कल्कैः कुटजभूनिम्बमुस्तयष्ट्याहचन्दनैः ।
 पिप्पलीसहितैः सर्पिश्चक्षुष्यं श्रोत्रयोर्हितम् ॥ २२० ॥

१ 'दावीचन्दनैः' इति पा० । २ 'चकविद्योतिते' इति पा० ।

३ 'कटुकां' इति पा० ।

घ्राणकर्णाशिवर्त्मत्वग्दन्तरोगत्रणापहम् ।
रक्तपित्तहरं स्वेदक्रेदूपयोपशोषणम् ॥ २२१ ॥
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ।

कृष्णात्रेयाद्विन्दुघृतम् ।

त्रिवृतां त्रिफलां पाठां दन्तीं कटुकरोहिणीम् ॥ २२२ ॥
चतुरङ्गुलमज्जानं तथा च कटुकत्रयम् ।
चित्रकं च बृहत्यौ च तथा च गजपिप्पलीम् ॥ २२३ ॥
स्नुहीक्षीरं पलं दद्यात् घृतस्याष्टौ प्रदापयेत् ।
यावतः स पिवेद्विन्दून् तावद्द्वारान् विरिच्यते ॥ २२४ ॥
एतद्विन्दुघृतं सिद्धमृषिभिः परिकीर्तितम् ।

कृष्णात्रेयादुल्मे महाविन्दुघृतम् ।

स्नुहीक्षीरपले द्वे च प्रस्थार्धं चैव सर्पिषः ॥ २२५ ॥
कम्पिलकपलं चैव शाणार्धं सैन्धवस्य च ।
त्रिवृतायाः पलं चैव कुडवं धात्रिजाद्रसात् ॥ २२६ ॥
तोयप्रस्थेन संयुक्तं शनैर्मृद्गणिना पचेत् ।
कर्षमानं प्रदातव्यं जठरे ग्रीहगुल्मयोः ॥ २२७ ॥
तथा कर्णोत्थरोगेषु युञ्जीत कुशलो भिषक् ।
गुल्मादिनिचयानेतत् समूलान् सपरिग्रहान् ॥ २२८ ॥
निहन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ।
पञ्चगुल्मवधार्थाय सर्पिरेतत् प्रकीर्तितम् ॥ २२९ ॥
सर्वासुरवधार्थाय यथा वज्रं विडौजसः ।
महाविन्दुघृतं सिद्धं सर्वोदरहरं परम् ॥ २३० ॥

गुल्मे विन्दुघृतम् ।

श्यामात्रिवृद्गृह्णितपलत्रयं हि हरीतकीनां तु शतार्धमन्यत् ।
तोयार्मणोऽर्धेन विपाच्य तेन प्रस्थं पचेद्गन्धघृतस्य वैद्यः २३१
कम्पिलकस्यापि पलप्रमाणं सनीलिनीबीजपलद्वयं च ।
चतुष्पलं स्नुक्पयसश्च दत्त्वा गुल्मापहं विन्दुघृतं विरेकात् २३२

चिकित्साकलिकाया गुल्मे महाबिन्दुघृतम् ।

त्रिवृत्पलं स्नुक्पयसः पलं च कम्पिल्लकस्यापि पलं तृतीयम् ।
चतुष्पलं चामलकीरसस्य पलार्धमन्यल्लवणस्य चैव ॥ २३३ ॥
प्रस्थार्धमेभिर्हविषो विपकं जले महाबिन्दुघृतं प्रसिद्धम् ।
निहन्ति गुल्मं जठराणि चैव घ्नीहामयानाश्च विरेकयोगात् २३४

कुष्ठे बिन्दुघृतम् ।

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि पद् ।
पथ्या कम्पिल्लकः श्यामा श्यामाको गिरिकर्णिका ॥ २३५ ॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकस्तथा ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३६ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
यावतो नापिवेद्भिन्दून् तावद्द्वारान्विरिच्यते ॥ २३७ ॥
कुष्ठं गुल्मशुदावर्तं श्वयंभुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३८ ॥
एतद्भिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ।

कुष्ठे पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निम्बं व्याघ्रीं पटोलं च गुडूचीं वासकं तथा ॥ २३९ ॥
कुर्यात्तुलां तु संचूर्ण्य काथयेत्तज्जले शुभे ।
ततः पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४० ॥
त्रिफलागर्भसंयुक्तं पञ्चतिक्तकमुच्यते ।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ २४१ ॥
विंशतिं श्लेष्मजांश्चैव पानादेवापकर्षति ।
(दुष्टव्रणांस्तथा नाडीमर्शांसि च भगन्दरम् ।
पञ्चकासान् सहद्रोगान् सर्पिरेतन्नियच्छति ॥)

खरनादाच्छूले लघुनघृतम् ।

प्रस्थं लघुनबीजानां कण्टकार्यास्तथैव च ॥ २४२ ॥
प्रस्थं तथा च वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।

द्राक्षाया गोस्तनायाश्च कुडवं चात्र मिश्रयेत् ॥ २४३ ॥

तत्र दद्याद्दृतप्रस्थं गोक्षीरप्रस्थमेव च ।

लशुनस्य तु पिष्टस्य पलं निर्ष्पीड्य योजयेत् ॥ २४४ ॥

आटरूपकपत्राणां पेपयित्वा पलं तथा ।

एतन्मृद्गिना सिद्धं शीतं पूतमथापि च ॥ २४५ ॥

द्विपलं शर्कराचूर्णं क्षीरार्धकुडवं तथा ।

त्वक्क्षीर्याश्च पलार्धं हि तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ॥ २४६ ॥

निदध्याद्वाजने शुद्धे काञ्चने राजतेऽपिवा ।

एतत्प्रायोगिकं सर्पिरीमान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ २४७ ॥

कासं श्वासं ज्वरं गुल्मं कार्श्यं छर्दिमरोचकम् ।

हृद्रोगं पार्श्वशूलं च क्षतक्षीणं छिहोदरम् ॥ २४८ ॥

जीवनं बृंहणं वृष्यं पाण्डुश्वयथुनाशनम् ।

तन्त्रान्तराद्वाडिमाद्यं घृतम् ।

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम् ॥ २४९ ॥

चित्रकाच्छृङ्गवेराच पिप्पलयष्टमिका च तैः ।

पलानि विंशतिं चैव घृतस्य सलिलाढके ॥ २५० ॥

सिद्धं हृत्पाण्डुगुल्मार्शःश्लीहत्रातार्तिशूलनुत् ।

दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २५१ ॥

दुःखप्रसविनीनां च वन्ध्यानां चैव पुत्रदम् ।

चित्रकाद्यं घृतम् ।

चित्रकस्य तुलाकाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५२ ॥

द्विगुणं ह्यारनालं च दधिमण्डं चतुर्गुणम् ।

पञ्चकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः ॥ २५३ ॥

द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत् ।

गुल्मश्लीहोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ॥ २५४ ॥

१ 'मागधिकापलम्' इति पा० । २ 'पलं द्राक्षापलं तथा' इति पा० ।

३ प्रायोगिकमिति प्रयोगः स्वस्थस्य सततोपयोगः, तत्र साधु प्रायोगिकम् ।

वस्तिहृत्पार्श्वकटयूस्शूलोदावर्तजान् गदान् ।
निहन्यात् पीतमशांघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ।
बलवर्णकरं चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ २५५ ॥

शोफे चित्रकायं घृतम् ।

सचित्रकं धान्ययवान्यजाजीसौवर्चलभ्यूपणवेतसाम्लम् ।
विल्वोत्पलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् २५६
पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथापि युञ्ज्यात् ।
अशांशि गुल्यान् श्वयधुं सकृच्छं निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् ॥

प्रीतिं तृतीयं रोहीतकघृतम् ।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठात्पलानां पञ्चविंशतिम् ।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तां कषायशुषकल्पयेत् ॥ २५८ ॥
पालिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वैश्चापि तुल्यया ।
रोहीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५९ ॥
शमयेत् ग्रीहृद्विं च सर्पिराशु प्रयोजितम् ।
तथा गुल्मज्वरश्वासकृषिपाण्डुत्वकारलाः ॥ २६० ॥

उठे गुग्गुलुपञ्चतितकं घृतम् ।

निम्बावृताष्टपटोलनिदिग्धिकानां
भागानिभान्दशपलान्विषपचेद्धटेऽपाम् ।
अष्टांशोपितभृतेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत् पिचुभागकलकैः ॥ २६१ ॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विसारनागरनिशाभिशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजस्वतीमरिचवत्सकदीप्यकाम्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ २६२ ॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया विषया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ।

तत्सेवितं विधुवति प्रबलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीहक् ॥ २६३ ॥

नाडीत्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।

यक्ष्मारुचिश्चसनपीनसशोफकास-
हृत्पाण्डुरोगमदविद्विधिवातरक्तम् ॥ २६४ ॥

शीतकल्याणकं घृतम् ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमा रक्तशालयः ।

मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ २६५ ॥

बलातिबलयोर्बूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।

विदारी शतपत्री च शालपर्णी स जीवकः ॥ २६६ ॥

फलं त्रपुसवीजानि श्रत्यग्रं कदलीफलम् ।

एषामर्धपलान् भागान् गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २६७ ॥

पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ २६८ ॥

बहुरूपं च यत्पित्तं कामलां च सशोणितम् ।

अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ २६९ ॥

तरुणाश्वानपत्या ये या च गर्भं न विन्दति ।

अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम् ॥ २७० ॥

शीतकल्याणकं नाम परशुक्तं रसायनम् ।

दिकाश्वासे शब्दाद्यं घृतम् ।

शटिर्वचाऽभया कुष्ठं पिप्पली बिल्वशुण्डिका ॥ २७१ ॥

पलांशं सैन्धवं चव्यं तेजस्वत्यथ पुष्करम् ।

सौवर्चलं च भूधात्री भूतीकं चाक्षसंमितम् ॥ २७२ ॥

हिङ्ग्वर्धकर्षकोपेतं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

चतुर्गुणं जलं चात्र दत्त्वा मृद्वग्निना भिषक् ॥ २७३ ॥

ग्रहण्यशौहितं कासहिकोरःपार्श्वशूलनुत् ।

श्वासान् सन्धिगतांश्चान्यान् हन्याद्वातकफामयान् ॥ २७४ ॥

नारसिंहं घृतम् ।

वह्निर्भेदातकं चैव शिंशपा खदिरस्तथा ।
 हरीतकी विडङ्गानि जविकश्च तथाऽक्षकः ॥ २७५ ॥
 एषामाहृत्य भागांस्तु सम्यग्दशपलोन्मितान् ।
 जलद्रोणयुतान् कृत्वा लोहभाण्डे निधापयेत् ॥ २७६ ॥
 लोहभाण्डे पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम् ।
 क्वाथं लोहस्थितं कृत्वा स्थापयेद्विसत्रयम् ॥ २७७ ॥
 त्रिगुणं तु शतावर्या रसं धात्र्याश्च निःक्षिपेत् ।
 निःक्षिपेत्र्त्रिगुणं चात्र भृङ्गराजरसं शुभम् ॥ २७८ ॥
 छागक्षीरं च तत्रैव त्रिगुणं च सुयोजयेत् ।
 पक्त्वा घृताढकं तेन मधुना सितयाऽथवा ॥ २७९ ॥
 गुडेन वा पिबेत्सार्धं केवलं वा पलोन्मितम् ।
 न किञ्चित्परिहार्यं स्याद्वातातपनिषेविणाम् ॥ २८० ॥
 अजीर्णं पिवतश्चापि वनितासेविनस्तथा ।
 नान्धता नाग्निहानिश्च न वलीपलितं भवेत् ॥ २८१ ॥
 अनेन च भवत्याशु नरैः सिंहपराक्रमः ।
 भवत्यश्वजवश्चैव हेमवर्णश्च जायते ॥ २८२ ॥
 कान्ताऽपि सेविता तेन गुणैरेतैश्च युज्यते ।
 नारसिंहमिति ख्यातं घृतं बलविवर्धनम् ॥ २८३ ॥

विषेऽमृतं घृतम् ।

शिरीषस्य त्वचा व्योषं त्रिफला चन्दनोत्पलम् ।
 द्वे बले सारिवास्फोटासुरभीनिम्बपाटलाः ॥ २८४ ॥
 बन्धुजीवातसीमूर्वावासासुरसवत्सकम् ।
 पाठाङ्गोलाश्वगन्धार्कमूलं यष्ट्याह्वपद्मके ॥ २८५ ॥
 विशाला बृहती द्राक्षा कोविदारः शतावरी ।
 कटभीदन्त्यपामार्गपृश्निपर्णीरसाञ्जनम् ॥ २८६ ॥

शणाश्वखुरकौ श्वेतौ कुष्ठं दारु मियङ्गुका ।
 विदारी मधुकात्सारः करञ्जस्य फलं वचा ॥ २८७ ॥
 रजन्यौ लोघ्रमक्षांशान् पिष्ट्वा साध्यं घृताढकम् ।
 तुल्याम्बुच्छागगोमूत्रे श्याढके तद्विपाचितम् ॥ २८८ ॥
 अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरोदरान् ।
 पाण्डुरोगान् क्रिमीन् मेहान् सप्लीहोदरकामलान् ॥ २८९ ॥
 हनुस्तम्भग्रहादींश्च पानाभ्यञ्जननावनैः ।
 हन्यात्संजीवयेच्चापि विषोदधिघृतान्नरान् ॥ २९० ॥
 अभेद्यममृतं सर्वविषाणां स्याद्धृतोत्तमम् ।

ग्रहण्यामग्निघृतम् ।

चतुष्पलं चव्यकचित्रपाठातेजस्विनीपिप्पलीमूलमेदाः ।
 दद्याच्च मुस्तात्रिफलं विशुद्धं मुष्टिं समग्रामथ पल्लवानाम् ॥ २९१ ॥
 आस्फोटजातीपित्तुसप्तपर्णपटोलशाखोटकनक्तमालात् ।
 एतानि दद्यादथ कुट्टितानि ह्यधिश्रेयस्ताम्रमये कटाहे ॥ २९२ ॥
 सुकाथितं द्रोणजले तु सम्यक् पादावशिष्टं पुनरुद्धरेत्तत् ।
 पलार्धतुल्याऽतिविषा सुभद्रा कल्कीकृतानि द्विपलानि दद्यात् ॥
 सयावशूकं विडसैन्धवं च पलानि चत्वारि च पिप्पलीनाम् ।
 कल्कैः कषायेण च सिद्धमेतन्मृद्राग्निसिद्धं ह्यवतारयेच्च ॥ २९४ ॥
 पिवेच्च जीर्णं तु घृतस्य कर्षं विष्टम्भदोषे द्विगुणं पिवेच्च ।
 अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः शाम्यन्ति गुल्माश्च बहुप्रकाराः २९५ ॥
 सर्वाः कृमीणामथ जातयश्च शाम्यन्ति सम्यग्निविधप्रयोगात् ।
 पाण्डुामयप्लीहगरोद्भवाश्च रोगान् तं भाविन् आपतेयुः ॥ २९६ ॥
 सेवेत मद्यं पिशितानि चैव विवर्जकः स्यान्मधुतर्पणस्य ।
 नाम्ना तदप्यग्निघृतं प्रसिद्धं वह्निं च संदीपयते प्रसह्य ॥ २९७ ॥

१ ' एषां ' इत्यध्याहारः । २ नामैकदेशेनापि नामग्रहणात् पित्तुशब्देनात्र
 पित्तुमर्दो गृह्यते ।

ग्रहण्यां भल्लातकाद्यं घृतम् ।

भल्लातकानां द्विपलं पलांशं विदारिगन्धादिकपञ्चमूलम् ।
जलाढके जर्जरितं विपाच्य विस्त्राव्य पूतं विपचेद्धि कल्कैः २९८
रास्त्रा विडं सैन्धवयावशूकं विडङ्गकृष्णामधुकं वचा च ।
सविश्वकूर्पूरहुताशहिङ्गु रास्त्रादिभिः पाणितलप्रमाणैः ॥२९९॥
प्रस्थं विपकं पयसा समांशं घृतस्य योज्यं कफजे विकारे ।
प्लीहोदरे यक्ष्मणि वातरोगे श्वासे सकासे च हितं वदन्ति ३००
व्यापन्नवहौ कफगुल्मिनां च कण्डूविकारेषु च शस्तमेतत् ।
भल्लातकाख्यं नियमेन पीतं जयेच्च सर्वान् ग्रहणीविकारान् ३०१

जीर्णज्वरे विप्लव्याद्यं घृतम् ।

पिप्लयतिविषाद्राक्षासारित्राविल्वचन्दनैः ।

कटुक्रेन्द्रयवोशीरशटीतामलकीघनैः ॥ ३०२ ॥

त्रायमाणास्थिराधात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ।

कल्कैरेतैर्घृतं पकं विच्छिद्य विषमाग्निताम् ॥ ३०३ ॥

जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीमकम् ।

क्षयकासान् ससंतापान् पार्श्वशूलमपास्यति ॥ ३०४ ॥

मयूरघृतम् ।

हेमन्तकाले शिशिरे च सेव्यं वसन्तकाले च मयूरसर्पिः ।

औष्ण्याद्धि बर्ही विषभक्षणाच्च वर्षाशरद्वीष्मदिनान्यपास्य ३०५

आहारजातं हि विहङ्गमस्य क्रीटाश्च सर्पाश्च सरीसृपाश्च ।

पिपीलिकाभत्कुण्ठमक्षिकाश्च तेनोष्णकालेष्वहितो मयूरः ३०६

तथैव काले जलदाभिराभे विमृज्य शुक्रं च मदं च बर्ही ।

कृशत्वमायाति हि हीनतां च शरन्मुखे तेन विवर्जनीयः ३०७

अथाऽऽहरेत्स्वस्थघृतं वयस्थं निस्तुण्डपत्रान्नखं मयूरम् ।

द्विद्रोणमात्रे पयसो निधाय विपाचयेद्भेषजसंयुक्तम् ॥३०८॥

सश्रावणी बंधुमती यवासः काकोली भेदे ऋषभो वयस्था ।

सविश्वदेवा सहदेवसाहा सप्तच्छदान्मूलफले बला च ॥३०९॥

शतावरीजीवकसोमवल्कमेकैकशः स्युः पलसंमिताश्च ।
 ततोऽर्धशिष्टे कथिते सुपूते घृताढकं तत्र पुनर्विपाच्यम् ॥ ३१० ॥
 एभिस्तु कल्कैः खलु कर्षमानैर्द्रोणेन दुग्धस्य युतैः सुपिष्टैः ।
 मुञ्जातकाक्षोडमथात्मगुप्ता वृद्धिस्तथा तामलकी सवीरा ३११
 भियालमज्जा मधुकं तथैव सिद्धं प्रशान्तं गतफेनशब्दम् ।
 पानेषु भोज्येषु च देयमेतद्भक्तेषु नानाप्रभवेषु चैव ॥ ३१२ ॥
 मन्दाग्निरेतोविषपीडिताश्च क्षीणक्षताश्चापि कृशातिवृद्धाः ।
 कासादिताः शोणितपित्तिनश्च पिवेयुरेते शिखिसर्पिरग्न्यम् ३१३
 वृष्यं च वल्यं च रसायनं च सर्वेन्द्रियाणां बलवर्धनं च ।
 ओजःस्वरं भीणयते च गात्रं विषघ्नमेतद्गुरनाशनं च ॥ ३१४ ॥
 एतेन वृद्धाः कृशदुर्बलाश्च तथैव वांगध्वसमाहताश्च ।
 प्रक्षीणवीर्याश्च रतिप्रसक्ताः स्त्रियः समागम्य वृषीभवन्ति ३१५
 हिमव्यपाये हिमदग्धपलवाः पुनः प्ररोहन्ति यथा महीरुहाः ।
 पुनस्तथा यौवनपुष्टिभन्तो नरा भवन्तीह घृतप्रयोगात् ॥ ३१६ ॥

तिमिरे जीवन्त्याद्यं घृतम्

तुलां पचेद्दि जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषिते ।
 दत्त्वा चतुर्गुणं क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३१७ ॥
 प्रपौण्डरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैन्धवैः ।
 शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ॥ ३१८ ॥
 कार्ष्णिकैर्निशितं तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ।

अपस्मारे पञ्चगव्यं घृतम्

दशसूलेन्द्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्गीफलत्रयैः ।
 शम्भ्याकभ्रेयसीसप्तपर्णीपामार्गीफलगुभिः ॥ ३१९ ॥
 गृतैः कल्कैश्च भूनिम्बत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
 त्रिवृत्पाठानिशायुग्मसारिवाद्रयपौष्करैः ॥ ३२० ॥
 कटुकायासदन्त्युग्रानीलिनीक्रिमिशत्रुभिः ।
 सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥ ३२१ ॥

साधितं पञ्चगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।
चतुर्थकक्षयश्वासानुन्मार्दाश्च नियच्छति ॥ ३२२ ॥

ज्वरे महापञ्चगव्यं घृतम् ।

दशमूलमपामार्गं त्रिफलां कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णं हरिद्रे द्वे नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ ३२३ ॥
मुष्ककारग्वधे चैव फल्गुमूलं दुरालभाम् ।
पलांशकान्यपां द्रोणे साधयेत्पादशेषिते ॥ ३२४ ॥
त्रिवृतानिचुले भार्गी श्रेयसी मदयन्तिका ।
पूतिको रोहिषः पाठा दन्ती वह्निस्तथाऽऽढकी ॥ ३२५ ॥
किराततिक्तको मूर्वा व्योषं द्वे चापि सारिवे ।
सकषायं घृतप्रस्थमेभिः पिष्ट्वा विपाचयेत् ॥ ३२६ ॥
गव्यं शकृद्रसं क्षीरं तक्रं मूत्रं तथा दधि ।
तदैकघ्यं पचेत्सर्पिः सिद्धं चैवावतारयेत् ॥ ३२७ ॥
पञ्चगव्यं महच्चैतद्विख्यातममृतं यथा ।
चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति मन्त्रसिद्धो मुनिर्यथा ॥ ३२८ ॥
श्वयथुं पाण्डुरोगं च ग्रीहार्शासि भगन्दरम् ।
उदराणि तथा गुल्मं कामलां चापकर्षति ॥ ३२९ ॥
तस्माद्भिषक् मयुञ्जीत विधियुक्तं प्रयोगवित् ।

विन्दुसारं घृतम् ।

शतावरीवलारास्तादशमूलीत्रिकण्टकान् ।
अश्वगन्धासमायुक्तान् कुशकाशसमन्वितान् ॥ ३३० ॥
दर्भेक्षुमूलसंयुक्तान् शरमूलविमिश्रितान् ।
मण्डूक्या च समायुक्तान् द्विपञ्चपालिकान् भिषक् ३३१
पुनर्नवायाः श्वेतायाः शिफां पलशतोन्मिताम् ।
जलद्रोणे प्रयत्नेन पचेत्सम्यक् चतुर्गुणे ॥ ३३२ ॥
निःस्राव्य पादशेषे तु काथमग्नावधिश्रेयत् ।

यवानीपिप्पलीद्राक्षाशुण्ठीयष्ट्याहसैन्धवान् ॥ ३३३ ॥

द्विपालिकान् विनिःक्षिप्य श्लक्ष्णं पिष्ट्वा विधानतः ।

घृतप्रस्थं पचेत्सम्यक् क्षीरप्रस्थद्वयान्वितम् ॥ ३३४ ॥

प्रस्थेनैरण्डतैलेन गुडत्रिंशत्पलैर्युतम् ।

एतदीश्वरपुत्राणां राज्ञां चैव विशेषतः ॥ ३३५ ॥

स्त्रीसंभोगरतानां च प्राग्भोजनमनिन्दितम् ।

ऊरुशूले कटिस्तम्भे योनिशूले च दारुणे ॥ ३३६ ॥

वस्तिघाते प्रवृद्धे च वातरोगे सुदुःसहे ।

घृतमेतत्प्रशंसन्ति सुकुमारे रसायनम् ॥ ३३७ ॥

कासे दशमूलार्थं घृतम् ।

दशमूल्याढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।

पुष्कराहशटीविल्वसुरसान्व्योषहिङ्गुभिः ॥ ३३८ ॥

पेयं पेयानुपानं तत्कासे वातकफात्मके ।

श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ३३९ ॥

रक्तपित्ते कटुकायं घृतम् ।

कटुरोहिणिका मुस्ता हरिद्रा वत्सको बला ।

पटोलं चन्दनं सूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ॥ ३४० ॥

पिप्पली पर्पटश्चैव भूनिम्बो देवदारुकम् ।

एतैरक्षमितैः सर्पिःप्रस्थं क्षीराढके पचेत् ॥ ३४१ ॥

रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगन्दरम् ।

अर्शास्यसृग्दरं चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा ॥ ३४२ ॥

गुल्मे दाधिकं घृतम् ।

सुषवी पञ्चमूल्यौ द्वे साश्वगन्धा पुनर्नवा ।

काला छिन्नरुहा चैव रास्ना गोक्षुरको बला ॥ ३४३ ॥

शटी पुष्करमूलं च देवदारुस्तथैव च ।

एषां द्विपालिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३४४ ॥

कोलकानां कुलत्थानां माषाणां च यवैः सह ।
 प्रस्थं प्रस्थं ततः कृत्वा तस्मिन्नेव समावपेत् ॥ ३४५ ॥
 तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 दद्यादेभिः समं शुक्तमारनालं तुषोदकम् ॥ ३४६ ॥
 दाडिमाम्रातकद्रावं मातुलुङ्गरसं तथा ।
 दधि देयं चतुर्भागं गर्भमेषां समावपेत् ॥ ३४७ ॥
 पुनर्नवोषणं दन्ती त्रीण्येव लवणानि च ।
 हिंसा रास्ना बला चैव यवानी चाम्लवेतसम् ॥ ३४८ ॥
 विडङ्गं दाडिमं हिङ्गुं ग्रन्थिकं त्रिवृता तथा ।
 द्रौ क्षारावजमोदा च पाठा पाषाणभेदकम् ॥ ३४९ ॥
 ऊषको वृषको भार्गी श्वदंष्ट्रा हृषुषा तथा ।
 ऋषुषैर्वारुबीजानि शतावर्युपकुञ्चिका ॥ ३५० ॥
 अजाजी चित्रको मूर्वा तुम्बुरुगजपिप्पली ।
 धान्यकं सुरसं चैतान् दद्यादक्षसमान् भिषक् ॥ ३५१ ॥
 गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिरुत्तमम् ।
 पित्तगुल्मं तथा सर्वान् गुल्मानन्यान्यपोहति ॥ ३५२ ॥
 एकाङ्गसंश्रये पक्षवधे दुष्टे च रेतसि ।
 हृद्रोगे ग्रहणीरोगे सर्पिरेतद्यथाऽशृतम् ॥ ३५३ ॥
 यक्ष्माणं नाशयत्येतदपस्मारं च नाशयेत् ।
 दाधिकं नाम विख्यातमात्रेयानुमतं शृतम् ॥ ३५४ ॥

गुल्मे लघुनघृतम् ।

तुलां लशुनकन्दानां पृथक् पञ्चपलांशकान् ।
 त्र्युषणत्रिफलाहिङ्गुयवानीचव्यचित्रकान् ॥ ३५५ ॥
 साम्लवेतससिन्धुत्थदेवदारून् पचेज्जले ।
 तेन पकं घृतप्रस्थं गुल्मवातविकारनुत् ॥ ३५६ ॥

गुल्मे महाषट्पलं घृतम् ।

नागरस्य तुलार्थं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ।
 चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ ३५७ ॥
 शुक्लेन मस्तुना चैव दाडिमैर्वदरोदकैः ।
 चतुर्गुणैर्द्रवैरतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३५८ ॥
 सौवर्चलं विडं चैव पौतिकं चोषकस्तथा ।
 अजाजी पिप्पली चैव ह्यजगन्धा यवाग्रजः ॥ ३५९ ॥
 सैन्धवं पञ्चकोलं च हिङ्गु चौद्रिदमेव च ।
 एतैः पलार्धकैर्द्रव्यैः शनैर्मृद्भग्निना पचेत् ॥ ३६० ॥
 कृमिघ्नीहोदराजीर्णज्वरगुल्मप्रमेहकान् ।
 वातरोगानशेषांश्च हिक्कां शूलमरोचकम् ॥ ३६१ ॥
 पाण्डुरोगं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसंक्षयम् ।
 महाषट्पलमातङ्कान् भिनच्यशनिवह्निरिम् ॥ ३६२ ॥

उन्मादे कल्याणकं घृतम्

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
 स्थिराऽनन्ता हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे भियङ्गवः ॥ ३६३ ॥
 नीलोत्पलं च मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमबल्कलम् ।
 तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं शुष्टिः ॥ ३६४ ॥
 विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मके ।
 अष्टाविंशतिभिः कल्कैरैतैरक्षप्रमाणकैः ॥ ३६५ ॥
 चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्देऽनले क्षये ॥ ३६६ ॥
 वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
 वम्यशोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ ३६७ ॥
 कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषेऽवसृग्दरेषु च ।
 भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ३६८ ॥

शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्वलप्रदम् ।
अलक्ष्मीपापरोगघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३६९ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे द्वितीयं कल्याणकं घृतम् ।

सारिवाद्वितयं पण्यौ नतं कुष्ठं निशाद्वयम् ॥ ३७० ॥
दाडिमं चन्दनं व्याघ्री निकुम्भा त्रिफलेन्द्रिका ।
तालीसं पद्मकं चैला मञ्जिष्टोत्पलदारुकम् ॥ ३७१ ॥
इभोषणा विडङ्गानि भियङ्गुश्चाश्मभेदकः ।
यवानी मुकुलं जाल्या मुस्तकं कर्षसमितम् ॥ ३७२ ॥
कल्कैरेषां घृतप्रस्थं सिद्धं कल्याणकं स्मृतम् ।
रक्तपित्तज्वरोन्मादकासकण्डूविनाशनम् ॥ ३७३ ॥

उन्मादे तृतीयं कल्याणकं घृतम् ।

विशालैलाधरापद्मदेवदर्वैलवालुकैः ।
द्विसारिवानिशाद्वन्द्रद्विस्थिराफलनीनतैः ॥ ३७४ ॥
बृहतीकुष्ठं मञ्जिष्टानागकेशरदाडिमैः ।
वेष्टतालीसपत्रैलामालतीकुमुमोत्पलैः ॥ ३७५ ॥
दन्तिपद्मकचन्द्रैश्च कर्षाशैः सर्पिषः पचेत् ।
प्रस्थं, भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपापनुत् ॥ ३७६ ॥
पाण्डुकण्डूविषे शोषे मोहे मोहे ज्वरे गरे ।
अरेतस्यनपत्ये च देवोपहतचेतसि ॥ ३७७ ॥
अमेधसि स्वलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ।
वलयं मङ्गल्यमायुष्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ॥ ३७८ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्मादे महाकल्याणकं घृतम् ।

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ॥ ३७९ ॥
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ।
द्विकाकोलीवरीमेदाकपिकच्लुविषाणिभिः ॥ ३८० ॥

शूर्पपर्णीयुतैरेभिर्महाकल्याणकं परम् ।

बृंहणं सन्निपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ॥ ३८१ ॥

विसर्पे महागौरं घृतम् ।

क्षीरवृक्षमवालानि कुमुदान्युत्पलानि च ।

सौगन्धिकानि पद्मानि शालूकानि विसानि च ॥ ३८२ ॥

मृणालकुशकासेक्षुदर्भगुन्द्रेक्षुवालिकाः ।

नलवेतसकुम्भीकनालीसर्जार्जुनस्वनाः ॥ ३८३ ॥

कदलीपत्रशेवालकसेरुघोटकानि च ।

परूपकमधूकानि श्रीपर्ण्यामलकानि च ॥ ३८४ ॥

लामज्जकं विदारी च चन्दनं च शतावरी ।

समझा धातकी रोध्रं जीवनीयानि यानि च ॥ ३८५ ॥

शीतशीर्षास्तु ये केचिज्जलजानूपसंश्रिताः ।

एतत्संघृत्य संभारं क्षीरद्रोणेषु समस्तु ॥ ३८६ ॥

पचेद्विस्त्राय तच्छीतं मन्यानेन विमन्ययेत् ।

यत्ततो जायते सर्पिस्तत्पचेत्पुनरेव तु ॥ ३८७ ॥

द्रव्यैस्तैरेव पूर्वोक्तैः शनैर्मृद्वाग्निना भिषक् ।

हन्यादेतद्विसर्पास्तु सर्वधातुश्रितान् व्रणान् ॥ ३८८ ॥

तोयमग्निं यथा दीप्तं नाम्ना गौरं घृतं महत् ।

सप्ताहं घृतम् ।

शङ्खपुष्पीगुड्मच्युग्राशतावर्यकवालिकाः ॥ ३८९ ॥

मलपूं ब्रह्मसोमां च कल्कीकृत्य घृतं पचेत् ।

दुग्धं चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।

मेधाकरं तथाऽऽयुष्यं सप्ताहमिति कीर्तितम् ॥ ३९० ॥

अष्टाहं घृतम् ।

मण्डूकीं सवचां सशङ्खकुसुमां ब्राह्मीं गुडूर्चीं तथा

श्वेतां बाकुचिकां वरीपरियुतां सब्रह्मसौर्वलाम् ।

कृत्वाऽशैः पॅलिकैरिमानि विधिवद्भव्याणि तैः कल्कितैः
 सर्पिःप्रस्थमथाढकेन पयसा युक्त्या पचेद्भुद्धिमान् ॥ ३९१ ॥
 नाम्नाऽष्टाङ्गमिदं विदेहविहितं ख्यातं घृतं यः पिवेत्
 स श्लोकस्य सहस्रमेकदिवसे श्रुत्वाऽखिलं धारयेत् ।
 अक्षीणप्रतिभः सुचारुवदनः स्पष्टाभिभाषी भवे-
 ल्लोके शुक्रबृहस्पतिप्रतिसमः पूज्यश्च राज्ञो भवेत् ॥ ३९२ ॥

बालग्रहे फलघृतम् ।

बहिष्ठकुष्ठमञ्जिष्ठाकटुकैलानिशाद्रयैः ।
 तोयदन्निफलाकौन्तीवाजिगन्धामरुद्रुमैः ॥ ३९३ ॥
 वचामेदाजमोदाह्लाकाकोलीयष्टिपञ्चकैः ।
 सशर्करैरहितं सर्पिः पक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३९४ ॥
 बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्परेतसाम् ।
 ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वन्ध्यानां चापि गर्भदम् ॥ ३९५ ॥

चातुर्थकज्वरे महापैशाचकं घृतम् ।

त्रायमाणा जया वीरा नाकुली गन्धनाकुली ।
 कायस्था च वयस्था च चोरकश्च पलङ्कषा ॥ ३९६ ॥
 सूकरी जटिला छत्रा सातिच्छत्रा मुमकैटी ।
 मोरटा पूतना केशी स्थिरा कटुकरोहिणी ॥ ३९७ ॥
 महापुरुषदन्ता च वृश्चिकाली कुटन्नटा ।
 सिद्धमेभिर्घृतं पेयं चातुर्थकविनाशनम् ॥ ३९८ ॥
 महापैशाचकं नाम सर्पिरेतज्वरापहम् ।
 भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ॥ ३९९ ॥

शोषे जीवन्त्याद्यं घृतम् ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
 शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ ४०० ॥
 त्रायमाणां च भूधार्त्रीं नीलोत्पलदुरालभे ।
 पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतमेभिर्विपाचयेत् ॥ ४०१ ॥

एतद्वाधिसमूहस्य रोगराजस्य चोच्छ्रितम् ।
एकादशविधं रूपं सर्पिरभ्यं व्यपोहति ॥ ४०२ ॥

महातिक्तं घृतम् ।

निम्बः सप्तच्छदः पाठा गुडूची सशतावरी ।
कृतमालः करञ्जौ द्रौ खदिरो वत्सको धवः ॥ ४०३ ॥
पर्पटश्च पटोलश्च विशाला चित्रकस्तथा ।
एतानि समभागानि कषायमुपकल्पयेत् ॥ ४०४ ॥
भेषजानि प्रपेध्याणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ।
भूनिम्बः कटुका मुस्ता दन्ती पर्पटको वचा ॥ ४०५ ॥
विशालातिविषे मूर्वा यष्ट्याहं सारिवाद्रयम् ।
अवल्गुजा हरिद्रे द्रे दुःस्पर्शा रक्तचन्दनम् ॥ ४०६ ॥
कृमिघ्नः पिप्पली पाठा चित्रको देवदारु च ।
भल्लातकान्युशीरं च शम्पाकः सकालङ्कः ॥ ४०७ ॥
एतैरक्षप्रमाणैस्तु घृतस्यार्धाढकं पचेत् ।
द्विगुणस्तु रसो धान्या घृतात्काथश्चतुर्गुणः ॥ ४०८ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते ।
वातरक्तं सवीसर्पं रक्तस्त्रावं च दारुणम् ॥ ४०९ ॥
पित्तासृक्कामलाकण्डूगरान् योगशतैरपि ।
असाधितान् महारोगान् महातिक्तं प्रसाधयेत् ॥ ४१० ॥

वातव्याधौ दशमूलाद्यं घृतम् ।

द्रोणेऽम्भसः पचेद्भागान् दशमूल्याश्चतुष्पलान् ।
यवकोलकुलत्थानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह ॥ ४११ ॥
पादशेषे रसे पिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः ।
तथा खर्जूरकाशमर्षद्राक्षावदरफल्गुभिः ॥ ४१२ ॥
सक्षीरैः सर्पिषः प्रस्थं सिद्धं केवलवातनुत् ।
निरत्ययं प्रयोक्तव्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ४१३ ॥

कासे वृद्धकण्टकारी घृतम् ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्या रसाढके ।
 घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ ४१४ ॥
 सौवर्चलयवक्षारविल्वामलकपौष्करैः ।
 सैन्धवग्रन्थिपर्णोग्रादेवदारूपयोधरैः ॥ ४१५ ॥
 वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीदाडिमिथिभिः ।
 द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालम्भाम्लवेतसैः ॥ ४१६ ॥
 वृङ्गीतामलकीभार्गारास्त्रागोक्षुरकैः पचेत् ।
 कल्कैश्च सर्वकासेषु हिक्काश्वासेषु शस्यते ।
 कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४१७ ॥

त्रणे जाल्पाद्यं घृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादावीनिशासारिवा-
 मङ्गिष्ठाभयसिन्धुतुत्थमधुकैनेक्ताहवीजैः समैः ।
 सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्नाविणो
 गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्धयन्ति रोहन्ति च ४१८

प्रवाहिकायां व्यूषणाद्यं घृतम् ।

व्यूषणं त्रिफला निम्बं चित्रको गजपिप्पली ।
 विल्वं कर्कोटिका हिंसा विडङ्गानि निदिग्धिका ४१९
 घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गिवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
 पीतं प्रयोगतः काले हन्यादेतत्प्रवाहिकाम् ॥ ४२० ॥

रक्तपित्ते कसेरुकं घृतम्

द्राक्षेक्षुकाश्मर्यशतावरीणां तथा विदार्याः स्वरसस्य चैव ।
 कसेरुकाणां तु तथा कपायं प्रस्थं पृथक् क्षीरचतुर्गुणं च ४२१
 घृतं तु वर्या अथ सिन्दुवारात्रायन्तिकाया अपि कल्कसिद्धम् ।
 प्रायोगिकं सर्पिरुदाहरन्ति कसेरुकं मारुतापित्तघाति ।
 विसर्पदाहज्वररक्तपित्ते क्षीणक्षतानां च रसायनं वै ॥ ४२२ ॥

नेत्ररोगे द्राक्षाद्यं घृतम् ।

द्राक्षा प्रधाना सितशर्करा च राजादनं स्यान्मधुयष्टिका च ।
नीलोत्पलं योजनवष्टिका च काकोलिके पञ्चकजीवकौ च ॥४२३॥
द्व्यक्षप्रमाणैर्विपचेद्धृतस्य प्रस्थं समग्रं पयसा च तुल्यम् ।
नेत्रास्रराजीपटलानि काचमश्रुप्रसेकं तिमिरं च हन्ति ।
दृष्टिप्रसादं च परं करोति शिरोर्धरोगे च हितं नराणाम् ॥४२४॥

रक्तपित्ते दाडिमाद्यं घृतम् ।

दाडिमं तित्तिडीकं च नागपुष्पं शतावरी ।
काकोली क्षीरकाकोली विदारी यक्षहस्तकः ॥ ४२५ ॥
बीजपूरकमूलं च राजवृक्षात्मगुप्तयोः ।
कुष्ठं चेति समैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२६ ॥
चतुर्गुणेन दुग्धेन जलेनाष्टगुणेन च ।
तत्सर्पिः पिवतः सिद्धं कासश्वासापतानकाः ॥ ४२७ ॥
हृद्रोगो रक्तपित्तं च ह्यचिराद्यान्ति संक्षयम् ।

योनिरोगे बृहत्पञ्चमूलाद्यं घृतम् ।

पञ्चमूलं बृहद्वाघ्री त्रिवृदेरण्डकः पलम् ।
प्रत्येकं, तिल्वकस्याथ प्रस्थार्थं प्रस्थमुत्तमा ॥ ४२८ ॥
जलद्रोणे विपाच्यैतद्ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
पादशेषे घृतप्रस्थं दध्याढकयुतं न्यसेत् ॥ ४२९ ॥
पलत्रयं यवक्षारकल्कं युक्त्या विपाचयेत् ।
योनिरोगेऽथ गुल्मेषु वर्ध्मष्वप्युदरेषु च ॥ ४३० ॥

अर्शसि पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

पिप्पलीमरिचहिङ्गुनागरं मातुलङ्गमथ विल्वशुण्डिका ।
कुष्ठधान्यकमथाम्लवेतसं क्षारवन्ति लवणानि पञ्च च ॥४३१॥
तित्तिडीकमथ कारवी वचा दाडिमं च चविका तथैव च ।
चित्रकं च सपुनर्नवं भवेद्धस्तिपिप्पलियुता ह्यजाजिका ॥४३२॥

शुक्तिका बदरमूलपौष्करं पत्रकेण सह तुम्बुरुः स्मृतः ।
 कर्षभागसहितं तथा हरेच्छ्लक्ष्णपिष्टमथ संनयेत्ततः ॥ ४३३ ॥
 प्रस्थमत्र तु घृतस्य दापयेद्द्वय एव च भवेत्तथाढकम् ।
 सर्वमेतदभिमृश्य शास्त्रतः पाचयेत् मृदुनाऽग्निना सुखम् ॥ ४३४ ॥
 मारुतोपहतगात्रचेतसां पार्श्वपृष्ठहनुजत्रुरोगिणाम् ।
 क्षयगरविषदूषितान् मनुष्यान् गतवयसो बलवर्णविप्रयुक्तान् ।
 घृतमिदमगदान् करोति सद्यः पवनकृतान् शमयेच्च सर्वरोगान्

शिरोरोगे मायूरं घृतम् ।

दशमूलीबलारास्त्रान्निफलामधुकैः सह ।
 मायूरं पक्षपादान्नाशकृत्पित्तास्यवर्जितम् ॥ ४३६ ॥
 जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।
 मधुरैः कार्षिकैर्द्रव्यैः शिरोरोगादितापहम् ॥ ४३७ ॥
 कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।
 मायूरमिति विख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ४३८ ॥

महामायूरं घृतम् ।

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ॥ ४३९ ॥
 जीवन्तीन्निफलामेदामृद्धीकर्धिपरूपकैः ।
 समङ्गाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ ४४० ॥
 आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।
 मधुरापिण्डखर्जूरशृङ्गीजीवकपञ्चकैः ॥ ४४१ ॥
 शतावरीविदारीक्षुब्रह्मीसारिवायुतैः ।
 पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्व्यासकैः ॥ ४४२ ॥
 मधुकाक्षोटवाताममुञ्जाताभिषुकैरपि ।
 द्रव्यैरभिर्यथालाभं घृतं सम्यग्विपाचयेत् ॥ ४४३ ॥
 तत्पक्वं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् ।
 शिरोरोगेषु सर्वेषु कासे श्वासे च दारुणे ॥ ४४४ ॥

मन्यापृष्ठग्रहे शोषे स्वरभेदे तथाऽर्दिते ।
 योनिशुक्रप्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ४४५ ॥
 ऋतुस्नाता तथा नारी पीत्वा पुत्रं प्रसूयते ।
 महामायूरमित्येतद्ब्रूतमात्रेयपूजितम् ॥ ४४६ ॥

अशोरोगेऽवाक्पुष्पाद्यं घृतम्

अवाक्पुष्पी बला दावीं पृष्ठिपर्णीं त्रिकण्टकः ।
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ४४७ ॥
 चतुष्पस्थे घृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत् ।
 कल्कार्थं तत्र देया तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
 पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ४४८ ॥
 कलिङ्गाः शालमलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम् ।
 कटफलं चित्रको मुस्ता प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥ ४४९ ॥
 कमलोत्पलाकिञ्जल्कः समद्वा सनिदिग्धिका ।
 विल्वं मोचरसः पाठा ग्राह्यं कर्षसमं पृथक् ॥ ४५० ॥
 सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।
 सर्वैरेभिर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५१ ॥
 एतदर्शःस्वतीसारं त्रिदोषे रुधिरक्षुत्तौ ।
 प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ४५२ ॥
 उन्मादे बहुशश्चापि शोफे शूले गुदाश्रये ।
 मूत्रग्रहे च मन्देऽग्नौ मूढवातेऽरुचौ तथा ॥ ४५३ ॥
 प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाश्रिवर्धनम् ।
 विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ४५४ ॥

अपतन्त्रके शुक्रनासाद्यं घृतम् ।

बृहत्यौ शुक्रनासा च नागवली महौषधम् ।
 निचुलश्चैव भार्गी च काकादन्युपचेलिका ॥ ४५५ ॥
 वर्षाभूश्चेति तैस्तुल्यैरक्षमात्रैः पचेद्भिषक् ।
 तोयाढके घृतप्रस्थं सिद्धं तच्चापि पाययेत् ॥ ४५६ ॥

कासं श्वासं महाहिकां हृद्रोगं सापतञ्जकम् ।
नातिक्रामेदिदं सर्पिर्वैलामिव महोदाधिः ॥ ४५७ ॥

उन्मादे चैतसं घृतम् ।

श्यामा मधुरसा रास्त्रा दशमूलं शतावरी ।
श्वदंष्ट्रा शणमूलं च तैर्युक्त्या काथकल्कितैः ॥ ४५८ ॥
साधितं चैतसं नाम घृतं चेतोविकारनुत् ।
उन्मादमदमूर्च्छायज्वरापस्मारभेषजम् ॥ ४५९ ॥

क्षीणक्षते समदुग्धकं घृतम् ।

षोडशभिर्जलपात्रैर्षुद्रिकायाः पलानि दश षट् च ।
अष्टौ मधुकपलानि छागान्मांसात्तुलार्थं च ॥ ४६० ॥
अवशिष्टादतोयं पूतं शीतं कषायमवतार्य ।
दत्त्वा कषायतुल्यं पयोऽथ नवसर्पिषः प्रस्थम् ॥ ४६१ ॥
ऋषभकजीवकमेदागिदारिवीरात्मशुभानाम् ।
भव्याक्षोऽनिकोचकशृङ्गाटकपद्मकबीजानाम् ॥ ४६२ ॥
भागानक्षसमानथ संसाधयेत्तु मृद्रशौ ।
सम्यक् सिद्धे तस्मिन् सितशर्करापलान्यष्टौ ॥ ४६३ ॥
मधुनश्च पलान्यष्टौ चत्वारि पलानि पिप्पलीचूर्णात् ।
समदुग्धकघृतमेतज्जनकेश्वरपूजितं समुद्दिष्टम् ॥ ४६४ ॥
क्षीणक्षतेऽल्पशुक्ले तद्रक्तपैत्तिकेषु रोगेषु ।
स्त्रीकामेषु च देयं बल्यं वृष्यं च घृतमेतत् ॥ ४६५ ॥

वातगुल्मे हिङ्गवाथं घृतम् ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषविडदाडिमदीप्यकैः ।
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ ४६६ ॥
शटीवचाजगन्धैलासुरसैर्दधिसंयुतैः ।
शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद्वातगुल्मिनाम् ॥ ४६७ ॥

इति श्रीशोऽलग्रथिते गदानिग्रहे प्रयोगखण्डे प्रथमो घृताधिकारः समाप्तः ।

अथातो द्वितीयस्तैलाधिकारः प्रारभ्यते ।

कुष्ठे कटुकालाबुतैलम् ।

कटुकालाबूवीजं द्वे तुत्ये रोचना हरिद्रे द्वे ।
 बृहतीफलमेरुण्डः सविशालश्चित्रको मूर्वा ॥ १ ॥
 कासीसहिङ्गुव्योषसुरदारुतुम्बरुविडङ्गं च ।
 लाङ्गलकी कुटजत्वक् कटुकारुया रोहिणी चैव ॥ २ ॥
 सर्षपतैलं कल्कैर्मूत्रे च चतुर्गुणे गवां साध्यम् ।
 कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गाद्रातकफहन्तु ॥ ३ ॥

कुष्ठे मरीचाद्यं तैलम् ।

मरीचदारुभद्रश्रीद्विहरिद्रात्रिवृद्धनैः ।
 पलिकैर्मूत्रपिष्टैस्तु विषस्यार्धपलेन च ॥ ४ ॥
 ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
 प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ॥ ५ ॥
 पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीत्रणापचीः ।

वातव्याधौ बलातैलम् ।

बलाया जातसारायास्तुलां कुर्यात्सुकुट्टिताम् ॥ ६ ॥
 पचेत्तोयचतुर्द्रोणे चतुर्भागावशेषिते ।
 पलानि दश पिष्टानि बलायास्तत्र दापयेत् ॥ ७ ॥
 लुञ्जितानां तिलानां च दद्यात्तैलाढकद्रयम् ।
 चतुर्गुणेन तोयेन पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ८ ॥
 वातव्याधिषु सर्वेषु रक्तपित्ताश्रयेषु च ।
 व्यापन्नासु च योनिषु शस्तं नष्टे च रेतसि ॥ ९ ॥
 तालुशोषं तृषां दाहं पार्श्वशूलमसृग्दरम् ।
 हन्ति शोषमपस्मारं विसर्पं सशिरोग्रहम् ॥ १० ॥
 आयुर्वर्णकरं चैव बलातैलं प्रजाकरम् ।

वातव्याधौ बृहद्वलातैलम् ।

तुलां बृहद्वलायास्तु चतुर्द्वौण्डम्भसः पचेत् ॥ ११ ॥
 समुत्तार्य ततः सम्यग्दशभागस्थिते रसे ।
 दधिमण्डेक्षुनिर्यासयुक्तैस्तैलाढकं समैः ॥ १२ ॥
 पचेत्साजपयोर्धाशैः कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
 शटीसरलः शिवालामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः ॥ १३ ॥
 पद्मकातिवलामुस्ताशूर्पपर्णाहरेणुभिः ।
 यष्ट्याहमुरसव्याघ्रनखर्षभकजविकैः ॥ १४ ॥
 पलाशरसकस्तूरीनलिकाजातिकोशकैः ।
 स्पृक्काकुङ्कुमशैलेयमालतीकट्फलाम्बुभिः ॥ १५ ॥
 त्वचाकुन्दुरुकर्पूररुष्कश्रीनिवासकैः ।
 लवङ्गनखकङ्गोलकुष्ठमांसीमियङ्गुभिः ॥ १६ ॥
 स्थौण्यतगरध्यामवचादमनचोरकैः ।
 सनागकेशरैः, सिद्धं विधिना च प्रयोजयेत् ॥ १७ ॥
 कासं श्वासं ज्वरं छर्दिं शूलं हिक्कां क्षतक्षयम् ॥ १८ ॥
 घ्नीहं शोषमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।
 बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिहरं परम् ॥ १९ ॥
 वातव्याधौ तृतीयं बलातैलम् ।
 बलाशतकषाये तु तैलस्यार्धाढकं पचेत् ।
 कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥ २० ॥
 सूक्ष्मैलापिप्पलीकुष्ठवगोलागरुकेशरैः ।
 गन्धैश्च जीवनीयैश्च क्षीराढकसमायुतम् ॥ २१ ॥
 एतन्मृद्वाग्निना पक्वं स्थापयेद्वाजने शुभे ।
 सर्ववातविकारांस्तु सर्वधात्वन्तराश्रयान् ॥ २२ ॥
 शमयेत्तैलमेतच्चु च्छिन्नाभ्रमिव मारुतः ।
 बलातैलं नरेन्द्रार्हमेतद्वातविकारनुत् ॥ २३ ॥

मूढगर्भे चतुर्थं बलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ।
 यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा ॥ २४ ॥
 अष्ट्रावष्टौ शुभान् भागाँस्तैलादेकं तदेकतः ।
 मधुरं गणमावाप्य पचेत् सैन्धवसंयुतम् ॥ २५ ॥
 अगुरुं सर्जनिर्यासं सरलं देवदारु च ।
 मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलान् कालानुसारिवाप्तु ॥ २६ ॥
 मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचांश्च
 शतावरीं चाश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाप्तु ।
 सौवर्णे साधु सिद्धं तद्राजते मृन्मयेऽपि वा ॥ २७ ॥
 प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुप्तं निधापयेत् ।
 बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ २८ ॥
 यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ।
 या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥२९॥
 मथितेऽभिहते धातुक्षीणे धर्महते तथा ।
 भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रयुज्यते ॥ ३० ॥
 एतदाक्षेपकार्दींश्च वातव्याधानपोहति ।
 नरः प्रत्यग्रधातुस्तु भवेत्सुस्थिरयौवनः ॥ ३१ ॥
 हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं च दुस्तरम् ।
 षण्मासान् संप्रयुज्यैतदन्नदृष्टिं व्यपोहति ॥
 राज्ञामेतत्प्रकर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ।
 सुखिनः सुकुमाराश्च धनिनश्चापि ये नराः ॥ ३२ ॥

वातव्याधौ प्रसारणीतैलम् ।

उत्पाद्य मूलपत्राभ्यां जातसारां प्रसारणीम् ।
 शतं पलानि संकुट्य कटाहे समधिश्चयेत् ॥ ३३ ॥
 वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ।
 कषायसममात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥

शुण्ठीपलानि पञ्चैव रास्नायाश्च पलद्वयम्
 दध्नस्तथाऽऽढकं दत्त्वा द्विगुणं चाम्लकाञ्जिकम् ।
 यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ ३५ ॥
 द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकस्य पलद्वयम् ।
 प्रसारणीपले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥
 एतत्सर्वं समालोड्य शनैर्मृद्रग्निना पचेत् ॥ ३६ ॥
 एतद्भ्यञ्जनं श्रेष्ठं नस्यकर्माणि शस्यते ।
 पाने वस्तौ च दातव्यं न क्वचित्पतिहन्यते ॥ ३७ ॥
 अशीतिं वातरोगाणां तैलमेतद्व्यपोहति ।
 गृध्रसीं सास्थिभङ्गां च मन्दाग्निं च नाशयेत् ॥ ३८ ॥
 अपस्मारमथोन्मादं विद्रधिं मन्दगामिताम् ।
 त्वग्गताश्चापि ये वाताः सिरासन्धिगताश्च ये ॥ ३९ ॥
 जानुगुल्फगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च तान् ।
 अश्वं वा वातसंभ्रमं नरं वा जर्जरीकृतम् ॥ ४० ॥
 सर्वान् प्रशमयत्येतत्तैलमात्रेयपूजितम् ।
 प्रजाकरं च बन्ध्यानामिन्द्रियैश्वर्यकारकम् ॥ ४१ ॥
 एतेनाथऋष्णीनां बहुपुत्रं कुलं कृतम् ।
 तैलं चेदं प्रसारण्या बलमांसविवर्धनम् ॥ ४२ ॥
 धन्यं प्रजाकरं श्रेष्ठं वार्धक्ये चापि सेवितम् ।
 पङ्कुर्यः पीठसर्पी वा पीत्वैतत्संप्रधावति ॥ ४३ ॥

द्वितीयं प्रसारणातैलम् ।

प्रसारण्यास्तुलामेकां बलामूलं तदर्धकम् ।
 शतावर्यश्वगन्धा च शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ४४ ॥
 गुडूची दशमूलं च चित्रको मदनं शटी ।
 पलांशकं समापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
 चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ।
 शताह्वं मधुकं रास्तां पिप्पलीं नागरं वचाम् ॥ ४६ ॥

कुष्ठं हरेणुकां मांसीभियङ्ग्विन्द्रयवान् विडम् ।
 सैन्धवं शृङ्गवेरं च यवक्षारं सचित्रकम् ॥ ४७ ॥
 मधूलिकां नखं चैव पालिकं श्लक्ष्णपेषितम् ।
 पचेत्तैलाढकं पूतमारनालपयोयुतम् ॥ ४८ ॥
 एतदभ्यञ्जनं श्रेष्ठं नस्यकर्मानुवासने ।
 गृध्रसीमस्थिभङ्गं च मन्दाशित्वं तथा वृणाम् ॥ ४९ ॥
 अपस्मारं तथोन्मादं विद्रधिं मन्दगामिताम् ।
 त्वग्गताश्चापि ये वाताः सिरासन्धिगताश्च ये ॥ ५० ॥
 अश्वं वा वातसंभ्रं नरं वा जर्जरीकृतम् ।
 सर्वान् प्रशमयत्येतत्तैलमात्रेयपूजितम् ॥ ५१ ॥
 स्थिरीकरणमेतद्धि वलीपलितनाशनम् ।
 इन्द्रियाणां बलं कुर्याद्द्रवणैर्दार्यकरं तथा ॥ ५२ ॥
 बल्यं प्रजाकरं श्रेष्ठं वार्धक्ये चापि सेवितम् ।
 पङ्कुर्वाऽप्यथवा खड्गः पीत्वा तैलं प्रधावति ॥ ५३ ॥
 वातरोगे तृतीयं प्रसारणतैलम् ।
 उत्पाद्यमूलपत्राभ्यां जातसारां प्रसारणीम् ।
 शतं पलानि संकुड्य कटाहे समधिश्रयेत् ॥ ५४ ॥
 दशमूली बला रास्त्रा तथा सहचरामृते ।
 शतावरी श्वदंष्ट्रा च ह्येरण्डः कपिकच्छुका ॥ ५५ ॥
 पृथग्दशपलान् भागान् मन्दाग्नौ समधिश्रयेत् ।
 वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५६ ॥
 कषायसमभागं तु तैलमत्र प्रदापेयत् ।
 प्रशस्ते च दिने कार्यं नक्षत्रे चापि शोभने ॥ ५७ ॥
 देवदारु वचां मुस्तं शताह्वां मधुयष्टिकाम् ।
 पिप्पलीं मधुकं रास्त्रामष्टवर्गेण संयुताम् ॥ ५८ ॥
 चित्रकं पञ्चकोशीरे कुष्ठं व्याघ्रनखं शटीम् ।
 शुण्ठीसैन्धवमङ्घ्रिष्ठाः पिष्ट्वा कल्कानि कारयेत् ॥ ५९ ॥

दधिमस्त्वम्लशुक्तानां तथा मांसरसस्य च ।
 मत्पेकमाहं दद्याच्छनैर्मृद्रग्निना पचेत् ॥ ६० ॥
 एतदभ्यञ्जनं पानं नस्यकर्मानुवासनम् ।
 पृष्ठपार्श्वग्रहे शूले सक्थिवङ्गणयोस्तथा ॥ ६१ ॥
 एकाङ्गपक्षघाते च हनुमन्याशिरोग्रहे ।
 बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दापयेत् ॥ ६२ ॥
 अभ्यङ्गाच्चवगतं हन्ति पानान्मांसगतं तथा ।
 पक्काशयगते वस्तिर्निरूहः सार्वकार्मिकः ॥ ६३ ॥
 अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
 विंशतिं श्लेष्मजाश्चैव सर्वानेवापकर्षति ॥ ६४ ॥
 गृध्रसीं वातभ्रं च ऋतुदोषं तथैव च ।
 ये नरा नष्टशुक्राश्च ऋतुहीनाश्च याः स्त्रियः ॥ ६५ ॥
 बन्ध्या च लभते गर्भमृतुस्त्राता न संशयः ।
 (यस्मात्प्रसारयत्येषा मेधाध्यङ्गवलान् शुभा ॥ ६६ ॥
 आयुर्वृद्धिकरी तस्माज्जनकोक्ता प्रसारणी ।)

वातव्याधौ चतुर्थं प्रसारणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ॥ ६७ ॥
 पादशेषे पचेत्तैलं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ।
 द्विगुणैः श्लक्ष्णपिष्टानि द्रव्याणीमानि योजयेत् ॥ ६८ ॥
 द्विपलान्यग्निपिष्ट्याहं कणामूलं पटुं वचाम् ।
 मूलं तथा प्रसारण्याः क्षारं च यवशूकजम् ॥ ६९ ॥
 त्रिंशद्भ्रल्लातकास्थीनि नागरात्पलपञ्चकम् ।
 सिद्धं मृद्रग्निना तैलं वातश्लेष्माभयाञ्जयेत् ॥ ७० ॥
 अशीतिं नरनारीणां वातरोगान्निषूदति ।
 कुञ्जवामनपङ्कत्वं खञ्जत्वं गृध्रसीं खुडम् ॥ ७१ ॥
 हन्यात्पृष्ठकटिग्रीवास्तम्भं चाशु व्यपोहति ।

१ एकस्य अङ्गस्य घाते वधे, एकस्य पक्षस्य च वधेऽत्यर्थः ।

पीठसर्पी विभयश्च पीत्वा तैलं सुखी भवेत् ॥ ७२ ॥
तैलं चेदं प्रसारण्या बलवर्णाश्रिवर्धनम् ।

वातरक्ते शतावरीतैलम् ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ ७३ ॥
देवदारु शताह्वा च मांसी शैलेयकं बला ।
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला सांशुमती तथा ॥ ७४ ॥
एतैः कर्षसमैर्भगैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
कुञ्जवामनपङ्कनां बधिरच्यङ्गकुष्ठिनाम् ॥ ७५ ॥
वायुना भयदेहानां येऽवसीदन्ति मैथुने ।
जराजर्जरदेहानां वर्ध्मार्तमुखशोषिणाम् ॥ ७६ ॥
त्वग्गताश्चापि ये वाताः सिरास्त्रायुगताश्च ये ।
सर्वास्तान्नाशयत्याशु तैलं नास्त्यत्र संशयः ॥ ७७ ॥
नारायणमिदं नाम्ना विष्णुना समुदाहृतम् ।
दशाङ्गमिति विख्यातं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ७८ ॥

वातव्याधौ द्वितीयं शतावरीतैलम् ।

शतावरीस्तु मूलानां रसप्रस्थं समाहरेत् ।
क्षीरद्विगुणसंयुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७९ ॥
शतपुष्पा नतं दारु मांसी शैलेयकं वचा ।
माङ्गिष्ठा चन्दनं कुष्ठमेला चांशुमती बला ॥ ८० ॥
काकोली चाश्वगन्धा च मेदा रास्त्रा पुनर्नवा ।
एतैरर्धपलैर्द्रव्यैः शनैर्मृद्भिना पचेत् ॥ ८१ ॥
अस्य तैलस्य पक्कस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
कुञ्जानां वामनानां च पङ्कनां पीठसर्पिणाम् ॥ ८२ ॥
आक्षेपके च भग्नानां तथा भग्नास्थिसन्धिषु ।
एकाङ्गं तुद्यते यस्य गतिर्यस्य विहन्यते ॥ ८३ ॥
रक्तपित्तहरं शस्तं वातघ्नं परमं स्मृतम् ।

वातव्याधौ रात्रतैलम् ।

रास्त्रामूलस्य कुर्वीत द्वे शते च बलाशतम् ॥ ८४ ॥
 शतावरीगुडूचीभ्यां वरुणाञ्च शतं शतम् ।
 निर्गुण्डीशिग्रुकैरण्डशिरीषारग्वधादपि ॥ ८५ ॥
 श्वदंष्ट्राभूतिकाभ्यां च पृथक् पञ्चपलं क्षिपेत् ।
 दशद्रोणजले तत्तु साधयेत्सूक्ष्मकुट्टितम् ॥ ८६ ॥
 द्रोणावशेषे तस्मिंस्तु तैलस्यार्धार्धं पचेत् ।
 द्रोणा दश च दुग्धस्य घृतस्यार्धाढकं तथा ॥ ८७ ॥
 तदैकध्यं विपक्तव्यं गर्भं चात्र समावपेत् ।
 मधुकं मालतीपुष्पं मञ्जिष्ठा मदयन्तिका ॥ ८८ ॥
 काशमर्याण्यजमोदा च लवली तालमस्तकम् ।
 आत्मगुप्ताफलं मूर्वा वार्ताकानि मधूलिका ॥ ८९ ॥
 सहदेवामयैरण्डं रोहिषो नवमालिका ।
 (फणिज्जकं मधुकानि वीरा नीरकदम्बकम् ।
 फलं च पीलुपालाशं कठीराश्वत्थतिन्दुकम् ।)
 कायस्था च वयस्था च मधुपर्णी च चित्रकः ॥ ९० ॥
 महापुरुषदन्ता च बला सकदलीफला ।
 देवदार्विगरुश्रेष्ठं चन्दनं परिपेलवम् ॥ ९१ ॥
 नीलोत्पलमुशीराणि मृद्रीका साम्लवेतसा ।
 एभिः पलशतैः पिष्टैः सम्यक् तैलं विपाचयेत् ॥ ९२ ॥
 भोजनेऽभ्यञ्जने पाने वस्तौ नस्ये च शस्यते ।
 वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ९३ ॥
 अपस्मारे रक्तगुल्मे पुसां नष्टे च रेतसि ।
 रास्त्रातैलमिदं श्रेष्ठं बलमांसविवर्धनम् ॥ ९४ ॥
 वातव्याधौ शताह्वातैलम् ।
 जलद्रोणे शंताह्वायाः पादशेषं तुलां पचेत् ।
 काथं तैलाढकोन्मिश्रं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ९५ ॥

हरेणुकुष्ठसूक्ष्मैलातरागरूसैन्धवैः ।

पकं कल्कैः पलसमैः प्रयोज्यं वातरोगनुत् ॥ ९६ ॥

योनिशुकरजोदोषनाशनं स्त्रीषु पुत्रदम् ।

शंताह्वातैलमित्येतद्वृंहणं बलवर्धनम् ॥ ९७ ॥

वातव्याधौ मूलकतैलम्

वालमूलकानिर्गृह्णतैलदध्यम्लकाञ्जिकम् ।

क्षीरं चैवाढकं स्यात्तु पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ९८ ॥

रास्ना भल्लातकश्चैव सैन्धवं गजपिप्पली ।

बला सातिविषा शुण्ठी पिप्पलयश्चित्रको वचा ॥ ९९ ॥

श्वदंष्ट्रा चेति तत्पकं श्लेष्मवातामयापहम् ।

गृध्रसीवर्ध्मपङ्कत्वं कुण्डलं सापतन्नकम् ॥ १०० ॥

कट्यूरुस्तम्भशोषं च पर्वस्तम्भं सकम्पनम् ।

हन्याद्गुल्मं च वातोत्थं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १०१ ॥

वन्ध्यानां पुत्रदं चैव तैलं मूलकसाह्वयम् ।

वातव्याधौ सहचरतैलम् ।

समूलपत्रशाखस्य शतं सहचरस्य च ॥ १०२ ॥

चतुर्गुणे जलद्रोणे साधयेत्सूक्ष्मचूर्णितम् ।

द्रोणावशेषे पूते च पचेत्चैलाढकं शनैः ॥ १०३ ॥

सहचरस्य मूलानां कल्को दशपलो भवेत् ।

परिस्राव्य सुखोष्णे तु शर्करायाः प्रदापयेत् ॥ १०४ ॥

पलानि दश चाष्टौ च निर्मथ्य च निधापयेत् ।

वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रशस्यते ॥ १०५ ॥

एकाङ्गपक्षघातं च हनुग्रहशिरोग्रहम् ।

अर्दितं वेपथून्मादौ सर्वगात्रग्रहं ज्वरम् ॥ १०६ ॥

गृध्रसीं वातगुल्मं च भूतोपहतचित्ताम् ।

अपस्मारं हनुस्तम्भमूरुस्तम्भं च नाशयेत् ॥ १०७ ॥

गण्डकुण्डलवर्धमानि हनुजानुषिकुञ्जनम् ।
संधानं सर्वगात्राणां स्तम्भनं शोधनं तथा ॥ १०८ ॥
शमयेत्तैलमेतत्तु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।

वातव्याधौ सहचरतैलम् ।

समूलपत्रशाखस्य शतं सहचरस्य च ॥ १०९ ॥
शोदयित्वा जलद्रोणे काथं पादावशेषितम् ।
शतपुष्पा तथा दारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ११० ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ।
एतैः कर्षसमैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १११ ॥
पयस्तद्विगुणं दत्त्वा शर्करायाः पलाष्टकम् ।
अथ तैलस्य पकस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ११२ ॥
ये च क्रोष्ठगता वाता ये च वाताः शिरोगताः ।
अस्थिमज्जगताश्चैव कर्णमध्यगताश्च ये ॥ ११३ ॥
मूकानां मिन्मिनानां च पीठकट्यूरुसर्पिणाम् ।
स्वभावेन च ये भग्ना अस्थिभग्नाश्च ये नराः ॥ ११४ ॥
तेषां च संप्रयोक्तव्यं हितावहमनुत्तमम् ।

वातव्याधौ श्योनाकतैलम् ।

शतं श्योनाकमूलस्य दशमूलीशतं तथा ॥ ११५ ॥
रोहिषं शिग्रुकं रास्नां पृथक् पञ्चशतं क्षिपेत् ।
छागलादथ गव्याच्च माहिषात्कौक्कुटादपि ॥ ११६ ॥
पञ्चाशत्पलिकान् भागान् मांसादथ प्रदापयेत् ।
तोयद्रोणेषु वेदेषु साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥ ११७ ॥
द्रोणावशेषपूते च पचेत्तैलाढकं शनैः ।
जीवां महासहां क्षुद्रसहां च जीवकं वचाम् ॥ ११८ ॥
कुष्ठं च शतपुष्पां च सूक्ष्मैलां चैलवालुकम् ।
जीवकपर्भकौ द्राक्षां शृङ्गां कर्कटकस्य च ॥ ११९ ॥
मोचां च निचुलं मुस्तां सारिवे द्वे महौषधम् ।

बलामतिबलां वीरां पारावतपदीं स्थिराम् ॥ १२० ॥
 पिप्पलीं शर्करां दन्तीं त्वक्पत्रं च शतावरीम् ।
 द्रवन्तीं माधवीं शिग्रुं सुवहां कदलीं तथा ॥ १२१ ॥
 अशोकरोहिणीं पाठां कदलीकुसुमानि च ।
 सैन्धवं सुरसां कालां सर्पाक्षीं गन्धनाकुलीम् ॥ १२२ ॥
 चोरकं गुग्गुलं चैव बिम्बीं हंसपदीमपि ।
 पिष्ट्वा कल्केन तत्तैलं पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ १२३ ॥
 पाने चाभ्यञ्जने चैव नस्ये वस्तौ च शस्यते ।
 वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे ज्वरे भ्रमे ॥ १२४ ॥
 हृद्ग्रहे वातगुल्मे च पङ्कत्वे वातशोणिते ।
 मारुते पित्तसंसृष्टे सोन्मादेषु गदेषु च ॥ १२५ ॥
 कुण्डले मूत्रकृच्छ्रे च वर्धमूत्रभगन्दरे ।
 गात्रे गात्रैकदेशेषु वायुना स्तम्भितेषु च ॥ १२६ ॥
 हनुग्रहेऽदिते चैव वेपने गात्रसंग्रहे ।
 श्यानाकतैलमित्येतत्ख्यातं वातनिवर्हणम् ॥ १२७ ॥
 पृथग्वातात्मके रोगे संसृष्टे च तथाऽमृतम् ।
 सर्वाङ्गवातव्याधौ श्वदंष्ट्राद्यं तैलम् ।
 आदाय मूलपत्राभ्यां श्वदंष्ट्रां मतिमान् भिषक् ॥ १२८ ॥
 शृतं पलशतं क्षुण्णं तं तु निष्पीडयेद्बुधः ।
 रसे चतुर्गुणे तस्मिन् पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ १२९ ॥
 द्विगुणं च दधिक्षीरमारनालं तथैव च ।
 औषधानि च पिष्ट्वानि देयान्यत्र प्रमाणतः ॥ १३० ॥
 देवदारु शताह्वा च हिङ्गु त्रिकटुकं वचा ।
 मुस्ता सतगरं कुष्ठं श्लक्ष्णपिष्ट्वानि भागशः ॥ १३१ ॥
 यदा सिद्धं विजानीयात्तदैतदवतारयेत् ।
 पानानुलेपनेऽभ्यङ्गे बाह्वे चाभ्यन्तरेऽनिले ॥ १३२ ॥
 सर्वगात्रगते वाते श्वदंष्ट्रातैलगुत्तमम् ।

खुड्वाकपद्मकं तैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधितम् ॥ १३३ ॥

सुपिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ।

खुड्वाकपद्मकं तैलं वातासृग्दरदाहजित् ॥ १३४ ॥

वातरक्ते महापद्मकं तैलम् ।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफलिनीपद्मकोत्पलैः ।

पृथक् पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥ १३५ ॥

जले शृतैः पचेत्तैलं प्रस्थं सौवीरसंयुतम् ।

लोभ्रकालीयकोशीरजीवकर्षभकेशरैः ॥ १३६ ॥

मदयन्तीलतापत्रपद्मकेशरपत्रकैः ।

प्रपौण्डरीककाकोलीमांसीदारुप्रियङ्गुभिः ॥ १३७ ॥

कुङ्कुमस्य पलार्धेन मञ्जिष्ठाद्रिपलेन च ।

महापद्ममिदं तैलं वातासृग्गोनाशनम् ॥ १३८ ॥

ज्वरे तृतीयं महापद्मकं तैलम् ।

दर्भवेतसमूलानि चन्दनं मधुकं बला ।

फेनिलापद्मकोशीरमञ्जिष्ठाकमलोत्पलम् ॥ १३९ ॥

कैशुकं चात्र भागाः स्युः पृथक् पञ्चपलोन्मिताः ।

जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १४० ॥

जीवकर्षभकौ भेदां रोभ्रं भृष्टातकं तथा ।

कालीयकं प्रियङ्गुं च दद्यात्केशरमेव च ॥ १४१ ॥

यष्टीं प्रपौण्डरीकं च पद्मकं पद्मकेशरम् ।

सुरभिं कुङ्कुमं चैव मञ्जिष्ठां मदयन्तिकाम् ॥ १४२ ॥

मांसीं पत्रं च तुल्यांशं द्विगुणं कुङ्कुमं भवेत् ।

चतुर्गुणा तु मञ्जिष्ठा सौवीरं तैलसंमितम् ॥ १४३ ॥

तैलप्रस्थं पचेदेभिः कषायेणाथ पेपितैः ।

एतदभ्यञ्जनं तैलं विषमज्वरनाशनम् ॥ १४४ ॥

१ खुड्वाकशब्दोऽल्पार्थः । यथा चरके-खुड्डिका गर्भावक्रान्तिः, अल्पेत्यर्थः ।

२ 'वातासृग्दरनाशनम्' इति पा० ।

महापद्ममिति ख्यातमेतत्तैलं महाशुणम् ।
वर्णप्रसादनं श्रेष्ठं सौकुमार्यविवर्धनम् ॥ १४५ ॥
पानाभ्यञ्जनवस्तौ च नस्यकर्मणि पूजितम् ।
वातपित्तभवं क्षिप्रं ज्वरमेतन्नियच्छति ॥ १४६ ॥

वातव्याधौ बृहन्माषतैलम् ।

प्रस्थे द्वे खण्डमाषाणां क्वाथयेत्सलिलार्मणे ।
चतुर्भागावशिष्टेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४७ ॥
मस्तुनस्त्वाढकं दत्त्वा तत्समं चाम्लकाञ्जिकम् ।
औषधानि च गर्भार्थं तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १४८ ॥
सैन्धवं मदनं रास्त्रा शताह्वा श्यूषणं वचा ।
तगरं चोरुबूकश्च मञ्जिष्ठा पद्मकेशरम् ॥ १४९ ॥
बला गोकुशुकः पाठा सरलो देवदारु च ।
अजगन्धाऽश्वगन्धा च पुष्करं सपुनर्नवम् ॥ १५० ॥
एतानि चाक्षमात्राणि कल्कीकृत्य प्रयोजयेत् ।
नस्ये पाने तथाऽभ्यङ्गे बस्तिकर्मणि योजयेत् ॥ १५१ ॥
अर्दितं कर्णशूलं च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ।
वाधिर्यं पक्षघातं च गृध्रसीं खञ्जपङ्कताम् ॥ १५२ ॥
सर्वानेताञ्जयेच्छीघ्रं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
माषतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ १५३ ॥

बाहुरोगे लघमाषतैलम् ।

कपिकच्छुकवाट्यालकशतावरीसितपुनर्नवामूलैः ।
सैन्धवजिङ्गणिकातरुनिर्यासाभ्यां च कटुतैलम् ॥ १५४ ॥
माषकाथेन पचेद्विगुणेन पूर्वकल्कसंयुक्तम् ।
सकृदुपयुक्तमिदं वै नस्येन निहन्ति बाहुरुजम् ॥ १५५ ॥

वातव्याधौ तृतीयं महामाषतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारी-
गोकण्टटिण्डुकजटाकपिकच्छुतोयैः ।

कार्पासिकास्थिशणवीजकुलत्थकोल-
 काथेन वस्तपिशितस्य रसेन तैलम् ॥ १५६ ॥
 शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च
 सैरण्डमूलसपुनर्नवया सपर्ण्या ।
 रास्त्रावलाशृतलताकटुकैर्विपकं
 माषाल्यमेतदपवाहुकहारि तैलम् ॥ १५७ ॥
 अर्धाङ्गशोषमपतानकमाह्वयात-
 माक्षेपकांसभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।
 नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन
 हन्यात्कटीजघनजानुरुजः समीरान् ॥ १५८ ॥

वातव्याधौ दशाङ्गतैलम् ।

शैरेयकोऽमृता चैव वाजिगन्धा शतावरी ।
 नागबलाप्रसारण्यौ श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ १५९ ॥
 बला चैषां समान् भागान् रास्त्राभागसमन्वितान् ।
 ज्ञात्वा च प्रकृतिं दोषं कषायगुणकल्पयेत् ॥ १६० ॥
 तेन पादावशेषेण तिलतैलाढकं पचेत् ।
 दधिमस्त्विक्षुनिर्यासशुक्ललाक्षोदकैः समैः ॥ १६१ ॥
 चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
 मांसीमधुकमञ्जिष्ठाशताहारक्तचन्दनैः ॥ १६२ ॥
 देवदारुवरीकौन्तीत्वचापत्रकवारिजैः ।
 कुष्ठागरुवचायुक्तैस्तैलं सिद्धं प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥
 बस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये च परिषेचने ।
 सर्वरोगान् जयत्येतत्संस्पृष्टान् मातरिश्वना ॥ १६४ ॥
 विशेषतो ह्यपस्मारमुन्मादं वातशोणितम् ।
 अपत्यजननं स्त्रीणां पुंसां चातिबलप्रदम् ॥ १६५ ॥
 नराणां गद्वदानां च मूकानां वाक्प्रवर्तनम् ।
 मेधाजननमायुष्यं बलवर्णाश्रिवर्धनम् ॥ १६६ ॥

सन्निपातहरं सर्वग्रहघ्नं विषजित् परम् ।
दशाङ्गमिति विख्यातमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १६७ ॥
ऊरुस्तम्भे सैन्धवाद्यं तैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकाचित्रकात् ।
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि द्वाविंशतिमथाढकम् ६८ ॥
आरनालं पचेत्प्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च ।
गृध्रस्यूग्रहारोर्तिर्सर्ववातविकारनुत् ॥ १६९ ॥
कुसुम्भाद्यं तैलम् ।

कुसुम्भकुङ्कुमोशीरमञ्जिष्ठा रक्तचन्दनैः ।
सिन्धुसर्जरसातङ्कगुडूचीसैन्धवाम्बुदैः ॥ ७० ॥
मूर्वाशतावरीलाक्षामधुकैश्च पलांशकैः ।
चतुर्गुणेन तोयेन पचेत्तैलाढकं भिषक् ॥ १७१ ॥
अर्दितं कर्णशूलं च शिरःशूलं च दारुणम् ।
गृध्रसीं वातरक्तं च पक्षाघातं व्यपोहति ॥ १७२ ॥
तद्गस्तिषु च पानेषु नस्थे च कर्णपूरणे ।
अभ्यङ्गे च शिरोरोगे तैलं विद्याद्यथाऽमृतम् ॥ १७३ ॥
पाणिपादांसदाहेषु गुदयोनिरुजासु च ।
सुप्तिवातेऽस्थिभङ्गे च देवदेवेन पूजितम् ॥ १७४ ॥
भगन्दरे मागध्याद्यं तैलम् ।

मागधी मधुकं रोध्रं कुष्ठमेला हरेणवः ।
समङ्गा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम् ॥ १७५ ॥
सर्जरसः म्रियङ्गुश्च पद्मकं पद्मकेशरम् ।
मातुलुङ्गस्य पत्राणि मधुच्छिष्टं ससैन्धवम् ॥ १७६ ॥
एतत्संभृत्य संभारं तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद्धि गण्डमालासु मण्डलेष्वथ मेहिषु ॥ १७७ ॥
रोपणाय हितं तैलं भगन्दरविनाशनम् ।

भगन्दरे चित्रकार्यं तैलम् ।

चित्रकार्कत्रिवृत्पाठामलयूहयमारकान् ॥ १७८ ॥
 लाङ्गलीं सप्तपर्णीं च सुधां वचां सुवर्चिकाम् ।
 ज्योतिष्मतीं च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ १७९ ॥
 एतदभ्यञ्जने तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे ।
 शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १८० ॥

गण्डमालायामजमोदाद्यं तैलम् ।

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्रयम् ।
 क्षारौ समुद्रफेनश्च सान्द्रकः सरलोद्भवः ॥ १८१ ॥
 इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकं समम् ।
 ऐभिः सार्षपकं तैलमजामूत्राष्टभागकम् ॥ १८२ ॥
 मृद्गशौ पाचयेदेतत्स्नुह्वर्कक्षीरसंयुतम् ।
 अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ १८३ ॥
 आमां, पचेद्विदग्धां च, पक्वां चैव विशोधयेत् ।
 रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ १८४ ॥

वातव्याधायकश्चगन्धायं तैलम्

मूलानामश्वगन्धायाः शतं स्यात्खण्डशः कृतम्
 द्विट्रोणेऽर्षां पचेत्क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥ १८५ ॥
 तैलाढकं समावाप्य क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
 समालोड्य पचेदेतत् कल्काश्रैषां समावपेत् ॥ १८६ ॥
 तगरं शतपुष्पां च मुस्तं व्याघ्रनखं त्वचम् ।
 मधुकं शृङ्गवेरं च पृथ्विपर्णीं बलां स्थिराम् ॥ १८७ ॥
 रास्त्रां पुष्करमूलं च भूतीकं सपुनर्नवम् ।
 मञ्जिष्ठां नलदं पत्रं द्रवन्तीं सुरसां वचाम् ॥ १८८ ॥
 श्वदंष्ट्रां च मृणालं च वयस्थां बहुपुत्रिकाम् ।
 पलार्धांश्चक्षुणपिष्टांस्तु दत्त्वा गर्भं विपाचयेत् ॥ १८९ ॥

१ ' एतदभ्यञ्जनं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ' इति पा० । २ ' अजामूत्रैर-
 ष्युणैर्युक्तं सिद्धार्थतैलकम् ' इति पा० ।

सन्निपातहरं सर्वग्रहघ्नं विषजित् परम् ।
दशाङ्गमिति विख्यातमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १६७ ॥

ऊरुस्तम्भे सैन्धवाद्यं तैलम् ।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकाचित्रकात् ।
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि द्वाविंशतिमथाढकम् ६८ ॥
आरनालं पचेत्पस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च ।
शृध्रस्यूरुग्रहार्शोर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ १६९ ॥
कुसुम्भाद्यं तैलम् ।

कुसुम्भकुङ्कुमोशीरमञ्जिष्टारक्तचन्दनैः ।
सिक्थसर्जरसातङ्कगुड्डीसैन्धवाम्बुदैः ॥ ७० ॥
मूर्वाशितावरीलाक्षामधुकैश्च पलांशकैः ।
चतुर्गुणेन तोयेन पचेत्तैलाढकं भिषक् ॥ १७१ ॥
अर्दितं कर्णशूलं च शिरःशूलं च दारुणम् ।
शृध्रसीं वातरक्तं च पक्षाघातं व्यपोहति ॥ १७२ ॥
तद्वस्तिषु च पानेषु नस्ये च कर्णपूरणे ।
अभ्यङ्गे च शिरोरोगे तैलं विद्याद्यथाऽभृतम् ॥ १७३ ॥
पाणिपादांसदाहेषु शुदयो निरुजासु च ।
सुप्तिवातेऽस्थिभङ्गे च देवदेवेन पूजितम् ॥ १७४ ॥

भगन्दरे मागध्याद्यं तैलम् ।

मागधी मधुकं रोध्रं कुष्ठमेला हरेणवः ।
समङ्गा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम् ॥ १७५ ॥
सर्जरसः प्रियङ्गुश्च पद्मकं पद्मकेशरम् ।
मातुलुङ्गस्य पत्राणि मधूच्छिष्टं ससैन्धवम् ॥ १७६ ॥
एतत्संभृत्य संभारं तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद्धि गण्डमालासु मण्डलेष्वथ मेहिषु ॥ १७७ ॥
रोपणाय हितं तैलं भगन्दरविनाशनम् ।

भगन्दरे चित्रकार्थं तैलम् ।

चित्रकार्कत्रिवृत्पाठामलयूहयमारकान् ॥ १७८ ॥
लाङ्गलीं सप्तपर्णीं च सुधां वचां सुवर्चिकाम् ।
ज्योतिष्मतीं च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ १७९ ॥
एतदभ्यञ्जने तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे ।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १८० ॥

गण्डमालायामजमोदाद्यं तैलम् ।

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्रयम् ।
क्षारौ समुद्रफेनश्च सान्द्रकः सरलोद्भवः ॥ १८१ ॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकं समम् ।
ऐभिः सार्षपकं तैलमजामूत्राष्टभागकम् ॥ १८२ ॥
मृद्गशौ पाचयेदेतत्स्नुहार्कक्षीरसंयुतम् ।
अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ १८३ ॥
आमां, पचेद्विदग्धां च, पक्वां चैव विशोधयेत् ।
रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ १८४ ॥

वातव्याधावश्वगन्धाद्यं तैलम्

मूलानामश्वगन्धायाः शतं स्यात्खण्डशः कृतम्
द्विद्रोणेऽर्षां पचेत्क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥ १८५ ॥
तैलाढकं समावाप्य क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
समालोड्य पचेदेतत् कल्कांश्चैषां समावपेत् ॥ १८६ ॥
तगरं शतपुष्पां च सुस्तं व्याघ्रनखं त्वचम् ।
मधुकं शृङ्गवेरं च पृश्निपर्णीं बलां स्थिराम् ॥ १८७ ॥
रास्तां पुष्करमूलं च भृतीकं सपुनर्नवम् ।
मञ्जिष्ठां नलदं पत्रं द्रवन्तीं सुरसां वचाम् ॥ १८८ ॥
श्वदंष्ट्रां च मृणालं च वयस्थां बहुपुत्रिकाम् ।
पलाशार्कश्क्षुण्णपिष्टांस्तु दत्त्वा गर्भं विपाचयेत् ॥ १८९ ॥

१ ' एतदभ्यञ्जनं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ' इति पा० । २ ' अजामूत्रै-
श्रयुणैर्वृक्तं सिद्धार्थतैलकम् ' इति पा० ।

तत्सिद्धमविदग्धं च ततः समवतारयेत् ।
 वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्यकर्मणि भोजने ॥ १९० ॥
 यत्र यत्र विधातव्यं तन्मे निगदतः शृणु ।
 स्वञ्जमूकजडत्वे च तिभिरे च तथाऽर्बुदे ॥ १९१ ॥
 पक्षाघाते तथाऽऽयामे च्युतभग्नास्थिसन्धिषु ।
 विधेयं पृष्ठभग्नेषु हनुमन्याग्रहे तथा ॥ १९२ ॥
 स्तम्भकम्पेषु शोफेषु रुजासु विविधासु च ।
 ज्वरे च विषमे गुल्मे तथा मास्तशोणिते ॥ १९३ ॥
 ग्रीहि ग्रीहोदरे चैव विद्रवौ गृध्रसीषु च ।
 नष्टशुक्रास्तथा षण्ढा ये च क्षीणेन्द्रिया नराः ॥ १९४ ॥
 भूतोपहतचित्ताश्च शस्यते तेषु नित्यशः ।
 व्यापन्नयोनिवन्ध्यासु पाययेत सदा भिषक् ॥ १९५ ॥
 पुत्रदं परमं प्रोक्तं धन्वन्तरिवचो यथा ।

वातव्याधावश्वगन्धाद्यं तैलम् ।

अश्वगन्धाशतं क्षुण्णं काथ्यं द्रोणे जलस्य च ॥ १९६ ॥
 निःस्त्राव्य विपचेचैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
 कल्कैर्मृगालशालूकविशकिञ्जल्कमालती- ॥ १९७ ॥
 पुष्पैर्मधुकहीवेरसारिवावक्रकैशरैः ।
 मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्रव्यैः ॥ १९८ ॥
 त्रिफलैलावचापत्रमुस्तचन्दनपद्मकैः ।
 पित्तरक्ताश्रयान्वातान् रक्तपित्तमसृग्दरम् ॥ १९९ ॥
 हन्यात्पुष्टिकरं चैव कृशानां मांसवर्धनम्
 रेतोयोनिविकारघ्नं व्रणदोषापकर्षणम् ॥ २०० ॥
 षण्ढानपि वृषान् कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ।

कुङ्कुमार्यं मुखकान्तिदं तैलम् ।

कुङ्कुमं चन्दनं पत्रमुशीरं कमलोत्पले ॥ २०१ ॥
 गोरोचना हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ।
 सारिवारोध्रपत्राङ्गपत्रगैरिककेशरम् ॥ २०२ ॥

स्वर्णक्षीरी म्रियङ्गुश्च कालेयं रक्तचन्दनम् ।
 एषामक्षसमैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २०३ ॥
 अभ्यङ्गाद्राजपत्नीनां ये चान्ये धनिनो नराः ।
 तिलकान् पिडकान् व्यङ्गान् नीलिकां मुखदूषिकाम् २०४
 कार्श्यं चापि शरीरस्य दुःस्त्रायां च विवर्णताम् ।
 नाशयेज्जनयेच्चाशु रूपं चाथ मनोहरम् ॥ २०५ ॥
 पद्मकेसरवर्णाभं मुखं भवति कान्तिमत् ।

वातरक्ते यष्टीमधुकाथं तैलम् ।

शतं पलानि यष्ट्यास्तु क्वाथयेत् पादशेषिते ॥ २०६ ॥
 तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।
 शतपुष्पावरीकुष्ठं पयस्यागुरुचन्दनैः ॥ २०७ ॥
 स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिका—।
 काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यार्धिपद्मकैः ॥ २०८ ॥
 वचाजीवकजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः ।
 प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवैन्द्रीवितुन्नकैः ॥ २०९ ॥
 चतुर्धा तैत्प्रयोगेण हन्ति मारुतशोणितम् ।
 सर्वगात्रानुगं साङ्गशूलं सोपद्रवं तथा ॥ २१० ॥
 वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वरघ्नं बलवर्णकृत् ।

कर्णरोगे लघुक्षारतैलम् ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २११ ॥
 शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रू रसाञ्जनम् ।
 मातुलङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१२ ॥
 तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।
 वार्धिर्यं कर्णनादश्च पूयास्त्रावश्च दारुणः ॥ २१३ ॥
 कृमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात् ।

१ ' ०दूर्वा ० ' इति पा० । २ अभ्यङ्गपाननस्यवास्तिपु चतुष्टुं प्रयोगादित्यर्थः ।

३ ' शुक्तं चतुर्गुणं दत्त्वा तैलमेभिर्विपाचयेत् ' इति पा० ।

कर्णरोगे बृहत्क्षारतैलम् ।

शुष्कमूलकशुष्ठानां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २१४ ॥

शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रू रसाञ्जनम् ।

(सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।

भूर्जग्रन्थिविडं शुक्तं मधुशुक्तं तथैव च ॥)

मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१५ ॥

तैलभेषिधिपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।

वाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्त्रावश्च दारुणः ॥ २१६ ॥

पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ।

विनाशमाशु गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ॥२१७॥

क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं गुरुदन्ताभयापहम् ।

नेत्ररोगे भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गरसस्य भस्थं तैलात्कुडवं पलं च मधुकस्य ॥२१८॥

क्षीरमस्थधिपकं गतमपि चक्षुर्निवर्तयति ।

केशवृद्धौ द्वितीयं भृङ्गराजाद्यं तैलम् ।

भृङ्गरसत्रिफलोत्पलसारि लोहपुरीषसमन्वितकारि २१९

तैलमिदं पच दारुणहारि लुब्धितकेशघनस्थिरकारि ।

केशवृद्धौ तृतीयं भृङ्गराजतैलम् ।

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जावीजचूर्णपरिपाचिततैलम् २२०

मिश्रितं त्रुटिजटासुरकाष्ठैः केशवर्धनमिदं वनितायाः ।

बृहद्भृङ्गराजाद्यं तैलम् ।

आबूपदेशजं पुष्टं गृहीत्वा मार्कवं शुभम् ॥ २२१ ॥

महालाय जर्जरीकृत्य रसं तस्य श्पीडयेत् ।

चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२२ ॥

द्रव्यैरेभिः पयःपिष्टैः संयोज्य मत्तिमान् भिषक् ।

मज्जिष्ठां पद्मकं रोध्रं चन्दनं वैरिकं बलाम् ॥ २२३ ॥

रजन्यौ केशरं दारु प्रियङ्गुमधुयष्टिके ।

प्रपौण्डरीकं सौम्यं च पलिकं तत्र दापयेत् ॥ २२४ ॥

कुष्ठं तगरमाषांश्च सिद्धार्थाश्चागुरुं तथा ।
 मुस्तकं चार्थं शैलेयं कर्चूरं परिकल्कितम् ॥ २२५ ॥
 सम्यक्पक्वं ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
 केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ॥ २२६ ॥
 अकालपलिते चैव दारुणे चैव दारुणे ।
 दन्तकर्णाक्षिरोगेषु नस्यमेतत्प्रदापयेत् ॥ २२७ ॥
 मासं नस्यप्रयोगेण क्षीरान्नप्रतिभोजिनः ।
 कुञ्चिताग्रान् हि केशांश्च स्निग्धान्कुर्याद्ब्रह्मंस्तथा ।
 खालित्ये सेन्द्रलुप्ते च तैलमेतद्यथाऽमृतम् ॥ २२८ ॥
 केशरोगे असनार्थं तैलम् ।

असनसारकपायविपाचितं त्रिफलयामधुकेन च संयुतम् ।
 भवति नावनतैलमनुत्तमं पलितनेत्रविकाररुजापहम् ॥ २२९ ॥

शिरोरोगे षड्विन्दुतैलम् ।

तगरैरण्डमूले च रास्त्रा यष्टी च सैन्धवम् ।
 जीवन्ती शतपुष्पा च विडङ्गं नागरं तथा ॥ २३० ॥
 मधुकसारमित्यभिः कल्कपिष्टैस्तिलोद्भवम् ।
 भृङ्गरसे पचेत्तैलं द्विगुणे गोपयस्यथ ॥ २३१ ॥
 षड्विन्दुनस्यदानेन हन्याच्छीर्षामयान् बहून् ।
 चलतां द्विजकेशानां पततां दार्ढ्यघानयेत् ॥ २३२ ॥
 दृग्वलं परमं तेषां बाहोः स्यादुत्तमं बलम् ।
 वलिपलितहृत्तैलमिदं षड्विन्दुसंज्ञितम् ॥ २३३ ॥

शिरोरोगे द्वितीयं षड्विन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताहा जीवन्ती रास्त्रा लवणोत्तमं च ।
 भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् । २३४
 आजं पयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपकम् ।
 षड्विन्दवो नासिकया प्रयुक्ता निघ्नन्ति सर्वाञ्छिरसो विकारान्

१ ' मुस्तं चण्डां च ' इति पा० । २ ' जीवन्तिकैरण्डजटाशताह्वारास्त्रानतं
 स्याद्ववणोत्तमं च ' इति पा० ३ ' चेति समानि कुर्यात् ' इति पा० ।

च्युतांश्च केशान्पतितांश्च दन्तानावद्धमूलांश्च दृढीकरोति ।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुर्वाहोर्बलं चाभ्यधिकं करोति ॥२३६॥

दन्तरोगे बकुलाद्यं तैलम् ।

बकुलस्य फलं लोघ्रं बला वली कुरण्टकः ।

चतुरङ्गुलबबूलवाजिकर्णारिमेदकम् ॥ २३७ ॥

एषां कल्ककषायाभ्यां तैलं पकं मुखे धृतम् ।

स्थैर्यं करोति दन्तानां चलतां नावनेन च ॥ २३८ ॥

दन्तरोगे नीलसहचराद्यं तैलम् ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य संक्षुद्य द्रोणे श्रपयेज्जलस्य ।

दत्त्वा चतुर्भागरसं तु तेन तैलं पचेदर्धपलप्रयुक्तैः ॥ २३९ ॥

कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्बवाघ्नयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।

तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां चलतां विदध्यात् २४०

मुखरोगे इरिमेदाद्यं तैलम् ।

इरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा ।

तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्क्वाथ्य चतुर्थशेषेण ॥ २४१ ॥

क्वाथेन भिषङ्मतिमान् तैलस्यार्धाढकं शनैर्विपचेत् ।

कल्कैरसमांशैर्मञ्जिष्ठारोध्रमधुकानाम् ॥ २४२ ॥

इरिमेदखदिरकदफललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला-

कर्पूरगुरुपद्मकलवङ्गकङ्कोलजातीफलानाम् ॥ २४३ ॥

फल्युपत्तङ्गैरिकवराङ्गगजकुसुमघातकीनां च ।

सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थितेषु रोगेषु ॥ २४४ ॥

परिशीर्णदन्तविद्राघिशौषिरशीताददन्तहर्षेषु ।

कृमिदन्तदरणचलितप्रहृष्टमांसावदीर्णेषु च ॥ २४५ ॥

मुखदौर्गन्ध्ये च तथा प्रागुक्तेष्वामयेषु नृणाम् ।

धार्यं मुखेन मुखजेष्वरुःषु संरोपणार्थाय ॥ २४६ ॥

दन्तरोगे द्वितीयमिरिमेदाद्यं तैलम् ।

न वृद्धान्नातिवालाच्च त्वक्कुलामिरिमेदकात् ।

अपां द्रोणे समावाप्य पचेत्पादावशेषितम् ॥ २४७ ॥

ततस्तेन कषायेण क्षीरप्रस्थसमन्वितम् ।

लाक्षारससमायुक्तं तैलप्रस्थं पचेन्नरः ॥ २४८ ॥

लोभ्रकट्फलमञ्जिष्ठापत्रकेसरपत्रकैः ।

चन्दनोत्पलयष्ट्याहैः पालिकैर्धातकीसमैः ॥ २४९ ॥

एतद्गुजापहं नाम तैलं गण्डूषधारणात् ।

दारणं दन्तचालं च हनुमोक्षं कपालिकाम् ॥ २५० ॥

शीतादं पूतिवक्रत्वं शौषिरं विरसास्यताम् ।

हन्यादाशु गदानेतान् कुर्यादन्तान् स्थिरानपि ॥ २५१ ॥

दन्तरोगे खदिराद्यं तैलम् ।

शतं खदिरसारस्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।

पादशेषे रसे लोभ्रमञ्जिष्ठा रक्तचन्दनैः ॥ २५२ ॥

कट्फलोशीरलाक्षैलात्वक्पत्रामरदारुभिः ।

नखकुङ्कुममञ्जिष्ठापरिपेलववालुकैः ॥ २५३ ॥

वालुकायुखमुस्तैलास्पृक्कातगरपत्रकैः ।

कल्कीकृतैः पचेदेभिस्तैलप्रस्थं भिषग्वरः ॥ २५४ ॥

धार्यं स्यात्कृमिदन्तेषु दन्तेषु चलितेषु च ।

शौषिरे दन्तनाडीषु विद्रधौ मुखजेषु च ॥ २५५ ॥

हन्यादाशु तदभ्यङ्गात्कुष्ठं च कफपित्तजम् ।

वातजानि तु कुष्ठानि व्यङ्गुष्ठीहातिसुप्तिताः ॥ २५६ ॥

त्वग्दोषपिटकाकण्डूरजस्रं वातशोणितम् ।

व्रणं मासं च नस्येन वलिपलितनाशनम् ॥ २५७ ॥

ज्वरे बृहल्लक्षादितैलम् ।

लाक्षा निशा च मञ्जिष्ठा फलिनी मधुकं बला ।

गैरिकं चन्दनं नीलमुत्पलं ध्यामकं तथा ॥ २५८ ॥

एषां भागान् समान् कृत्वा पक्त्वा तोये चतुर्गुणे ।
 तुर्यभागावशेषं तु गर्भं चेमं समावपेत् ॥ २५९ ॥
 पद्मकं ह्यगन्धा च रेणुका च तथैव च ।
 वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखत्वचम् ॥ २६० ॥
 पुण्डरीकं शताह्वा च मांसी मधुकमेव च ।
 एषामक्षसमैः कल्कैः कषायेणाथ पेषितैः ॥ २६१ ॥
 दधिशुक्त्तारनालानामाढकाढकमावपेत् ।
 क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६२ ॥
 तदभ्यङ्गे प्रशंसन्ति तैलं दाहनिवारणम् ।
 वातपित्तोद्भवं क्षिप्रं ज्वरमेतन्नियच्छति ॥ २६३ ॥
 सप्रलापं सतृष्णं च तालुशोषमथ भ्रमम् ।
 बालानां ग्रहपीडां च रक्तसंदूषिताश्च ये ॥ २६४ ॥
 तैलं प्रशमयत्येतल्लाक्षादिकमिति स्मृतम् ।

ज्वरे लघुलाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसं समादाय तैलप्रस्थाच्चतुर्गुणम् ॥ २६५ ॥
 मस्तुनश्चाढकं दद्याद्द्रव्यैरेभिश्च कार्षिकैः ।
 मधुकेन हरिद्राभ्यां मुस्तेन सह मूर्वया ॥ २६६ ॥
 रास्रया कटुरोहिण्या चन्दनेनाश्वगन्धया ।
 शताह्वया च कुष्ठेन हरेण्वा देवदारुणा ॥ २६७ ॥
 मञ्जिष्ठापद्मकोशीरबलामांसीभिरेव च ।
 तत्सिद्धमथ पूतं च स्थापयेद्वाजने शुभे ॥ २६८ ॥
 जीर्णज्वरपरीतानां श्वासकासार्तिनां तथा ।
 गर्भिणीनां च नारीणां बालानां शुष्यतामपि ॥ २६९ ॥
 क्षीणानां शोषिणां चाथ तैलं लाक्षादिकं हितम् ।

विषमज्वरमोक्षार्थं सर्वज्वरग्रहापहम् ॥ २७० ॥

सन्निपातज्वरे जात्यादितैलम् ।

नवपत्राङ्कुरा जाती द्वे हरिद्रे शतावरी ।

जीवकर्षभकौ रास्त्रा सरलो देवदारु च ॥ २७१ ॥

मुस्तातालीशमञ्जिष्ठापाठावरुणाचित्रकाः ।

कुब्जं सर्पसुगन्धा च मधुकं द्वे च सारिवे ॥ २७२ ॥

अनन्ताऽऽमलकं मूर्वा मधुकं करवीरकः ।

देवपुष्पं शिरीषस्य मूलं स्योनाक एव च ॥ २७३ ॥

चव्यं लाक्षा पयस्या च कल्कीकृत्याक्षसंमितान् ।

पक्त्वा चाथ कषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २७४ ॥

एतदभ्यङ्गनाद्धन्यात्सन्निपातात्मकं ज्वरम् ।

तैलं जात्यादिकं नाम वातपित्तकफापहम् ॥ २७५ ॥

ज्वरे षट्चरणं तैलम् ।

लाक्षाविश्वानिशामूर्वामञ्जिष्ठास्वर्जिकामयैः ।

षड्दुणेन च तन्नेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत् ॥ २७६ ॥

शोषे शिरीषाद्यं तैलम् ।

मूलं त्वचं च पत्रं च प्रवालं स्कन्धमेव च ।

शिरीषाद्वे तुले दद्याद्भस्त्वेष प्रकीर्तितः ॥ २७७ ॥

वरुणः पारिभद्रश्च ककुभश्चतुरङ्गुलः ।

विल्वोऽग्निमन्थकटुङ्गकरघाटकवज्जुलाः ॥ २७८ ॥

गन्धर्वहस्तकाकोल्यौ काश्मरी पाटली तथा ।

निदिग्धिकाऽथ वार्ताकी शालिपर्णी मयूरकः ॥ २७९ ॥

तुरगी श्रेयसी चैव शतावर्युदकं तथा ।

सुपव्यतिबला चैव दन्ती सिंहमुखी तथा ॥ २८० ॥

पञ्चाशत्पलिकान् भागान्मूलं पुष्पं च रोहिषात् ।

निष्काथस्त्रिफलायाश्च प्रस्थत्रयमितो भवेत् ॥ २८१ ॥

कोलकानां कुलत्थानां यवानां तत्समस्तथा ।

द्राक्षायाः शतपुष्पायाः कुर्याच्चाढकमेव च ॥ २८२ ॥

छागलस्य तु मांसस्य द्वे तुले तत्र दापयेत् ।
 एतत्सर्वं समालोढ्य तोयद्रोणेषु पञ्चसु ॥ २८३ ॥
 द्विद्रोणशेषपूतं च तैलद्रोणेन संसृजेत् ।
 पाठा मगधजा रास्त्रा सुषवी गोक्षुरं बला ॥ २८४ ॥
 मियङ्गुद्रे हरिद्रे च मांसी चैला कुटन्नटम् ।
 देवदारु वचा लोध्रं कुष्ठं व्याघ्रनखं शटी ॥ २८५ ॥
 मञ्जिष्ठा मधुकं मुस्तं रोध्रं द्वे चापि सारिवे ।
 चन्दनं श्रीमियं चैव रक्तकं तैलपणिकम् ॥ २८६ ॥
 समृणालत्वचं पत्रं पतङ्गं नीलमुत्पलम् ।
 एषां द्विपालिकान् भागान् कृत्वा कल्कं समावपेत् ॥ २८७ ॥
 त्रीन्द्रोणान् दधितो दद्यात्ततः सिद्धं निधापयेत् ।
 शैरीषमिति विख्यातमेतत्तैलं क्षयापहम् ॥ २८८ ॥
 मशस्तं तु सुधातुल्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ।
 अपस्मारं तथोन्मादं शोषान् सोपद्रवानपि ॥ २८९ ॥
 अङ्गुर्दमथो दाहं पाण्डुत्वं स्वरवैकृतम् ।
 अर्दितं गृध्रसीं शुल्मान् कर्प्यं पक्षवधं तथा ॥ २९० ॥
 हनुग्रहं खुडावातमाढ्यवातापतानकौ ।
 मूकत्वं गद्गदत्वं च वाधिर्यं कर्णवेदनाम् ॥ २९१ ॥
 उरौ जानुनि कुक्षौ च विसर्पं वातशोणितम् ।
 हन्याद्दर्णबलोपेतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥ २९२ ॥
 प्रयोगादस्य तैलस्य न चाक्रामन्ति तं गदाः ।
 विषपीताश्च दुष्टाश्च भूतोपहतचेतसः ॥ २९३ ॥
 ये पिवन्ति शिरीषार्धं नीरुजस्ते भवन्ति हि ।
 मूलकर्मविकाराणां भूतानां दंष्ट्रिणामपि ॥ २९४ ॥
 अधृष्यं तद्गृहं यत्र तैलमेतद्विधीयते ।

१ 'सृक्का' इति पा० । २ मूलकर्म अभिचारः तत्कृता विकारा मूलकर्म-
 विकाराः, तेषाम् ।

शोषे सुकुमारतैलम् ।

मधुकस्य शतं दद्यात्काश्मर्याश्च तथाऽऽढकम् ॥२९५॥
 द्राक्षापरूषकाणां च बलाखर्जूरयोस्तथा ।
 तथा मधूकपुष्पाणां तथा मौञ्जातमाढकम् ॥ २९६ ॥
 द्विद्रोणेऽप्यां विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।
 पूते तस्मिन् कषाये च पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ २९७ ॥
 आर्द्रामलककाश्मर्यविदारीधुरसाढकम् ।
 तैलाढकं च संयोज्य पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ २९८ ॥
 पच्यमाने तथा तस्मिन् कल्कांश्रैषां समावपेत् ।
 पिप्पली शृङ्गवेरं च कदली च शतावरी ॥ २९९ ॥
 बला तालं कदम्बश्च सूक्ष्मैला पद्मबीजकम् ।
 शृङ्गाटकं कसेरुश्च जीवनीयानि यानि च ॥ ३०० ॥
 द्वे द्वे पले पृथग्दत्त्वा विपचेन्मृदुनाऽग्निना ।
 तत्सिद्धं स्नावयित्वाऽऽशु शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥३०१॥
 नस्ये चाभ्यङ्गने पाने प्रशस्तं बस्तिकर्मणि ।
 वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ३०२ ॥
 पार्श्वशूले प्रमेहे च गुल्मे चार्शोभगन्दरे ।
 वातभग्नाङ्गहीनानां कासे श्वासे च हृद्ग्रहे ॥ ३०३ ॥
 ज्वरेऽरुचावतीसारे कर्णनादे स्वरक्षये ।
 सुकुमारमिदं तैलं बालवृद्धसुखावहम् ॥ ३०४ ॥
 एतद्धि वृष्यबल्यं च रक्तमांसविवर्धनम् ।
 स्वरवर्णकरं चैव शोषिणाममृतोपमम् ॥ ३०५ ॥
 प्रपक्कस्यास्य तैलस्य सम्यक्सिद्धस्य यो भवेत् ।
 उदंश्चिदि विमध्यार्थं(?)सोऽपि कृत्यकरो भवेत् ॥३०६॥
 एकादश च षट् चैव शोषिणां य उपद्रवाः ।
 शमयेत् सुकुमारं तान् भेदोऽग्निमिव वृष्टिमान् ॥ ३०७ ॥

अर्शसि लघुकासीसाद्यं तैलम् ।

काशीसलाङ्गलीदन्तीकरवीरामलैः पचेत् ।

तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात्पायुकीलजित् ॥ ३०८ ॥

अर्शसि पृथुकासीसाद्यं तैलम् ।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठं च लाङ्गली ।

शिला द्रेक्काश्वमारश्च जन्तुहृदन्तिचित्रकौ ॥ ३०९ ॥

हरितालं तथा स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेत्समैः ।

तैलं सुधार्कदुग्धेन गवां मूत्रे चतुर्गुणे ॥ ३१० ॥

एतदभ्यङ्गतोऽर्शसि क्षारवत्पातयेद्भुवम् ।

क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च दूषयते बलिम् ॥ ३११ ॥

अर्शसि चित्रकाद्यं तैलम् ।

चित्रकं मदनं पीलुं शृङ्गवेरं शुकाननाम् ।

स्रोतोजं सैन्धवं दन्तीं हरितालं मनःशिलाम् ॥ ३१२ ॥

तालीसं करवीरस्य मूलं लाङ्गलिकां वचाम् ।

भद्रकं क्षीरिकां चैव स्वर्णक्षीरीं च पेपयेत् ॥ ३१३ ॥

कुडवौ पच्यमाने तु स्नुगर्कपयसोः क्षिपेत् ।

मूत्रे चतुर्गुणे तैलं पक्वमशौहरं भवेत् ।

क्षारकर्मकरं ह्येतदभ्यङ्गात्तैलमुत्तमम् ॥ ३१४ ॥

कुष्ठे शिवापासारतैलम् ।

देवद्रुदावींमपुनाटवाकुची-

तुम्बीफलोन्मत्तहयारिदारुभिः ।

तुङ्गाफलत्वग्घरिमन्धवद्विजैः

प्रस्थोन्मितैः सामलसारषड्गुणैः ॥ ३१५ ॥

तैलाहकार्धेन परिप्लुतैस्तैस्तैलं विदध्याद्बलिबन्धयन्त्रे ।

तत्तैलमभ्यङ्गविधौ प्रदिष्टं पथ्याशिनां कुष्ठविघातकृत्स्यात् ३१६

कुष्ठे वज्रकं तैलम् ।

मूलं शताह्वाचक् शिरीषाश्वमारा-

दर्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोतनिम्बात् ।

बीजं कारञ्जं सार्षपं प्रापुनाटं

श्रेष्ठा जन्तुघ्नं त्र्यूषणं द्वे हरिद्रे ॥ ३१७ ॥

तैलं तैलं साधितं तैः समूत्रैस्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीत्रणानाम् ।

अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्भवानां नाशायलं वज्रकं वज्रतुल्यम् ३१८

कुष्ठे महावज्रकं तैलम् ।

एरण्डताक्षर्यघननीपकदम्बभार्गी-

कम्पिल्लवेष्टफलिनीसुरवारुणीभिः ।

निर्गुण्ड्यरुष्करसुराहसुवर्णदुग्धा-

श्रीवेष्टगुग्गुलिशिलापट्टतालविश्वैः ॥ ३१९ ॥

तुल्यं स्तुगर्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम् ।

अतिशयति वज्रकगुणाच्छिञ्चुत्राशौग्रन्थिमालाघ्नम् ॥ ३२०

कुष्ठे श्वेतकरवीराद्यं तैलम् ।

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वक्पुष्पाचित्रकविडङ्गानि ।

कुष्ठार्कमूलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणीकडुकाः ॥ ३२१ ॥

एतैस्तैलं सिद्धं कल्कैः पादांशकैर्गवां सूत्रम् ।

दन्वा तैलचतुर्गुणमभ्यङ्गात्कुष्ठकण्डूघ्नम् ॥ ३२२ ॥

कुष्ठे सिन्दूरद्यं सूर्यपाकं तैलम् ।

सिन्दूरवाङ्मूर्च्छाकहरितालधनःशिलायवक्षरैः ।

कासीसकच्छसंभवगन्धाह्वयसंयुतैस्तैलम् ॥ ३२३ ॥

दिनकरतप्तं पाषाणविचर्चिकादद्रुकुष्ठकिटभादीन् ।

नाशयति लेपमात्राद्भूयो भूयः कपालकुष्ठमपि ॥ ३२४ ॥

कुष्ठे कुष्ठकालानलं तैलम् ।

क्षारत्रयं कटुत्रीणि पञ्चैव लवणानि च ।

वचा कुष्ठं हरिद्रे द्वे विडङ्गं चित्रको विषम् ॥ ३२५ ॥

हरितालं शिला गन्धः सिन्दूरं तुत्थखर्परम् ।

रामटं च रसोनश्च मदनं च रसाङ्गनम् ॥ ३२६

एतत्सर्वं समांशं च स्नुहार्कपयसा प्लुतम् ।
 षड्गुणं सार्षपं तैलं तैलान्मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ३२७ ॥
 सर्वं मन्दानले पकं ग्राह्यं तैलावशेषकम् ।
 हन्त्यष्टादश कुष्ठानि मांसमेदोगतानि च ॥ ३२८ ॥
 दुष्टत्रणानि शातानि जीर्णनाडीत्रणानि च ।
 हन्ति श्वित्रमसाध्यं च दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ ३२९ ॥
 एतत्तैलं सदाऽभ्यङ्गात्कुष्ठव्याधिहरं नृणाम् ।

कुष्ठे कनकक्षीर्यायं तैलम् ।

कनकक्षीरी शैलं भार्गी दन्तीफलानि मूलं च ॥ ३३० ॥
 जातीप्रवालसर्षपलशुनविडङ्गं करञ्जत्वक् ।
 समच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बचित्रकास्फोताः ॥ ३३१ ॥
 गुञ्जैरण्डो बृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ।
 कुष्ठं तुम्बुरु पाठा मूर्वा मुस्तं निशा च पद्मन्था ॥ ३३२ ॥
 एडगजवीजशिग्रुत्र्यूषणभल्लातकक्षवकाः ।
 हरितालमवाकपुष्पी तुत्थं कम्पिल्लकोऽमृतासङ्गः ॥ ३३३ ॥
 सौराष्ट्री कासीसं दावीं त्वक् स्वर्जिका लवणम् ।
 कलकैरैतैस्तैलं करवीरकमूलपल्लवकषाये ॥ ३३४ ॥
 सार्षपमथवा तैलं गोमूत्रचतुर्गुणं साध्यम् ।
 कडुकालाब्वां स्थाप्यं तत्सिद्धं तेन मण्डलान्याशु ॥ ३३५ ॥
 छिन्द्याद्भिषगभ्यङ्गात्कण्डूकोठांश्च विनिहन्यात् ।

पामायां आर्द्रकार्यं तैलम् ।

आर्द्रकस्यार्कदुग्धस्य स्त्रुक्क्षीरस्य पृथक् पृथक् ॥ ३३६ ॥
 द्वे द्वे पले तु सिन्दूरं द्विपलं च समाहरेत् ।
 भूर्जकर्षविमिश्राणि कटुतैलस्य पाचयेत् ॥ ३३७ ॥
 पलानि दश चाभ्यङ्गात्कच्छूरोगविनाशनम् ।

दद्रुरोगे दाव्याद्यं सूर्यपाकतैलम् ।

दावीं गण्डीरसंयुक्तैः कासमर्दकसंभवैः ॥ ३३८ ॥

मूलैर्महोदिकायास्तु स्वरसेन समन्वितैः ।

स्तुहीक्षीरनिशामूर्वागृहधूमफणिज्जकैः ॥ ३३९ ॥

विडङ्गपिप्पलीरालागौरसर्षपनागरैः ।

चक्रमर्दकनाडीकावाकुचीनक्तमालकैः ॥ ३४० ॥

मूलकस्य च बीजैस्तु सुरसारग्वधच्छदैः ।

सक्षारलवणोपेतैर्गोमूत्रपरिपेषितैः ॥ ३४१ ॥

कटुतैलयुतैः पक्कैः सम्यग्रविगभस्तिभिः ।

कृतमाशु नराणां तु हन्यादस्य प्रलेपनम् ॥ ३४२ ॥

दद्रूं विचर्चिकां कण्डूं पामां दुर्भक्तकं (?) तथा ।

कुष्ठे गुग्गुल्वाद्यं सूर्यपाकतैलम् ।

गुग्गुलुमरिचविडङ्गैः सर्षपकासीसमुस्तसर्जरसैः ॥ ३४३ ॥

श्रीवेष्टतालगन्धैर्मनःशिलाकुष्ठकम्पिलैः ।

उभयहरिद्रासहितैः कटुतैलं विमिश्रितैरेभिः ॥ ३४४ ॥

आदित्यरश्मिपक्वं कुष्ठं विनिहन्ति संस्पर्शात् ।

कुष्ठे विद्रावणं तैलम् ।

मनःशिलालसिन्दूरं सौराष्ट्रीं गन्धकस्तथा ॥ ३४५ ॥

सिक्थकं सर्जनियासं कासीसं पुरकुन्दरू ।

श्याहः शलकिकम्पिलं कङ्कुष्ठं चाप्यरुष्करम् ॥ ३४६ ॥

गवां मूत्रेण संसिद्धं कटुतैलं प्रयोजयेत् ।

पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूकुष्ठकिमीन् व्रणान् ॥ ३४७ ॥

अभ्यङ्गाच्छमयत्येतन्नाम्ना विद्रावणं मतम् ।

कुष्ठे महासुगन्धं तैलम् ।

चन्दनं कुङ्कुमोशीरं भियङ्गुत्रुटिरोचनाः ॥ ३४८ ॥

तुरुष्कागुरुकस्तूर्यः कर्पूरं जातिपत्रिका ।

जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ॥ ३४९ ॥

नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुस्तगरः प्लवम् ।

नखं व्याघ्रनखं स्पृक्त्वा बोलो दमनको मुरा ॥ ३५० ॥

चोरकं चैव शैलेयं स्थौणेयं सैलवालुकम् ।

सरलः सप्तपर्णश्च च लाक्षा तामलकी तथा ॥ ३५१ ॥

कुसुमानि च धातक्या लामज्जकं च पद्मकम् ।

प्रपौण्डरीककर्चूरौ समांशैः शाणमात्रकैः ॥ ३५२ ॥

महामुगन्धमित्येतत्स्थं तैलस्य साधयेत् ।

प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ३५३ ॥

अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः साप्ततिकोऽपि वा ।

युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणां चात्यन्तवल्लभः ॥ ३५४ ॥

सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ।

वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ ३५५ ॥

अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ।

कुष्ठे मरीचाद्यं तैलम् ।

मरीचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला ॥ ३५६ ॥

देवदारु हरिद्रं द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।

विशाला करवीरश्च भानुक्षीरं शकृद्रसः ॥ ३५७ ॥

एतेषां कार्षिकान् भागान् विषस्यार्धपलं भवेत् ।

प्रस्थं च कटुतैलस्य गोमूत्रे द्विगुणे पचेत् ॥ ३५८ ॥

मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्रग्निना भिषक् ।

तैलेनानेन नश्यन्ति रोगा देहे शरीरिणाम् ॥ ३५९ ॥

पामा विचर्चिका चैव दद्रूविस्फोटकानि च ।

अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति कोमलत्वं प्रजायते ॥ ३६० ॥

प्रच्छानितानि तैलेन श्वित्राण्येतेन मर्दयेत् ।

चिरोत्थमपि यच्छुत्रं सवर्णं भ्रक्षणाद्भवेत् ॥ ३६१ ॥

कुष्ठे भ्रामरिकं तैलम् ।

गुञ्जामूलं फलं कुष्ठं विषं सिन्दूरसिक्थकम् ।

द्वे हरिद्रे सलाङ्गल्यौ गुग्गुल्ये तथैव च ॥ ३६२ ॥

कृकलाससमायुक्तं कटुतैलं विपाचयेत् ।
 क्षिपेत्स्वरूपवस्तूनि सुदग्धान्यवतारयेत् ॥ ३६३ ॥
 उद्धृत्य तैलमध्यात्तु सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 चूर्णं तैले पुनः कृत्वा त्रिशूलीं दापयेत्ततः ॥ ३६४ ॥
 जीवन्तीं जीवनीमूलं तथा च व्रणरोहिणीम् ।
 एतच्चूर्णं समालोड्य त्वेकरात्रं तु धारयेत् ॥ ३६५ ॥
 शिरोरोगं व्रणं कुष्ठं पामां चैव त्रिचर्चिकाम् ।
 ये व्रणा न प्ररोहन्ति गम्भीरा भैरवाश्च ये ॥ ३६६ ॥
 तांस्तु नाशयते सर्वान् सप्ताहेन न संशयः ।
 भिषजां नात्र सन्देहस्तैलं भ्रामरिकं खलु ॥ ३६७ ॥

व्रणे महाकषायं तैलम् ।

उदुम्बरो वटश्चैव पुष्पः पिप्पल एव च ।
 मधूक आम्रसर्जो च जम्बूद्वयमथार्जुनः ॥ ३६८ ॥
 कम्पिलकः प्रियालश्च कदम्बस्तिन्दुकस्तथा ।
 पलाशो रोध्रसंभिध्रं बदरं पञ्चकेसरम् ॥ ३६९ ॥
 शिरीषो वीजकश्चैव तथा रक्तं च चन्दनम् ।
 अमीषां काथकल्काभ्यां तैलं मन्दाग्निसाधितम् ॥ ३७० ॥
 नाम्ना महाकषायं तु क्षिप्यमभ्यङ्गनाद्धरेत् ।
 व्रणांस्तु देहिनामेतच्चिरकालभवानपि ॥ ३७१ ॥

वल्मीके मनःशिलाद्यं तैलम् ।

मनःशिलालभल्लातभूक्ष्मैलाशुरुचन्दनैः ।
 जातीपल्लवपत्रैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ३७२ ॥
 वल्मीकं नाशयत्येतद्बहुच्छिद्रं बहुस्रवम् ।

गण्डमालायां फणिज्जकार्द्यं तैलम् ।

फणिज्जकश्च नादेयं क्षवको नवमालिका ॥ ३७३ ॥
 अश्मन्तको विडङ्गानि मयूरकफलानि च ।
 कट्फलं सहदेवा च देवदारु वितुन्नकम् ॥ ३७४ ॥

बीजं कारञ्जपालाशं मूलकस्यार्जकस्य च ।
 महापर्पटको मुस्तं त्रिकटु त्रिफला वचा ॥ ३७५ ॥
 सुवर्चला च हिङ्गुश्च समभागानि कारयेत् ।
 अक्षमात्रैः पचेदेभिस्तैलप्रस्थं सुस्वाग्निना ॥ ३७६ ॥
 अजामूत्रेण संयुक्तमजाक्षीरे चतुर्गुणे ।
 नस्यं तदस्य दद्याच्च गण्डमालाविनाशनम् ॥ ३७७ ॥
 विदारिकां गलगन्धिं गलगण्डं च नाशयेत् ।

गण्डमालायां काकादनीतैलम् ।

काकादनीविशल्याह्वानदीजतुण्डिकाफलैः ॥ ३७८ ॥
 जीमूतबीजककौटैर्विशालाकृतवेधनैः ।
 पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ॥ ३७९ ॥
 प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ।
 अनेन गण्डमाला हि चिरजा पूयवाहिनी ॥ ३८० ॥
 सिद्धद्यत्यसाध्यकल्पाऽपि पानाभ्यञ्जननावनैः ।

रक्तपित्ते मूर्वाद्यं तैलम् ।

द्राक्षामधूकमूर्वेक्षुरसचन्दनपत्रकैः ॥ ३८१ ॥
 सारिवाद्रयनक्ताहैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
 क्षीरे चतुर्गुणे पक्वं कल्कैरक्षसमैर्भिषक् ॥ ३८२ ॥
 रक्तपित्तहरं त्वेतद्रर्ष्यं वातघ्नमुत्तमम् ।
 मूर्वातैलमिदं नाम्ना सर्वर्णकरणं परम् ॥ ३८३ ॥

कुष्ठे विषादनं तैलम् ।

कम्पिलकनिशायुग्मैः शालनिर्यासचित्रकैः ।
 पुरकीटारिसंयुक्तैः पालिकैः सुविचूर्णितैः ॥ ३८४ ॥
 एकीकृत्य समैरेभिर्विषस्य च पलद्वयम् ।
 आतपे स्थापयेद्दीमान् कटुतैलपरिप्लुतम् ॥ ३८५ ॥
 विषादनमिदं तैलं लेपात्सिध्मविचर्चिके ।
 हन्ति पामापचीव्यङ्गदुष्टघ्नणभगन्दरान् ॥ ३८६ ॥

१ 'महासहं पर्पटकं मुस्तं त्रिकटुकं वचाम्' इति पा० । २ 'विषागद-
 मिदं' इति पा० ।

कुष्ठं जीवन्त्याद्यं तैलम् ।

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वी कम्पिल्लकः पयस्तुथम् ।
एष घृततैलपाकः सिद्धः सर्जरससंयुक्तः ॥ ३८७ ॥
देयः समधुच्छिष्टो विपादिकाशामकोऽभ्यङ्गात् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मं शाम्यत्यलसकं च ॥ ३८८ ॥

भ्रमायां जीरकार्द्यं तैलम् ।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्धपलं तथा ।
कटुतैलं पचेदेभिः सद्यः पामाहरं परम् ॥ ३८९ ॥

कृमिरोगे विडङ्गार्द्यं तैलम् ।

विडङ्गानि स्नुहीक्षीरमर्कक्षीरं तथैव च ।
शुद्धाफलानि गण्डीरं श्यामा निर्दहनी तथा ॥ ३९० ॥
एतैर्गोमूत्रसंपिष्टैस्तैलं मूर्ध्नि निधापयेत् ।
कृमयः पूरणादेव नश्यन्त्यपि विमार्गगाः ॥ ३९१ ॥

वातरोगे गुडूचीतैलम् ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् ।
क्षीरद्रोणयुतं कल्कैः पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ ३९२ ॥
पिष्टैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैर्युतं तथा ।
कुष्ठैलागुरुमृद्धीकामांसीव्याघ्रीनखैर्नवैः ॥ ३९३ ॥
सारिवाश्रावणीव्योषमिशिशृङ्गीहरेणुभिः ।
त्वक्पत्रागुरुविक्रान्तास्थिरातामलकीघनैः ॥ ३९४ ॥
नतकेसरकोशीरपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
सिद्धं तच्छनकैस्तैलं पानाभ्यङ्गनवस्तिषु ॥ ३९५ ॥
धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ।
तोदकम्परुजायामशिरःकम्पामयार्दितान् ॥ ३९६ ॥
हन्याद्द्वणकृतान्दोषान् गुडूचीतैलमुत्तमम् ।

वातरोगे द्वितीयं गुडूचीतैलम् ।

अमृतायास्तुलाः पञ्च द्रोणेष्वष्टास्वपां पचेत् ॥ ३९७ ॥

पादशेषं तु सक्षीरं तैलस्यार्धाढकं पचेत् ।
 एलामांसीनतोशीरसारिवाकुष्ठचन्दनैः ॥ ३९८ ॥
 शतपुष्पाबलामेदामहामेदर्धिजीवकैः ।
 काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्यतिबलानखैः ॥ ३९९ ॥
 महाश्रावणिकाजीवाविदारीकपिकच्छुभिः ।
 शतावर्याऽथ भूधात्रीकर्कटाख्याहरेणुभिः ॥ ४०० ॥
 वचागोक्षुरकैरण्डरास्त्राकालासहाचरैः ।
 द्विजीरकसहादारुवृषभैश्चापि कार्षिकैः ॥ ४०१ ॥
 मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेण मधुकाष्ठपलेन तु ।
 कल्कैस्तत्क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ ४०२ ॥
 युक्तानुन्मादकम्पापस्मारैश्च प्रकृतिं नयेत् ।
 वातव्याधिहरं श्रेष्ठं तैलाय्यममृताह्वयम् ॥ ४०३ ॥

वातरोगे सहचरं तैलम् ।

समूलशाखस्य सहाचरस्य तुलां समेतां दशमूलतश्च ।
 पलानि पञ्चाशदभीरुतश्च पादावशेषं विपचेद्द्रहेऽपाम् ॥ ४०४ ॥
 तत्र सेव्यनखकुष्ठहिमैलास्पृक्त्रिप्रयङ्गुनलिकाम्बुशिलाजैः ।
 लोहितानलदलोहसुराहैः कोपनामिशितुरुष्कनतैश्च ॥ ४०५ ॥

तुल्यक्षीरे पालिकैस्तैलपात्रं

सिद्धं कृच्छ्राञ्छीलितं हन्ति वातान् ।

कम्पाक्षेपस्तम्भशोषादियुक्तान्

गुल्मोन्म्यादान् पीनसं योनिरोगान् ॥ ४०६ ॥

वातरोगे नीलसहचरतैलम् ।

सहचरहस्ती नीलोत्पलशतगात्रस्तृषातुरः पतितः ।

सलिलद्रोणतडागे सुतप्तघर्माशुतप्त इव ॥ ४०७ ॥

तैलप्रस्थमतोऽस्मै दद्यात्तैलाच्चतुर्गुणं च पयः ।

मदगन्धसुरभिसैन्धवकल्कैश्चाक्षोन्मितैर्लिप्तः ॥ ४०८ ॥

प्लामृणालकुष्ठमियङ्गुकाश्मीरपुरलोहैः ।
 श्रीवेष्टकसर्जरसैश्वन्दनशैलेयरजनीभिः ॥ ४०९ ॥
 दारुशताह्वापथ्याकेसररसेपलवघनैश्च ।
 तीर्णो मालतीसुमैः सहचरनीलाशवनपतितः ॥ ४१० ॥
 मेदोस्थिमज्जमांसासृग्धिरशुक्रसंश्रयांश्चिरोत्पन्नान् ।
 हन्याद्वातविकारानशीतिमेतन्महानीलम् ॥ ४११ ॥

वातरोगे दशमूलार्ध तैलम् ।

दशाब्धिकेशरारिष्टब्राह्मीपाठाकटुत्रिकैः ।
 शटीपुनर्नवाभागींसुरसाम्बुफलत्रिकैः ॥ ४१२ ॥
 शङ्खपुष्पीत्वगेलार्कमुनिपादपपल्लवैः ।
 अङ्कोटवरुणास्फोतशिरीषकटभीफलैः ॥ ४१३ ॥
 कृमिघ्नमूलशम्पाकसर्षपामरदारुभिः ।
 मियङ्गुहिङ्गुमञ्जिष्ठासुसुखातन्दुलीयकैः ॥ ४१४ ॥
 गिरिकर्णीवचाकुष्ठकङ्कुष्ठरजनीद्रव्यैः ।
 मधूकसारसिन्धूत्थसितनीलोत्पलाम्बुदैः ॥ ४१५ ॥
 कटुतैलं समैरेभिः पक्वं क्षीरे चतुर्गुणे ।
 सोन्मादं हन्त्यपस्मारं पानाभ्यञ्जननावनैः ॥ ४१६ ॥
 डाकिनीभूतवेतालनैगमेषादिकान् ग्रहान् ।
 कृत्याभिचाररक्षांसि नाशयत्यखिलान्यपि ॥ ४१७ ॥
 तैलमेतत्सुरेन्द्रेण नन्दस्य कथितं पुरा ।
 बालस्य किल रक्षार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४१८ ॥

१ अनेकनीलपुष्पयुक्तं सहचरं शतपलमितं समूलपत्रशाखमुत्पाद्य खण्डशः
 प्रकल्पयित्वा संक्षुद्य द्रव्यैर्गुण्यग्रहणविधानात् द्विद्रोणमिते जले प्रक्षिप्य तीव्रा-
 तपे शोषयेत् । पादशेषे कषाये गालयित्वा, तैलप्रस्थद्वयं, अष्टप्रस्थमितं दुग्धं,
 मदगन्धा(सप्तपर्णा)दीनां मालतीपुष्पान्तानां प्रत्येकं कर्षमितानां कर्कं च
 दत्त्वा मन्दाग्निना तैलं साधयेदिति भावः ।

अभ्यज्य सर्वगात्राणि भोक्तव्यं रिपुवैशमनि ।
 तैलमभ्यङ्गनं श्रेष्ठं वसतोऽरातिसङ्कटे ॥ ४१९ ॥
 अथ विलिप्तभगा भगशालिनी यदि रमेत नरं दिवसे शुभे ।
 मदनसायकजर्जरितोरसो भवति तस्य तथाऽपहृतं मनः ॥ ४२० ॥
 ताम्बूलमुखवासेषु व्यङ्गनाहारयोगतः ।
 अनामिकाग्रसंयुक्तं बशीकरणमुत्तमम् ॥ ४२१ ॥

भग्ने गन्धतैलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।
 दिवा दिवा विशोष्यापि गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ४२२ ॥
 तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना ।
 ततः क्षीरं पुनः पीतान् सुशुष्कांश्चूर्णयेद्दुधः ॥ ४२३ ॥
 काकोल्यादिं सयष्ट्याहं मज्जिष्ठान् सारिवां तथा ।
 कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ ४२४ ॥
 शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।
 पीडनार्थं प्रकर्तव्यं सर्वगन्धशृतं पयः ॥ ४२५ ॥
 चतुर्गुणेन तोयेन तत्तैलं विपचेद्विषक् ।
 एलामंशुमतीं पत्रं जीरकं तगरं तथा ॥ ४२६ ॥
 रोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् ।
 क्षीरशुक्लां च सैरेयमनन्तां समधूलिकाम् ॥ ४२७ ॥
 पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव पूर्वोक्तान्यौषधानि च ।
 एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥ ४२८ ॥
 एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
 पक्षघाते तालुशोषे ह्याक्षेपे च तथाऽर्दिते ॥ ४२९ ॥
 मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
 बाधिष्ये तिभिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ ४३० ॥
 पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।
 ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरमुनैवोपजायते ॥ ४३१ ॥

मुखं च पद्मसंकाशं समुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
कार्यं राजार्हमेतत्तु राज्ञामेव विचक्षणैः ॥ ४३२ ॥

बृहत्सहचरतैलम् ।

काथे साहचरे वरीपरियुते क्षुद्रामृतैरण्डजे
श्यानाकारणिविल्वगोधुरयुते सिंहाग्निमन्थोद्भवे ।
रास्त्रोशीरविशालदारुतगैरस्त्वक्पत्रमेदानखैः
स्पृक्काशैलघनैलवालुसरलैः कङ्कोलकुष्ठोत्पलैः ॥ ४३३ ॥
कौन्तिकेशीबलाद्रिसारिवनिशाश्यामाशताह्वानतै-
र्मञ्जिष्ठापुरसिङ्गचन्दनवरैश्चण्डाहस्थौण्यकैः ।
श्रीवेष्टागरुभ्रुकुङ्कुमवरैः कल्कैः समांशैः खलु-
तैलं क्षीरसमं विपाच्य विधिना वस्तौ च नस्ये ध्रुवम् ॥ ४३४ ॥
पानाभ्यङ्गविधौ नियोजितमिदं वातादिसर्वाभयान्
गुल्माष्ठीलशिरोर्तिशूलमुदरं श्वासामकासज्वरम् ।
शोफं प्लीहगुदामयं च जठरं घातुक्षयाध्मानकं
अर्शः कुष्ठभगन्दरं च शमयेत्सर्वान् व्रणान् हन्ति च ४३५
जयति पवनरोगान् कामलां विद्विबन्धं
दिननिशितिमिरान्ध्यं गृध्रसीं मूर्ध्नि वातम् ।
सहचरामिति नाम्ना तैलमेतत्प्रसिद्धं
धनपतिनृपयोग्यं भाषितं शम्भुनैव ॥ ४३६ ॥

तरश्वाद्यं तैलम् ।

तरक्षोश्च शृगालस्य पादावचाणि संत्यजेत् ।
कोष्ठसारादिकं सर्वमुत्काच्य बहुलेऽम्भसि ॥ ४३७ ॥
पादशेषं परिगृह्य छागगव्यपयान्वितम् ।
तैलं रससमं दत्त्वा मादिरामस्तुकाञ्जिकम् ॥ ४३८ ॥
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।
करञ्जस्त्रिवृता मुस्ता पत्राङ्गं रेणुकं त्वचम् ॥ ४३९ ॥

क्षारद्रव्यं तथा व्योषं पञ्चैव लवणानि च ।
 वचा तुरगगन्धा च मञ्जिष्ठा सर्जगुग्गुलू ॥ ४४० ॥
 मेदा रास्त्रा च वर्षाभूरेला शैलेयकं बला ।
 एतैर्धपलैर्द्रव्यैः शनैर्मुद्गरिना पचेत् ॥ ४४१ ॥
 तैलं तेनैव नश्यन्ति रोगा देहे शरीरिणाम् ।
 अशीतिं वातजान् रोगान् शोफं शूलं कटिग्रहम् ॥ ४४२ ॥
 मांसमेदःश्रितं वायुं हर्षं चैव भगन्दरम् ।
 लूतां सद्योत्रणं चैव नाडीदुष्टत्रणानि च ॥ ४४३ ॥
 भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ।
 हन्ति वातप्रसाध्यं च पामादद्दुविचर्चिकाः ॥ ४४४ ॥
 एतसैलं सदाभ्यङ्गात्सर्वरोगहरं नृणाम् ।

व्याघ्रतैलम् ।

व्याघ्रशिरः सभादाय काथयित्वा जले बहु ॥ ४४५ ॥
 उलूखले तु संकुट्य रसं नीत्वा मुगालितम् ।
 कटाहे सुदृढे दत्त्वा पचेत्साधु विधानतः ॥ ४४६ ॥
 द्रव्याण्येतानि वै वैद्यः पादमानेन दापयेत् ।
 देवदारु वचा कुष्ठं तगरं चन्दनं घनः ॥ ४४७ ॥
 मञ्जिष्ठा पुष्करं रास्त्रा चातुर्जातकसैन्धवम् ।
 पिप्पली मरिचं शुण्ठी मांसी सहचरो जलम् ॥ ४४८ ॥
 अश्वगन्धात्मगुप्ते च क्रमुकश्च शतावरी ।
 श्वदंष्ट्रा केतकी मूर्वा मधुकं चागुरुस्तथा ॥ ४४९ ॥
 जाल्याः फलं तथा पत्री तथा कटुकरोहिणी ।
 ग्रन्थिकं शुक्लकन्दा च शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ४५० ॥
 जीवनीयो गणश्चैव रालकेसरबोलकम् ।
 नखं च कृष्णसारश्च वत्सनाभस्तथैव च ॥ ४५१ ॥
 अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
 अशीतिं वातजान् रोगान् हन्यादाशु प्रयोजितम् ॥ ४५२ ॥

अश्वानां वातभग्नानां शिशुनां करिणामपि ।
 अंशशोषे खुडे वाते क्रोशुशीर्षे कटिग्रहे ॥ ४५३ ॥
 मन्यास्तम्भे हनुश्रोत्रवाते मन्दे तथाऽनले ।
 पुत्रोत्पादि तु व्यन्ध्यानां षण्ढानां कामवर्धनम् ॥ ४५४ ॥
 अश्विभ्यां निर्मितं चैव प्रजानां हितकारकम् ।
 अनेनैव विधानेन तैलं तारक्षवं पचेत् ॥ ४५५ ॥

वातारिः तैलम् ।

शतावरीस्तुलामेकां तुलां गोधुरकस्य च ।
 तुलार्थं तिलतैलस्य चैरण्डस्य पलानि षट् ॥ ४५६ ॥
 एरण्डच्छदनद्रावपलानि नव कारयेत् ।
 बुकशिग्रुकर्कारीसिन्दुवारसुवर्णकात् ॥ ४५७ ॥
 नीलिकाग्रन्थिपर्णाभ्यां करञ्जात्केशरञ्जकात् ।
 षट्पलं गुग्गुलोर्दच्चा तैलं मृद्भक्षिना पचेत् ॥ ४५८ ॥
 कौञ्जाक्षेपकपाङ्गुल्यमुसुत्वङ्मन्दगामिताः ।
 पक्षाघातहनुस्तम्भसन्धिरोगादिकानपि ॥ ४५९ ॥
 नाशयेत्तक्षणादेव तमः सूर्योदयो यथा ।
 तैलं वातारिनामेदं सर्ववातहरं परम् ॥ ४६० ॥

दारुणके सारिवाद्यं तैलम् ।

सारिवोग्रामृतायष्टीत्रिफलानीलुत्पलम् ।
 नीलीभृङ्गारकासीसमहानिम्बफलानि च ॥ ४६१ ॥
 कटुतैलं पचेदेभिः सार्धं यवर्सेन तु ।
 कण्डूं दारुणकं हान्ति शिरोरोगे च शस्यते ॥ ४६२ ॥

वातरोगे दशाहं तैलम् ।

तर्कारीभृङ्गशिग्रूणां निर्गुण्डीशणयोस्तथा ।
 वातघ्नवृषजातीनां निम्बभास्करयोरपि ॥ ४६३ ॥
 स्वरसं तु समादाय प्रत्येकं प्रस्थमानतः ।
 प्रस्थं तु तिलतैलस्य शनैर्मृद्भक्षिना पचेत् ॥ ४६४ ॥

एरण्डमूलवर्षाभूहयगन्धाशतावरी-
 रास्त्रागोक्षुरकाश्चैव शतपुष्पा च सैन्धवम् ॥ ४६५ ॥
 प्रत्येकं कर्षमादाय कर्षार्थं त्रिकटोस्तथा ।
 एलात्वक्पत्रमांसीनां कर्षार्थं च विनिक्षिपेत् ॥ ४६६ ॥
 तैलेनानेन नश्यन्ति वातरोगाः सुदारुणाः ।
 आक्षेपकं हनुस्तम्भमपतन्नकर्मदितम् ॥ ४६७ ॥
 अपवाहुकविश्वाचीपक्षाघातापतानकम् ।
 स्नायुसन्धिगतं वातं सप्तधातुगतं तथा ॥ ४६८ ॥
 ऊरुस्तम्भामवातौ च वातरक्तं सुदारुणम् ।
 दशाङ्गसंज्ञकं तैलं हन्यादन्यांश्च वातजान् ॥ ४६९ ॥

कर्पूराद्यं तैलम् ।

कर्पूरचन्दनवचासुरदारुमूर्वा-
 गन्धर्वमूलरजनीद्रयसिन्धुजातैः ।
 मेदाद्रयत्रिकटुपुष्करमूलकुष्ठ-
 रास्त्राह्वयासुहरितालककुङ्कुमैश्च ॥ ४७० ॥
 पथ्याक्षकास्थितगरागुरुसारमेप-
 शृङ्गीजटाह्वययुतैः खलु कल्कितैश्च ।
 गोदुग्धयुक् कटुकतैलमिदं विपकं
 ख्यातं निहन्ति सहसा विविधा रुजश्च ॥ ४७१ ॥

ज्वरे लाक्षादिकं तैलम् ।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् ।
 अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठान्जचन्दनैः ॥ ४७२ ॥
 मूर्वारोहिणिकारास्त्राशताह्वामधुकैः सह ।
 सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिभिः ॥ ४७३ ॥
 सर्वज्वरविषोन्मादश्वासापस्मारकासनुत् ।
 यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥ ४७४ ॥
 पित्तज्वरेण तीव्रेण दह्यमानस्य देहिनः ।

प्रवातमन्दिरस्थस्य कुर्याच्छ्रीतामिमां क्रियाम् ॥ ४७५।

भन्वासनं तैलम् ।

पिप्पली पौष्करं मूलं शतपुष्पा वचा शटी ।

यष्ट्याहं देवदारुश्च चित्रको मदनात्फलम् ॥ ४७६ ॥

बिल्वं कुष्ठं च कल्केन तैलात्पादांशकेन हि ।

तैलतो द्विशुणं क्षीरं दत्त्वा मृद्रशिना पचेत् ॥ ४७७ ॥

एतदन्वासनं नाम गुदस्त्रावं प्रवाहिकाम् ।

गुदव्यथां पुरीषस्य प्रवृत्तिं च पुनः पुनः ॥ ४७८ ॥

वङ्गणस्यावरोधं च गलरोधं कटिग्रहम् ।

निहन्ति वातजान् रोगान् दीपयत्यपि चानलम् ॥ ४७९।

महानीलं तैलम् ।

ककुभस्य श्रीपर्ण्याः पुष्पं जम्बूफलं प्रियङ्गुश्च ।

मञ्जिष्ठा त्रिफलाऽगुरुमदनफलं चित्रकश्चैव ॥ ४८० ॥

नीलोत्पलमृणालकवीजकरुदमकनील्यश्च ।

भल्लातः स्रोतोऽन्नमाभ्रास्थिकासीसपौण्डरीकं च ॥ ४८१ ॥

मदयन्ती बाकुचिका रोध्रं चैतैस्तु समभागैः ।

तुलसीपत्रं बीजं सणस्य सूर्यभक्ता च ॥ ४८२ ॥

काकमाचीदारुकयष्टीमधुमार्कवं च सैरेयः ।

एतैर्द्विगुणैः कल्कीकृतैर्विभीतमज्जतैलं च ॥ ४८३ ॥

कल्काच्चतुर्गुणितं, तच्चतुर्गुणोऽथ धात्रीस्वरसः ।

सूर्यातपे विपाच्यं नाम्ना तैलं महानीलम् ॥

पलितादिषु प्रयोज्यं जत्रूर्ध्वगेषु च निपुणतरैः ॥ ४८४ ॥

पलिते नील्याद्यं तैलम् ।

नीलीदलं भृङ्गरजोऽर्जुनत्वक् पिण्डीतकं कृष्णमयोरजश्च ।

बीजोद्भवं साहचरं च पुष्पं पथ्याक्षधात्रीसहितं विपाच्या ॥ ४८५ ॥

एकीकृतं सर्वमदः प्रमाय पङ्केन तुल्यं नलिनीभवेन ।

संयोज्य पक्षं कलशे निधाय लौहे दृढे पद्मनि सापिधाने ॥ ४८६ ॥
 एतेन तैलं विपचेद्विमृश्य रसेन भृङ्गत्रिफलाभवेन ।
 आसन्नपात्रे च परीक्षणार्थं पक्षं बलाकाभवमाक्षिपेच्च ॥ ४८७ ॥
 भवेद्यदा तद्भमराङ्गनीलं तदा विपक्वं विनिधाय पात्रे ।
 कृष्णायसे मासमवस्थितं तदभ्यङ्गयोगात्पलितानि हन्यात् ४८८

ऊरुस्तम्भे द्विपञ्चमूल्याद्यं तैलम् ।

त्रिफला पञ्चमूल्यौ द्वे चित्रको देवदारु च ।
 एकाष्टीला त्वपामार्गः श्रेयसी वायसी सुधा ॥ ४८९ ॥
 काला भार्गी पृथक्पर्णी सुवहा मदयन्तिका ।
 विशल्योशीरकाश्मर्याहिंसादार्व्यस्तथाऽम्बिका ॥ ४९० ॥
 चिरबिल्वो विशोकश्च बला चांशुमती तथा ।
 पयस्या पीलुपर्णी च सगुडूची शतावरी ॥ ४९१ ॥
 एषां पञ्चपलान् भागान् जलद्रोणेषु सप्तसु ।
 अष्टभागावशेषेण पचेत्तैलं शनैः शनैः ॥ ४९२ ॥
 कुष्ठं च शतपुष्पा च चित्रकरुयूषणं वचा ।
 देवदार्वगुरु श्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४९३ ॥
 अश्वगन्धा स्थिरा पाठा मूर्वा श्योनाकमेव च ।
 पिप्पली शृङ्गवेरं च दन्ती हिङ्गुम्लवेतसौ ॥ ४९४ ॥
 भिषगेषां तु गर्भेण कषायेण च साधयेत् ।
 सिद्धं शीतं च पूतं च क्षौद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४९५ ॥
 दद्यात्तदस्य पानार्थं तदेवाभ्यङ्गने भवेत् ।
 ऊरुस्तम्भश्चिरोत्पन्नस्तैलेनानेन शाम्यति ॥ ४९६ ॥
 श्लीपदं चाह्यवातं च खुडवातांश्च नाशयेत् ।

अर्शसि दन्त्याद्यं तैलम् ।

दन्तीकाशीससिन्धूत्थकरवीरानलैः पचेत् ॥ ४९७ ॥
 तैलमर्कपयोन्मिश्रमभ्यङ्गात्पायुकीलजित् ।

कृमिरोगे महावीर्यं तैलम् ।

शशमार्जारयोर्वप्रोः कपेष्टृषवराहयोः ॥ ४९८ ॥
 मांसानां द्वे तुले सम्यक् पचेद्रोणेषु सप्तसु ।
 अष्टभागावशेषेण तेन तैलाढकं पचेत् ॥ ४९९ ॥
 भासवायसकाकानां गृध्रस्याखोः शुक्रस्य च ।
 कलविङ्ककुलिङ्गानां कुकुटस्य च वै वसाम् ॥ ५०० ॥
 मज्जानं दापयेदेषां पित्तान्यपि च लाभतः ।
 अपामार्गफलं भार्गी बीजं शैरीषमेव च ॥ ५०१ ॥
 फाणिङ्गकं विडङ्गानि शिशुकस्य त्वचस्तथा ।
 त्र्यूपणं हिङ्गुनिर्यासो वचा कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ५०२ ॥
 हस्तिपर्ण्याः शिरीषस्य ककुभस्यासनस्य च ।
 पलाशस्यारिमेदस्य मूलं बीजं च संहरेत् ॥ ५०३ ॥
 पिचुमन्दस्य निर्यासः शलुक्या गुग्गुलोस्तथा ।
 हिङ्गुग्वम्लवेतसौ चापि तथा ग्राह्या निदिग्धिका ॥ ५०४ ॥
 तुल्यान्येतानि गर्भाणि तैलं कर्णप्रपूरणम् ।
 नावनं चावगाहश्च शीर्षकृमिविनाशनम् ॥ ५०५ ॥
 तैलस्यास्य प्रणीतस्य गन्धेन कृमयः स्थिराः ।
 नश्यन्ति न विवर्धन्ते बलात्सुबहवोऽपि वा ॥ ५०६ ॥
 युक्त्याऽस्मिन् कृमयस्तैले नस्ये तु प्रतिपादिते ।
 तालं भित्वाऽऽशु मूर्धस्तु प्रद्रवन्त्युपपीडिताः ॥ ५०७ ॥
 सर्वकृमिहरं ह्येतत्तैलं शिरसि देहिनाम् ।
 बलावलं विचार्यैव नस्ये तदवचारयेत् ॥ ५०८ ॥
 कृमिभिर्भक्ष्यमाणानां नराणामेतदुत्तमम् ।
 तैलमेतन्महावीर्यं सर्वकृमिविनाशनम् ॥ ५०९ ॥

अन्त्रवृद्धौ गन्धर्वतैलम् ।

शतमेरुण्डमूलस्य पलं शुण्ठीयवाहम् ।
 जलद्रोणेऽथ दुग्धेन पचेदष्टगुणेन तु ॥ ५१० ॥

प्रस्थमेरण्डतैलस्य सप्तला द्विपला तथा ।

द्विपलं शृङ्गवेरस्य गर्भं दत्त्वा शनैः पचेत् ॥ ५११ ॥

पिबेत्तन्मियतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् भवेत् ।

अन्त्रवृद्धिं निहन्त्याशु तैलं गन्धर्वसंज्ञितम् ॥ ५१२ ॥

कर्णरोगे कुष्ठार्थं तैलम् ।

कुष्ठं मरिचलाङ्गुल्यौ शुण्ठी मागधिका घनम् ।

सरसाञ्जनकासीसं जतुसैन्धवगुग्गुलु ॥ ५१३ ॥

तालं शिला च निर्गुण्डी बिल्वं भल्लातकं तथा ।

कार्पिकैर्देवदारुत्थतैलस्य द्विपलेन च ॥ ५१४ ॥

कुडवं तिलतैलस्य पचेन्मूत्रे चतुर्गुणे ।

तत्कर्णपूरणात्क्षिप्रं पूयस्त्रावनिवारणम् ॥ ५१५ ॥

कृमिघ्नं दुष्टनाडीघ्नं व्रणानां चैव रोपणाम् ।

क्षिररोगे महानीलं तैलम् ।

आदित्यवह्निमूलानि कृष्णसैरैयकस्य च ॥ ५१६ ॥

सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णसणस्य च ।

मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च ॥ ५१७ ॥

पृथक् दशपलांशानि पिप्पली त्रिफलाऽञ्जनम् ।

प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा रोध्रं कृष्णागुरुत्पलम् ॥ ५१८ ॥

आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणालं रक्तचन्दनम् ।

नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ॥ ५१९ ॥

सोमराज्यसनात्पुष्पं कृष्णपिण्डतचित्रकौ ।

पुष्पाण्यर्जुनकाशमर्योः श्यामा जम्बूफलानि च ॥ ५२० ॥

पृथक् पञ्चपलांशानि तैः पिष्टैराढकं पचेत् ।

विभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ॥ ५२१ ॥

कुर्यादादित्यपाकं च यावच्छुष्को भवेद्रसः ।

लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमथ योजयेत् ॥ ५२२ ॥

ऊष्ठे गुजामूलाद्यं तैलम् ।

त्रिफलागुञ्जिकामूलत्रिशूलीपुरतालकैः ।

पुत्रञ्जीवास्थिसिन्दूरमधूच्छिष्टनिशायुगैः ॥ ५२३ ॥
 पशुच्छिन्नविषज्वालामुखीकन्दवचायुतैः ।
 पृथक्पलार्धकैः पिष्टैस्तैलमर्धाढकं कटु ॥ ५२४ ॥
 समालोड्य पचेत्सम्यग्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
 विपाच्य मतिमान् वैद्यः सर्वकुष्ठव्रणापहम् ॥ ५२५ ॥
 तैलं कुष्ठहरं वर्ण्यं फणिकीटविषापहम् ।
 कण्डूविचर्चिकासिध्मवातासृक्शमनं परम् ॥ ५२६ ॥

मञ्जिष्ठार्थं तैलम् ।

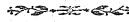
मञ्जिष्ठा पद्मकं कुष्ठं चन्दनं गैरिकं बला ।
 हरिद्रे द्वे मियङ्गुश्च नागं यष्टी सवाकुची ॥ ॥५२७
 दारु प्रपौण्डरीकं च पिष्ट्वाऽर्धपलिकानि तु ।
 तैलप्रस्थं गवां क्षीरं दत्त्वा काथं तथाऽसनात् ॥ ५२८ ॥
 भृङ्गद्रवं चतुष्प्रस्थं शनैर्घृद्रग्निना पचेत् ।
 अस्य तैलस्य पक्कस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५२९ ॥
 केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ।
 दन्तकर्णाक्षिशूले च नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥ ५३० ॥
 आकुञ्जिताग्रान् सुस्त्रिग्धान् केशान् संजनयेद्ब्रह्मन् ।
 पलिते चेन्द्रलुप्ते च तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ ५३१ ॥
 मञ्जिष्ठाद्यमिदं नाम्ना शिरोरोगनिवारणम् ।

कुष्ठं सिद्धार्थकतैलम् ।

करवीरवचातुम्बररसाञ्जनकरञ्जभृङ्गलाक्षाभिः ॥५३२ ॥
 सारुष्करसिद्धार्थकमूलबीजाग्निगण्डरैः ।
 रजनीद्वयमञ्जिष्ठारग्वधाविडङ्गमाक्षीकैः ॥ ५३३ ॥
 सैन्धवकटुकालावुपिचुमर्दास्फोटमालतीभिश्च ।
 सर्षपतैलं कारञ्जं वा गवां मूत्रेण वै सिद्धम् ॥ ५३४ ॥
 द्विशुणेन साधितमचिराद्भ्यङ्गाद्गन्ति कुष्ठानि ।
 अष्टादशापि सिद्धं तैलं सिद्धार्थकं नाम ॥ ५३५ ॥

इति श्रीवैद्यवसोढलप्रधिते गदानिग्रहे द्वितीयस्तेल्विधिकारः ।

अथातस्तृतीयश्चूर्णाधिकारः ।



गुल्मे हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हपुषामभयां शटीम् ।
 अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ १ ॥
 दाडिमं पौष्करं धान्यमजार्जां चित्रकं वचाम् ।
 द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥
 चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्नपानेष्वनत्ययम् ।
 प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ३ ॥
 पार्श्वहृद्ग्रन्थिस्थूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
 आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च गुदयोनिरुजासु च ॥ ४ ॥
 ग्रहण्यशोविकारेषु प्लीहपाण्डामयेऽरुचौ ।
 उरोविबन्धहिक्कासु श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ५ ॥
 भावितं मातुलङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
 बहुशो गुटिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ ६ ॥

शूले द्वितीयं हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यदीप्यकवचाचव्याग्निपाठाः शटी
 वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ।
 पथ्यापुष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं
 चूर्णं भावितमेतदाद्रकरसैः स्याद्बीजपूरस्य च ॥ ७ ॥
 आध्मानग्रहणीविकारगुदजान् गुल्मानुदावर्तकान्
 प्रत्याध्मानगरोदराश्मरिरुजस्तृनीद्वियारोचकान् ।
 ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो वाधिर्यमष्टीलिकां
 प्रत्यष्टीलिकया सहापहरति प्राक्पीतमुष्णाम्बुना ॥ ८ ॥
 रुक्ुशिवङ्गणकटीजठरान्तरेषु
 बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ।

शूलानि नाशयति वातबलासजानि

हिङ्गवाद्यमुक्तमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥ ९ ॥

गुल्मे शार्दूलं चूर्णम् ।

हिङ्गुग्राविडशुण्ठ्यजाजिविजयावाट्याभिधानामयै-
शूर्णं कुम्भनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः ।

पीतं कोष्णजलेन कोष्ठकरुजागुल्मोदरादीनयं

शार्दूलं प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन्मृगौघानिव ॥ १० ॥

गुल्मे नाराचकं चूर्णम् ।

सिन्धूत्थपथ्याकणदीप्यकानां चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः ।

प्रयाति नाशं कफवातजन्मा नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः ॥ ११ ॥

गुल्मे पूतीकाद्यं चूर्णम् ।

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवद्धि-

व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।

दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं

गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ १२ ॥

गुल्मे हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

हिङ्गुत्रिगुणं सैन्यवमस्मात्रिगुणं च तैलमैरण्डम् ।

तत्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥ १३ ॥

श्वसे विजयं चूर्णम् ।

त्रिकत्रयं वचा हिङ्गुः पाठा क्षारो निशाद्रयम् ।

चव्यतिक्ताकलिङ्गाशिशताह्वालवणानि च ॥ १४ ॥

ग्रन्थिविल्वाजमोदं च गणोऽष्टाविंशको मतः ।

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १५ ॥

एरण्डतैलसंयुक्तं सद्यो लिह्यात्ततो नरः ।

विडालपदकं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १६ ॥

श्वसं हन्यात्तथा शोषमर्शासि च भगन्दरम् ।

हृच्छूलं पार्श्वशूलं च बस्तिशूलमरोचकम् ॥ १७ ॥

ष्टीहकासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगिताम् ।
 आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदकृमीन् ॥ १८ ॥
 हन्याच्च ग्रहणीरोगान् ये मया परिकीर्तिताः ।
 महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ १९ ॥
 अप्रजानां च नारीणां प्रजावर्धनमेव च ।
 विजयो नाम चूर्णोऽयं सर्वव्याधिहरः परः ॥ २० ॥

वातरोगे अजमोदाद्यं चूर्णम् ।

अजमोदमरिचपिप्पलिविडङ्गसुदारुचित्रकशताह्वाः ।
 सैन्धवपिप्पलिमूलं भागा नवानां पलिकाः स्युः ॥२१॥
 शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारुकस्यापि ।
 अभया पलानि पञ्च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ २२ ॥
 समगुडवटकानदतस्तच्चूर्णं कोष्णवारिणा पिवतः ।
 नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुदारुणाः शीघ्रम् ॥२३॥
 विश्वाचीप्रतितूनीतूनीरोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ।
 कटिपृष्ठगुदस्फुटनं स्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥२४॥
 श्वयथुः स्तम्भोऽधिसन्धि ये चान्ये चामवातसंभूताः ।
 सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ २५ ॥
 क्षुद्रोधमरोगित्वं स्थिरयौवनतां च वलीपलितनाशम् ।
 कुस्ते च तदभ्यासाद्ब्रह्मनन्यानपि गुणांश्चैव ॥ २६ ॥

वातरोगे आभाद्यं चूर्णम् ।

आभां रास्त्रां गुड्डीं च शतमूर्त्तीं महौषधम् ।
 शतपुष्पाऽश्वगन्धे च हपुषां वृद्धदारकम् ॥ २७ ॥
 यवानीं चाजमोदां च समभागं तु कारयेत् ।
 सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा बिडालपदकं पिवेत् ॥ २८ ॥
 मधैर्मांसरसैर्युषैस्तक्रेणोष्णोदकेन वा ।
 सर्पिषा वापि लेह्यं तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ २९ ॥

अस्थिसन्धिगतं वायुं स्नायुमज्जाश्रितं तथा ।
 गृध्रसीं च कटिस्तम्भं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ३० ॥
 ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च सर्वान् प्रणाशयेत् ।
 आभाद्यं चूर्णमेतच्च सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३१ ॥

अतिसारे कफिस्थाष्टकम् ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ।
 मंरिचेन्द्रयवाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ ३२ ॥
 वृक्षाम्लघातकीकृष्णाविल्वदाडिमदीप्यकैः ।
 त्रिगुणैः पद्मसितायुक्तैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥
 चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ।
 कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाञ्जयेत् ॥ ३४ ॥

ग्रहण्यां द्वितीयं कपित्थाष्टकम् ।

कपित्थत्रुटिवराङ्गविश्वौषधं धान्यका
 चव्याजाजीयवान्यश्च तुल्यांशकाः ।
 मरिचदहनदाडिमं घातकी चुक्रिका
 विल्वसौवर्चलं पिप्पलीमूलवृक्षाम्लकम् ॥ ३५ ॥
 अपरमपि कपित्थाष्टकं षड्गुणा
 पिप्पली सर्वतुल्यांशका शर्करा ।
 ग्रहणिनाशनं वह्निसन्दीपनं
 कासहृद्रोगगुल्मार्शसां नाशनम् ॥ ३६ ॥

ग्रहण्यां दाडिमाष्टकम् ।

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ।
 यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम् ॥ ३७ ॥
 पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
 कपित्थाष्टकवच्चायं गुणैः स्यादाडिमाष्टकः ॥ ३८ ॥

अतिसारे द्वितीयं दाडिमाष्टकचूर्णम् ।

दाडिमस्य पलान्यष्टौ चातुर्जातं पलद्वयम् ।

अजाजीनां पलार्धं तु पलार्धं धान्यकस्य च ॥ ३९ ॥

पृथक्तुपालिकान् भागांस्त्रिकटोर्ग्रन्थिकस्य च ।

त्वक्क्षीरी बालकं चैव दद्यात्कर्षसमान् भिषक् ॥४०॥

शर्करायाः पलान्यष्टावेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।

आमातीसारकासघ्नस्तथा हृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ४१ ॥

हृद्रोगमरुचिं गुल्मं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ।

प्रयुक्तो नाशयत्याशु चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ॥ ४२ ॥

गलभोगे एलाद्यं चूर्णम् ।

एला त्वग्दलनागपुष्पमरिचं स्यात्पिप्पली नागरं

भागैः स्यात्क्रमवर्धितैः किल युतं सर्वैश्च तुल्या सिता ।

एतच्चूर्णमजर्णिगुल्मजठरेऽप्यर्शःसु हृद्रोगिषु

कासश्वासिषु रक्तपित्तिषु हितं कोष्ठामयध्वंसनम् ॥४३॥

अरोचके वृद्धैलाद्यं चूर्णम् ।

वृद्धैला पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ ४४ ॥

अजमोदाऽजगन्धा च कपित्थं चार्धकार्षिकम् ।

अत्यन्तपरिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुष्पलम् ॥ ४५ ॥

चूर्णं सेव्यमिदं पुम्भिः परमं रुचिवर्धनम् ।

ग्रीहकासमथार्शासि श्वासशूलं वमिं ज्वरम् ॥ ४६ ॥

निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णकरं परम् ।

वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ४७ ॥

अरोचके कर्पूराद्यं चूर्णम् ।

कर्पूरचोचकङ्गोलजातीफलदलाः समाः ।

लवङ्गोषणनागाहकृष्णाशुण्ठयो विवर्धिताः ॥ ४८ ॥

चूर्णं सितासमं हृद्यं रोचनं क्षयकासजित् ।
 वैस्वर्यश्वासगुल्मार्शश्छर्दिकण्ठामयापहम् ॥ ४९ ॥
 प्रयुक्तं चान्नपाने हि भेषजद्वेषिणां वरम् ।

अरोचके त्वगेलद्यं चूर्णम् ।

त्वगेलान्योषधान्याम्लनागकेसरजीरकम् ।
 लवलीफलकङ्कोलं लवङ्गं जातिपत्रिका ॥ ५० ॥
 भागानेषां समान् कृत्वा दद्याद्भिगुणितां सिताम् ।
 ईपत्कपूरसंयुक्तं चूर्णं रुचिकरं परम् ॥ ५१ ॥

गुल्मे त्रिलवणाद्यं चूर्णम् ।

त्रिलवणहपुषाजमोदाजगन्धावचाहिङ्गुपाटोपकुञ्जीशटीजीर-
 काजाजिकुस्तुम्बरीवाष्पिकाः कारवी तुम्बरुः स्वर्जिका याव-
 शूको जटा पौष्करं दाडिमं तिन्तिडीकं विडङ्गानि भार्गी वरी
 वेधको, मिशिमरिचगजोपकुल्याऽभयाः पञ्चकोलं निकुम्भा
 विशाला यवानी सुराहं च तत्सर्वमेकत्र चूर्णीकृतं बीजपूरार्द्रके-
 नासकृद्भ्रावितं यः पिवेत्प्रातराहारकालेऽथवा मासमात्रं हिताशी
 नरः, हुतमशिशिरवारिणा जीर्णमद्येन तत्रेण सूत्रेण क्रोलाम्भ-
 सा मस्तुना सर्पिषौष्ट्रेण दुग्धेन कौलत्थयूषेण वा क्षारनिश्चोत-
 तोयेन वा दाडिमस्यैव वाराऽऽत्मवानेभिरेवौषधैः साधितं वा घृतं,
 हृदयगुदकटीयकृत्प्लीहजं तस्य शूलं प्रणश्येत्तथा गुल्मविष्टम्भ-
 दुर्नामकृच्छ्रोदराध्मानहिध्मारुचिश्लीपदश्वासकासाः प्रपक्तुं च
 शक्तो भवेत्पावकः प्राश्यमानानि पाषाणचूर्णान्यपि ॥ ५२ ॥

अरोचके सूक्ष्मैलाद्यं चूर्णम् ।

सूक्ष्मैला केसरं त्वक्च पत्रं तालीसकं तुगा ।
 पृथ्वीका दाडिमं धान्यं जीरकं च द्विकार्षिकम् ॥ ५३ ॥
 पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

१ अत्र दण्डकाख्यश्छन्दः । तत्र प्रथमं द्वौ नगणो, अनन्तरं द्वाविंशती
 रगणा ज्ञेयाः ।

मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् ॥ ५४ ॥

अजमोदाजगन्धे च दधित्थं चेति कार्षिकम् ।

चूर्णमग्निप्रदं ह्येतत्परमं रुचिवर्धनम् ॥ ५५ ॥

अरोचके लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गकङ्कोलमुशीरचन्दनं

नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।

एला सकृष्णाऽगुरुभृङ्गकेसरं

कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुना ॥ ५६ ॥

कर्पूरजातीफलवंशरोचनाः

सितार्धभागं सकलं तु चूर्णितम् ।

सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं

वलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषजित् ॥ ५७ ॥

उरोविवन्धं तमकं गलग्रहं

सकासहिध्माश्चियक्ष्मपीनसम् ।

ग्रहण्यतीसारमथासृजः क्षयं

प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ५८ ॥

अरुचौ द्वितीयं लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागं समं कर्षमितं प्रकुर्यात् ।

पलार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥५९॥

सितासमं चूर्णमिदं प्रयुक्तं प्रसह्य रोगान् प्रबलाग्निह्न्यात् ।

कासक्षयारोचकमेहगुल्ममर्शांसि चोग्रान्ग्रहणीप्रदोषान् ॥ ६०॥

हृत्कण्ठनासावदनप्रबोधं करोति सन्दीपयते च वह्निम् ।

तृतीयं लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गकङ्कोलकणावराङ्गतालीसचव्यञ्जुटिग्रन्थिकौन्त्यः ।

ऐलेयशृङ्गी लवली तुरङ्गी सकेसरा सोषणपत्रिका च ॥ ६१ ॥

द्विदाडिमं तिनितिकोलमूलं रोध्रत्वचा तूणधवं च तैलम् ।
 कर्पासमानानि पलं च शुण्ठ्याः शंशी कलांशः सप्तशर्करोऽयम् ६२
 लवङ्गकाद्यो रुचिपक्तिदाता दुग्गन्धिहृद्यः क्षयरोगहन्ता ।
 बलाभिसंवर्धन एष चूर्णो वरः मयोज्यो नृपतेहिताय ॥ ६३ ॥

रक्तपिते चन्दनघं चूर्णम् ।

चन्दनं नलदं रोध्रधुस्तीरं पद्मकेसरम् ।
 नागपुष्पं तथा विल्वं भद्रहुस्तं सशर्करम् ॥ ६४ ॥
 ह्रीमेरं चैव पाठा च कुटजस्य फलं त्वचम् ।
 शृङ्गवेरं विपा चैव धातकी च रसाञ्जनम् ॥ ६५ ॥
 आम्रास्थि जम्बुसारं च तथा बोचरसः स्मृतः ।
 नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचः ॥ ६६ ॥
 चतुर्विंशतिमेतानि समभागानि कार्शेत् ।
 तन्दुलोदकसंयुक्तं शौद्रेण सह योजयेत् ॥ ६७ ॥
 चलतां चापगर्भाणां स्तम्भनं परशुच्यते ।
 अश्विभ्यां विहितं पूर्वं रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ६८ ॥
 हितं लोहितपित्तभ्यो हर्षस्मृ लोहितेषु च ।
 तमोमूर्च्छोपलक्षणानां तृपार्तानां च दापयेत् ॥ ६९ ॥

प्रतिशयधि व्याषादिचूर्णम् ।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लयेतसैः ।
 जीरचव्यैश्च तुल्यांशैः पादैस्त्वक्त्रुटिपत्रकैः ॥ ७० ॥
 व्योषादिकभिदं नाम पुराणमुडसंयुतम् ।
 पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं प०म् ॥ ७१ ॥

१ 'कर्पूरबलीसंभृतं तोय तृणोद्भवं विदुः । महाभिकरणं तच्च दन्तदाढर्वकं
 परम् ॥' इति हस्तलिखितपुस्तके टिप्पणमुपलभ्यते । 'चूतधवं च वृक्कम्'
 इति पा० ।

२ शशी कर्पूरः ।

९

शोषे खाडवं चूर्णम् ।

पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
सिता पलचतुष्कं च नागरार्धपलं तथा ॥ ७२ ॥
धान्यसौवर्चलाजाजीत्वगेलाश्चार्धकार्षिकाः ।
कोलदाडिमवृक्षाम्लयवान्यश्चाम्लवेतसः ॥ ७३ ॥
कार्षिकांश्चूर्णयेत्सर्वान् हृद्यं त्वन्नप्ररोचकम् ।
स्त्रीहृद्बद्धहृणीदोषपञ्चकासनिवहर्णम् ॥ ७४ ॥
खाडवं नाम गुल्मार्तिविवन्धानाहशूलनुत् ।

शोषे महाषाडवं चूर्णम् ।

तालीसोषणचव्यनागलवणैः सर्वैः समंशैस्ततो
द्विप्रैर्ग्रन्थिकतिन्तिडीकहुतभुक्त्वग्जीरकृष्णायुतैः ।
विश्वैलावदराम्लवेतसघनैर्धान्याजमोदायुतै-
रुयंशैर्दाडिमबीजपादसहितैः श्रेष्ठः सितार्धांशकः ॥ ७५ ॥
कण्ठास्योदरद्विकारशमनः कायाभिसन्दीपनो
गुल्माध्मानविस्फुचिकागुदरुजाश्वासकृमिच्छर्दिहा ।
कासारुच्यतिसारमूढमरुतां हृद्रोगिणां कीर्तित-
श्चूर्णोऽयं भिषजामतीव दयितः ख्यातो महाषाडवः ॥ ७६ ॥

अरोचके दाडिमाद्यं चूर्णम् ।

द्वे पले दाडिमादष्टौ स्वण्डाड्योषात्पलत्रयम् ।
त्रिसुगन्धिपलं चैकं चूर्णमेतच्च कारयेत् ॥ ७७ ॥
रोचनं दीपनं स्वयं पीनसश्वासकासजित् ।

कासे लघुतालीसाद्यं चूर्णम् ।

मरिचं चैव तालीसं नागरं पिप्पली शुभा ॥ ७८ ॥
यथोत्तरं भागद्वय्या त्वगेले चार्धभागिके ।
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ॥ ७९ ॥
श्वासकासारुचीर्हन्ति चूर्णं दीपनकं परम् ।

हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहशोफज्वरापहम् ॥ ८० ॥

छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ।

कल्पयेद्दुटिकां चैव चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ॥ ८१ ॥

गुटिका ह्यशिसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा मता ।

गुल्मे शार्दूलं चूर्णम् ।

भागवद्दयोत्तरं हिङ्गुवचाविडमहौषधम् ॥ ८२ ॥

यवानामभयां चैव चूर्णं मस्त्वादिभिः पिबेत् ।

विवन्धानाहशूलाशौवर्धमश्वासोदरापहम् ॥ ८३ ॥

ग्रहणीरोगशूलघ्नं शार्दूलं नाम दीपनम् ।

उदरे नारायणं चूर्णम् ।

यवानी त्रिफला धान्यं हपुषा सोपकुञ्चिका ॥ ८४ ॥

पृथ्वीका पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ।

शताह्वा जीरकं व्याषं स्वर्णक्षीरी सचित्रका ॥ ८५ ॥

द्वौ क्षारौ पौकरं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ।

विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा ॥ ८६ ॥

द्वेगुणे तु त्रिवृच्चित्रे सातला च चतुर्गुणा ।

एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ॥ ८७ ॥

एतं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवाधुराः ।

तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्वदराम्बुना ॥ ८८ ॥

सुरया बद्धवाते च वातरोगे प्रसन्नया ।

दाधिमण्डेन विदसङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शासि ॥ ८९ ॥

परिकर्तेशु वृक्षाम्लैरुष्णाम्भोभिरजीर्णके ।

भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ९० ॥

दंष्ट्राविषे विषे मौले सगरे कृत्रिमे विषे ।

यथार्हस्त्रिग्वकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ९१ ॥

उदरे हपुषाद्यं चूर्णम् ।

हपुषां काञ्चनक्षीरीं त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।

नीलिनीं त्रायमाणां च सप्तलां त्रिवृतां वचाम् ॥ ९२ ॥

काचलवणसिन्धुस्थे पिप्पलीं चेति चूर्णयेत् ।
 दाडिमत्रिफलाभांसरसमुत्रसुखोदकैः ॥ ९३ ॥
 पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीहि सर्वोदरेषु च ।
 भिन्नकुष्ठेष्वजीर्णेषु सहजे विषभाप्रिषु ॥ ९४ ॥
 शौफार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके ।
 वातपित्तकफोज्ज्वान् विकारान् सन्निवारयेत् ॥ ९५ ॥

उदरे नाराचकं चूर्णम् ।

विडङ्गाजाजिकाचम्पत्रिफलाधान्यकं वचा ।
 पटूनि षड् च क्षारौ ग्रन्थिकं पुष्करं शटी ॥ ९६ ॥
 यवानी कुञ्जिका कुष्ठं विजाला धान्यकं वचा ।
 शतपुष्पाऽजगन्धा च हेमक्षीरी सनीलिका ॥ ९७ ॥
 हृषुषा त्रिवृता दन्ती सातला द्विगुणोत्तरम् ।
 चूर्णं नाराचकं पीतं मद्यमस्त्वम्लकाङ्गिकैः ॥ ९८ ॥
 गुल्माशोऽग्रहणीरोगान् श्वासं कासोदरे जयेत् ।

उदरे सुवर्णसमकं चूर्णम् ।

मरिचं पञ्चकोलं च द्वौ क्षारौ त्रिफला वचा ॥ ९९ ॥
 यवानी कुञ्जिका हिङ्गु तित्तिडीकाम्लवेतसौ ।
 त्रायन्ती दाडिमं धान्यमजगन्धा यवाग्रजम् ॥ १०० ॥
 कटुका कौटजं बीजं सैन्धवं च समं पृथक् ।
 द्विगुणा त्रिवृता दन्ती कम्पिलो नीलिकाऽभया ॥ १०१ ॥
 स्वर्णक्षीरी सप्तला च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
 उष्ट्रमूत्रे तथा गव्ये सप्ताहं परिभावयेत् ॥ १०२ ॥
 द्विगुणां शर्करां चात्र दापयेत्तत्पिबेड्यहम् ।
 गोमूत्रत्रिफलाक्षाररसैर्मथैः सुखाम्बुना ॥ १०३ ॥
 सुवर्णसमकं चूर्णं सर्वरोगार्तिभेषजम् ।
 प्लीहानसुदरं हन्ति गुल्मं हृद्रोगमेव च ॥ १०४ ॥

१ ' भिन्नकोष्ठेषु ' इति पा० । २ ' अज.मुत्र ' इति पा० ।

वाताष्टीलामथानाहं श्वयधुं सर्वगात्रजम् ।

हलीमकं कामलां च पाण्डुं मेहं ज्वरं तथा ॥ १०५ ॥

कुष्ठे पटोलार्धं चूर्णम् ।

मूलं पटोलस्य तथा रजन्ध्रौ फलत्रिकं चेति समानि पदच ।
स्यान्नीलिनी द्विक्षिगुणा विशाला कम्पलकश्चापि चतुर्भिरंशैः ॥
त्रिवृत्तथा पञ्चगुणेति योगं चूर्णीकृतं स्याद्विमितं पिवेद्धि ।
कुष्ठेषु सूत्रेण तु रोहिणीन श्वित्रे गरे बाथ हलीमके च ॥ १०७ ॥
जातोदकान्यप्युदराणि हन्यात्पाण्डुवामयाशः श्वयधुममेहान् ।
एनं प्रयोगं च पिवन् हि कुष्ठी स्वादेद्रसैर्धन्वमृगद्विजानाम् १०८

कुष्ठे द्राक्षाद्यं चूर्णम् ।

द्राक्षा निशा च मञ्जिष्ठा त्रिफला देवदारु च ।

नागरं पञ्चमूले द्वे सुस्ता मधुरसा तथा ॥ १०९ ॥

सप्तपर्णी ह्यपामार्गः पिचुमन्दाटरूपकौ ।

विडङ्गं चित्रको दन्ती पिप्पल्यो मरिचानि च ॥ ११० ॥

एतेषां समभागानां कुष्ठी चूर्णं पलं पिवेत् ।

मासं गोमूत्रसंयुक्तं तथा कुष्ठात्ममुच्यते ॥ १११ ॥

आमवाते अलम्बुषार्धं चूर्णम् ।

अलम्बुषाऽमृता शुण्ठी चित्रकस्त्रिफला कणा ।

यावन्त्येतानि चूर्णानि दृढदारु च तत्समम् ॥ ११२ ॥

सूक्ष्मचूर्णीकृतान् सर्वान् स्वेच्छाहारविहारिणः ।

पिवतो मदिरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकैर्जयेत् ॥ ११३ ॥

प्लीहानामामवातं च यकृतपाण्डुविसूचिकाः ।

उक्तं काङ्कायनेनेदं चूर्णमधिकरं परम् ॥ ११४ ॥

आमवाते द्वितीयमलम्बुषार्धं चूर्णम् ।

अलम्बुषा श्वदंष्ट्रा च त्रिफला नागरामृते

यथोत्तरं भागद्वयाः श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥ ११५ ॥

पिवेन्मस्तुसुरातक्रपयोमांसरसादिभिः ।

आमवातं निहन्त्येतत्सशोषं वातशोणितम् ।

अलम्बुषादिकं चूर्णं बहुरोगविनाशनम् ॥ ११६ ॥

श्वासकासे विडङ्गाद्यं चूर्णम् ।

विडङ्गश्चित्रको मुस्ता ग्रन्थिकं देवदारु च ।

वराङ्गचविकाजाजीविभीतकफलानि च ॥ ११७ ॥

शुण्ठी खदिरसारश्च मेषशृङ्गी सपिप्पली ।

भार्गी शृङ्गी तथा छत्रा कर्चूरो मरिचानि च ॥ ११८ ॥

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।

उष्णेन वारिणा पीतं हन्ति श्लेष्मगलामयान् ॥ ११९ ॥

हृद्रोगांश्चैव कासांश्च कण्ठरोगांश्च दारुणान् ।

अन्ये च कफजा रोगा विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ १२० ॥

मन्दाग्रौ वडवानलं चूर्णम् ।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं हरीतक्यः ।

क्रमहृद्रमशिट्टिं करोति वडवानलं चूर्णम् ॥ १२१ ॥

मन्दाग्रौ द्वितीयं वडवानलं चूर्णम् ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जवेलाशिभिः सितातुल्यैः ।

वडवानलं जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १२२ ॥

प्रहृष्याममिमुखं चूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलाभागाः पञ्चषट् च पृथक् चव्यचित्रकयोः ।

विडसैन्धवसौवर्चलमेकद्वित्रीणि कर्षाणि ॥ १२३ ॥

इति चूर्णं ग्रहणीगदगुदजोदरगुल्फशूलघ्नम् ।

जनयति च जातवेदसमल्पभुजामेतदग्निमुखम् ॥ १२४ ॥

गुल्फे द्वितीयमग्निमुखं चूर्णम् ।

चित्रकहृषुषाग्रन्थिकसैन्धवसौवर्चलजमोदाभिः ।

विडधान्यशटीपुष्करकर्चूराजाजितित्तिडीकैश्च ॥ १२५ ॥

चव्ययवानीदाडिमपृथ्वीकैलाम्लवेतसैश्च समैः ।

अग्निमुखोऽयं चूर्णः काञ्जिकमस्तूष्णवारिसीधुनाम् १२६

पीतोऽन्यतमेन वृभिर्गुल्मारुचिवह्निसादशुलानि ।
दुर्नामप्लीहोदरकफवातगदान्विनाशयति क्षिप्रम् ॥१२७॥

गुल्मे बृहदग्निमुखं चूर्णम् ।

द्रौ क्षारौ चित्रकः पाठा विडङ्गं लवणानि च ।
सूक्ष्मैला तगरं भार्गी कारवी हिङ्गु पौष्करम् ॥१२८॥
शटी दावीं त्रिवृन्मुस्ता वचा चेन्द्रयवास्तथा ।
धात्रीजीरकवृक्षाम्लश्रेयस्यः सोपकुञ्चिकाः ॥ १२९ ॥
अम्लवेतसमम्लीका दाडिमं सकटुत्रयम् ।
भल्लातकाजमोदे च यवानी सुरदारु च ॥ १३० ॥
अभयाऽतिविषा चव्या हपुषाऽऽरग्वधस्तथा ।
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ १३१ ॥
क्षारा अमूनि तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
लोहकिट्टं च सप्ताहं तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ १३२ ॥
विद्वान्मुभावितं कृत्वा योगेऽस्मिन्भक्षिपेत्ततः ।
मातुलुङ्गरसेनैव भावयेत्तु दिनत्रयम् ॥ १३३ ॥
दिनत्रयं तु शुक्रेण तथाऽऽर्द्रकरसेन च ।
मुभावितं ततः कृत्वा भक्तमध्ये प्रयोजयेत् ॥१३४॥
एषोऽग्निकल्पचूर्णस्तु नाशयत्यचिराद्दान् ।
अजीर्णकं तथाऽऽनाहं पञ्च गुल्मान् सुदुस्तरान् ॥१३५॥
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च श्वासकासांश्च दारुणान् ।
प्रतिश्यायं क्षयं शोषं विद्रधिं कफवातजाम् ।
उदराप्यञ्जवृद्धिं च हाष्ठीलां वातशोणितम् ।
कुष्ठानि च विशीर्णानि सन्निपातं सुदुर्जयम् ।
अर्शांसि वातरक्तं च कुष्ठमन्नस्य वृद्धिताम् ॥
अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं च मदात्ययम् ॥१३६॥
प्रणुदत्युल्बणानेतान्नष्टमग्निं च दीपयेत् ।
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा तु भोजने ॥१३७॥

प्रदद्यादस्य चूर्णस्य विडालपदकं । भषक् ।
ततस्तद्रवतां याति कोष्णत्वं च प्रपद्यते ॥१३८॥

एष चाग्निमुत्रशूर्णशूर्णराजो निगद्यते ।
ब्रह्मणा निर्मितश्चैष ह्यग्निभ्यां परिकीर्तितः ॥१३९॥
अग्निमान्द्य वैश्वानरं चूर्णम् ।

लवणयवानीदीप्यकृपिप्पलीनागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।
सर्वसमांशा पथ्या चूर्णो वैश्वानरः साक्षात् ॥१४०॥
गुल्मे द्वितीय वैश्वानरं चूर्णम् ।

सैन्धवलवणत्कर्षो द्वौ च यवान्यास्त्रयोऽजमोदायाः ।
पिप्पल्याश्चापि पलं पञ्चकर्षाणि शुण्ड्याश्च ॥ १४१ ॥
द्वादश हरीतकीनां चूर्णमिदं कारयेच्छ्लक्ष्णम् ।
मद्योष्णोदकयूषैः पिवेद्भि तत्रेण सर्पिषा वापि ॥१४२॥
गुल्मे तथा रुजायां पार्श्वोदरवस्तियोनिशूलेषु ।
वातानुलोमनकरं चूर्णं वैश्वानरं नाम ॥१४३॥

गुल्मे तृतीय वैश्वानरं चूर्णम् ।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्रदेव च ।
भागान्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥१४४॥
दश चैव हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णीकृताः शुभाः ।
मस्त्वारनालमद्यैश्च सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥१४५॥
आमवातं जयेत्पीतं गुल्मं वृद्धस्तजं गदम् ।
वातानुलोमनं श्रेष्ठं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥१४६॥

अग्निदीप्त्यर्थं ज्वालामुखं चूर्णम् ।

हिङ्गुम्लवेतसकटुत्रिकचित्रकेभ्यः

सक्षारपौष्करफलत्रिकदाडिमेभ्यः ।

कर्षान्पृथग्गुडपलान्यत्रचूर्ण्य भुक्तो

ज्वालामुखोऽयमनलस्य करोति दीप्तिम् ॥१४७॥

उदावर्ते नाराचक चूर्णम् ।

हिङ्गु कुष्ठं वचा चैव स्वर्जिका विडमेव च ।

१ प्रत्येकं कर्षमितानां हिङ्गुवादीनां यावन्तः कपांस्तावान्तं गुडपलानीत्यर्थः ।

एको द्वावथ चत्वारस्तथाऽष्टौ षोडशैश्च च ॥१४८॥
 यथाक्रमकृतान् भागांश्चूर्णमानाहभेदनम् ।
 नाराचविवृतो ह्येष योगो नाराचको मतः ॥१४९॥
 उदावर्तेषु शूलेषु गुल्लेष्वथ भगन्दरे ।
 हृद्रोगस्य प्रमहस्य योगोऽयं क्षमनः परः ॥१५०॥

सारस्वत चूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धसैन्धवपिप्पलिमरिचं द्विजीरकं शुण्ठी ।
 पाठाऽजमोदसहिता समभागा चूर्णिता च वचा १५१
 प्रातर्मधुसर्पिभ्यां विडालपदमाश्रयेत्तद्वलिह्य ।
 सप्ताहं पथ्याशी किन्नरमधुरस्वरो भवति मर्त्यः ॥१५२॥
 द्विगुणीकृते च तस्मिन्मेधावी भवति मिष्टवाक्यश्च ।
 त्रिगुणीकृते च तस्मिञ्छ्लोकसहस्रं षट्पत्याशु ॥१५३॥
 दुर्मेधसः किलायं भिक्षोराचार्यलोकमेनेन ।
 अप्राथितेन दत्तो योगवरो नन्दविहारे ॥१५४॥

वृद्धसारस्वत चूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ।
 माङ्गल्यपुष्पी च समानि चूर्णं कृत्वा तु चूर्णेन वचोद्भवेन १५५
 तुल्येन युक्तं बहुशो रसेन तद्भावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः ।
 सर्पिर्मधुभ्यां च ततोऽक्षमात्रं लिह्यान्नरः सप्तदिनं हिताशी १५६
 सौस्वर्यमिच्छन्मनसश्च धैर्यं मेधां तथेच्छन्द्रिगुणं च कालम् ।
 पटेन्नरः श्लोकसहस्रमद्वा तद्भस्मयुक्तं त्रिगुणं च कालम् ॥१५७॥
 सारस्वतमिदं चूणं ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ।
 जगद्धिताय लोकानां दुर्मेधसां विचेतसाश्च ॥१५८॥

अचोरोगे यवानिकायं चूर्णम् ।

यवान्यतिविषा कुष्ठं वचा हिङ्गु हरीतकी ।
 कचृणं रोहिधं मुस्तं रास्ना विबुधदारु च ॥१५९॥
 पिप्पलयः गृह्णवेरं च मरिचं चव्यचित्रकौ ।

मातुलुङ्गस्य मूलानि पालाशं मूलमेव च ॥१६०॥

त्रिफलाशटिसूक्ष्मैलाः पौष्करं त्वग्धरीतकी ।

अजाजी चेति तच्चूर्णं पिबेदुष्णोदकासवैः ॥१६१॥

एतदशौविबन्धानां प्रयोगादमृतोपमम् ।

श्वासकासे विभीतकाद्यं चूर्णम् ।

विभीतकं विषा चैव भद्रमुस्ता च पिप्पली ।

भार्गी च शृङ्गवेरं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥१६२॥

तानि चूर्णानि मधेन पीतान्युष्णोदकेन वा ।

नाशयन्ति वृणां क्षिप्रं श्वासकासापतत्रकान् ॥१६३॥

हिकाकासे रेणुकाद्यं चूर्णम् ।

हरेणुश्वोरकं मुस्तं सूक्ष्मैलाशटिनागरम् ।

त्वगेला पुष्करं शृङ्गी हीबेरागरुकेसरम् ॥१६४॥

यवान्यामलकी भार्गी पिप्पली सुरसा तथा ।

सिताचतुर्गुणं चूर्णं तत्पीतं लीढमेव वा ॥१६५॥

अन्नपानप्रयुक्तं वा भक्षितं वापि केवलम् ।

कासहिक्काज्वरश्वासपार्श्वशूलं च नाशयेत् ॥१६६॥

हिकाश्वासे सुरसाद्यं चूर्णम् ।

सुरसा चोरकं शृङ्गी सूक्ष्मैला पुष्करं शटी ।

पिप्पलीत्वग्बिबक्षारशुण्ठीहिङ्गुम्लवेतसम् ॥१६७॥

भार्गी तामलकी जीवा वृक्षाम्लश्चेति चूर्णितम् ।

हिकाश्वासविबन्वासःकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥१६८॥

तमकश्वासे शट्याद्यं चूर्णम् ।

शटीचोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तापुष्कराह्वयम् ।

सुरसातामलक्येलापिप्पल्यगरुनागरम् ॥१६९॥

वालकं च समं चूर्णं कृत्वाऽष्टगुणशर्करम् ।

सर्वथा तमके श्वासे हिक्कायां च प्रयोजयेत् ॥१७०॥

दन्तरोगे तिक्तकं चूर्णम् ।

मुस्तं त्रिकटुकं पाठां त्वग्बीजं वत्सकस्य च ।

पटोलकटुके निम्बं हरिद्रां धन्वयासकम् ॥१७१॥
जातीप्रवालभूनिम्बौ मधुकं सरसाञ्जनम् ।
त्रायमाणां गुड्डीं च त्रिफलां चेति चूर्णयेत् ॥१७२॥
चूर्णोऽयं तिक्तको नाम कवलः प्रतिसारणः ।
दन्तमूलास्यकण्ठस्थान्त्रोगानाशु व्यपोहति ॥१७३॥

दन्तरोगे पीतकं चूर्णम् ।

दावीपटोलयष्ट्याहप्रियङ्गुतिविषा घनम् ।
त्रायन्ती नागपुष्पं च भूनिम्बस्तिक्तरोहिणी ॥१७४॥
दाडिमत्वग्बिभीतं च हरितालं मनःशिला ।
समांशानि त्रिभागांशं सशैलेयं रसाञ्जनम् ॥१७५॥
पीतकं चूर्णमेतद्भि मध्वक्तं प्रतिसारणम् ।
दन्तमूलगलास्योष्ठजिह्वातालुविकारिणाम् ॥१७६॥

गलरोगे कालकं चूर्णम् ।

गृहधूमं यवक्षारं पाठां व्योषं रसाञ्जनम् ।
तेजोदां त्रिफलां रोध्रं चित्रकं चेति चूर्णयेत् ॥१७७॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम चूर्णं तु दन्तास्यगलरोगनुत् ॥१७८॥

मुखरोगे द्वितीयं पीतकं चूर्णम् ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दावीं त्वक्केति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥१७९॥
मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम चूर्णकम् ॥१८०॥

कासे जीवन्त्याद्यं चूर्णम् ।

जीवन्ती मधुकं पाठा त्वक्क्षीरी त्रिफला शटी ।
मुस्तैलापन्नकं द्राक्षा द्वे बृहत्यौ वितुम्बकम् ॥१८१॥
सारिवा पौष्करं मूलं कर्कटाख्या रसाञ्जनम् ।
पुनर्नवा लोहरजस्त्रायमाणा यवानिका ॥१८२॥

भार्गी ताम्रलकी वृद्धिविडङ्गं धन्वयासकम् ।
 क्षारचित्रकचव्याम्लथैतसव्योपदारु च ॥१८३॥
 चूर्णीकृत्य सर्वांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा ।
 चूर्णं पाणितलं कुर्या पञ्चकाशान्वयपोहति ॥१८४॥

अतिशारे भूनिम्बार्थं चूर्णम् ।

भूनिम्बकटुकान्योपमुस्तकेन्द्रयवान् सवान् ।
 द्रौ चित्रकात्कलिङ्गत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ॥१८५॥
 चूर्णं मस्तरम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मजित् ।
 कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारजित् ॥१८६॥

ग्रहण्यां पाठाद्यं चूर्णम् ।

पाठाप्रतिविषामुस्तव्योपभूनिम्बवत्सकाः ।
 तिकाचित्रकदुस्पर्शास्तुल्यैस्तैः कुटजः समः ॥१८७॥
 गुडशीताम्बुना पीतो ग्रहणीहाऽश्लिकारकः ।
 ग्रहण्यां नागरार्थं चूर्णम् ।

नागरातिविषामुस्तं भूनिम्बं सरसाञ्जनम् ।
 वत्सकत्वक्फले विल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥१८८॥
 पित्रेत्सर्पांशकं चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
 पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्ते यश्चोपवेश्यते ॥१८९॥

राजयक्ष्मणि सितोपलाद्यं चूर्णम् ।

सितोपलां त्वक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम् ॥१९०॥
 अन्त्यार्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ।
 चूर्णकं प्राशयेच्चैतच्छ्वासासकासकफातुरम् ॥ १९१ ॥
 सुप्तजिह्वारोचकिनं मन्दाग्निं पार्श्वशूलिनम् ।
 हस्तपादांशदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १९२ ॥

ओनिदोषे पुष्यातुगं चूर्णम् ।

पाठा जम्बवाभ्रयोर्मज्जा शिलोद्भेदो रसाञ्जनम् ।
 अम्बुष्टा मोचनिर्यासः समञ्जा पञ्चकेशरम् ॥१९३॥

वाह्निकातिविषे विल्वं रोध्रो मुस्तं सगैरिकम् ।
 कद्वकलं सरिचं शुण्ठी मृत्तीका रक्तचन्दनम् ॥ १९४ ॥
 कद्वह्वत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम् ।
 पुष्पेणोद्धृत्य तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १९५ ॥
 तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाण्डुना ।
 अर्शःतु चातिसारेषु रक्तं यथोपवेश्यते ॥ १९६ ॥
 दोषा दन्तकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।
 योनिदोषं रजोदोषं जलं श्वेतं समाण्डुरम् ॥ १९७ ॥
 स्त्रीणां व्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्तयेत् ।
 चूर्णं पुष्पालुगं नाम हितमात्रेयभूजितम् ॥ १९८ ॥
 पाण्डुरोगे योगराजं चूर्णम् ।

त्रिकलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकदुकस्य च ।
 भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ १९९ ॥
 मुस्ताकम्पिडुयोर्भागो देयश्चापि पृथक् पृथक् ।
 पञ्चाश्वजतुनां भागास्तथा रूप्यमलस्य च ॥ २०० ॥
 मासिकस्य तु शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा ।
 अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ २०१ ॥
 मासिकेणाप्लुतं स्थाप्यवायसे भाजने शुभे ।
 उदुम्बरसर्वां सर्वां ततः स्वादेद्यथाग्नि ना ॥ २०२ ॥
 दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम्
 वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकवाचीं कपोतकान् ॥ २०३ ॥
 योगराजोऽयमारुयातो योगोऽयममृतोपमः ।
 रसायनभिर्दं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ २०४ ॥
 पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषपञ्जरम् ।
 कुष्ठान्यजरकं मेहान् श्वासं हिकामरोचकम् ।
 विशेषाद्दन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ २०५ ॥

कुष्ठे त्रिफलाद्यं चूर्णम् ।

त्रिफलातिविषाकटुकानिम्बकलिङ्गवचापटोलानाम् ।
मागधिकारजनीद्वयपन्नकभार्गीमूर्वाविशालानाम् ॥२०६॥

भूनिम्बपलाशानां दद्याद्विपलं त्रिष्टुत्रिगुणा ।

तैश्च समाना ब्राह्मी तच्चूर्णं सुप्तिनुत् परमम् ॥ २०७ ॥

मन्दासौ व्योषद्यं चूर्णम् ।

सव्योषं क्रिमिजित्सपञ्जलवर्णं साजाजिकं साभयं

सक्षारं सद्गुताशनं सचविकं सग्रन्थिकं सत्रिवृत् ।

एतच्चूर्णमुद्बधिता प्रपिबतामुष्णेन वा वारिणा

वद्विष्टद्विमुपैति सर्वगदजिद्वानिष्णुतामावहेत् ॥ २०८ ॥

पाण्डुरोगे खण्डसमक चूर्णम् ।

त्रिफलाव्योषविल्वाब्दपिप्पलीमूलचित्रकैः

त्वगेलापत्रचविकातिन्निण्डीकाम्लवेतसैः ॥ २०९ ॥

समांशैर्धातुमाक्षीकं सर्वैस्तुल्यं प्रदापयेत् ।

लोहचूर्णं समं तैश्च सर्वैः खण्डं समांशकम् ॥ २१० ॥

चूर्णितं मधुना लेखं वटकान् वा समाक्षिकान् ।

भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २११ ॥

नाशयेत्कुष्ठमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ।

पाण्डुरोगं तथा कासं हलीमकशिरोरुजम् ॥ २१२ ॥

प्रसेकमरुचिं मूर्च्छां हृष्टासं मन्दवद्विताम् ।

रक्तपित्तं परीसर्पं श्वथुं च नियच्छति ॥ २१३ ॥

शोफ पाठाद्यं चूर्णम् ।

पाठा सकृष्णा गजपिप्पली च निदग्धिका नागरचित्रकौ च ।

सपिप्पलीमूलमजाजिरात्रिमुस्तं च चूर्णं सुखतोयपीतम् ।

हन्यान्निदोषं चिरजं च शोफं कुष्ठं च चूर्णस्य हि सुप्रयोगात् २१४

कुष्ठे वाकुकिकाद्यं चूर्णम् ।

वाकुची त्रिफला वद्विर्भल्लातश्च शतावरी ।

सिन्दुवारोऽश्वगन्धा च निम्बः पञ्चाङ्गसंयुतः ॥२१५॥

मासैकं भक्षितं हन्ति चूर्णमेषां सभांशकम् ।
सर्वकुष्ठानि वातांश्च रोगिणां नात्र संशयः ॥ २१६ ॥

कुष्ठे पृथुनिम्बान्धकं चूर्णम् ।

काले त्वक्छदसारबीजकुसुमैर्निम्बस्य तुल्यांशकैः
कृत्वा चूर्णमदः कटुत्रिकनिःशान्धाद्यक्षपथ्यायुतैः ।
पञ्चारिष्टमिदं पथोमधुतैरुष्णाम्बुना वा पुमान्
पीत्वा कासगरममेहपिटिकाकुष्ठादिभिर्मुच्यते ॥ २१७ ॥

कुष्ठे बृहत्तन्निम्बकं चूर्णम् ।

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाऽभिततेजसा ।
प्रोक्तं यन्मवनादिभिरुपयुक्तं महर्षिभिः ॥ २१८ ॥
पुष्पकाले तु निम्बस्य कुसुमानि समाहरेत् ।
फलकाले फलं चैव मूलं पत्रं त्वचं तथा ॥ २१९ ॥
चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशक्रजौ ।
भल्लातको हरीतक्यः शुण्ठी चामलकैः सह ॥ २२० ॥
श्वदंष्ट्रा लोहचूर्णं च भृङ्गस्वरसभावितम् ।
अरिष्टखदिराभ्यां च भावयेत्पञ्चनिम्बकम् ॥ २२१ ॥
भावयित्वा पुनः पिष्टमेकस्थाने च कारयेत् ।
ततः कर्पमितां मात्रां सर्पिषा माक्षिकेण वा ॥ २२२ ॥
सुखाम्बुना वा तत्पीतं तत्क्षणादेव जीर्यति ।
हन्यात्कुष्ठानि सर्वाणि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ २२३ ॥
अर्शांसि वातगुल्मं च खालित्यं पलितानि च ।
वातरक्तं विशेषेण श्वित्रं कुष्ठं तथैवं च ॥ २२४ ॥
कुष्ठनाशनमेतद्धि ब्रह्मणा गदितं पुरा ।
वातातपसहो ह्येष न चात्र नियमः क्वचित् ॥ २२५ ॥
ग्राम्यधर्मं च कुर्वाणो भोजनं च यथेप्सितम् ।
मासमात्रोपयोगेन जीवेद्दर्पशतं पुमान् ॥ २२६ ॥

सर्वकाममसक्तोऽपि सर्वरोगैः शमुच्यते ।

षष्मासमुपयोगेन सर्पैरपि न दृश्यते ॥ २२७ ॥

वर्षमात्रोपयोगेन जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।

नास्मात्परवयस्त्यन्यत्कुष्ठरोगस्य भेषजम् ॥ २२८ ॥

साध्यानि यानि कुष्ठानि तान्येवःसुं शकुर्वतः ।

निवर्तन्ते यथा कुष्ठे सौपर्णे पवनाग्निः ॥ २२९ ॥

मन्दाग्नौ लवणभास्करं चूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ।

सैन्धवं च विडं चैव पत्रं तालीसकेसरम् ॥ २३० ॥

एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च ।

सारिवाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २३१ ॥

त्वगेले चार्धभागे च सामुद्रात्कुडवद्भयम् ।

दाडिमात्कुडवं चैकं द्वे पले चान्त्रवेतसात् ॥ २३२ ॥

एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् ।

लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ २३३ ॥

जगतोऽस्य हितार्थाय वातश्लेष्माभयापहम् ।

तक्रमस्तुमुराशुक्तसीधुकाञ्जिकयोजितम् ॥ २३४ ॥

जाङ्गलानूपमांसेषु भक्ष्येषु विविधेषु च ।

मन्दाग्नीनां खादयतां शक्तो भवति पावकः ॥ २३५ ॥

अर्शासि ग्रहणीदोषशोषकुष्ठभगन्दरान् ॥

हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरस्थितान् ॥ २३६ ॥

प्लीहानं वातगुल्मं च श्वासकासोदरक्षयान् ।

शूलं च नाशयत्येतत्कुष्ठो नृप इवापदः ॥ २३७ ॥

परिणामशूलं सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रामठं विडम् ।

दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥ २३८ ॥

दधिगोमूत्रतोयैश्च मन्दपावकपाचितम् ।
 तं यथाग्निबलं चूर्णं किञ्चिदुष्णेन वारिणा ॥ २३९ ॥
 जीर्णे जीर्णे तु शुद्धीत मांसादिस्निग्धभोजनम् ।
 नाभिभूलसुरःशूठं गुल्मघ्नीहभवं च यत् ।
 परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम् ॥ २४० ॥
 तुम्बवार्यं चूर्णम् ।

चूर्णं तदेतदिति तुम्बुरुपुष्कराह-
 पथ्याम्लवेतसविडं रुचकं सहिङ्गु ।

सिन्धूद्रवेन सहितं यववारिपीतं
 शूलापतन्त्रकविकारहरं यदुक्तम् ॥ २४१ ॥
 शूले हिङ्गवष्टकं चूर्णम् ।

व्योषाजमोदयुतजीरकयुग्मासिन्धु-
 चूर्णं सरामठविभागमिति प्रयुक्तम् ।

हिङ्गवष्टकं हरति हृज्जठरान्तराल-
 शूलानि गुल्मगुदजग्रहणीविकारान् ॥ २४२ ॥
 अरोचके द्वितीयं हिङ्गवष्टकं चूर्णम् ।

त्रिकडुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
 समधरणघृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।

प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
 ज्जनयति जठरान्निं वातशूलं निहन्ति ॥ २४३ ॥
 मन्दास्रो रामठार्यं चूर्णम् ।

रामठं रुचकं बद्धिर्वचाजीरकनागरम् ।
 विडङ्गश्चित्रकः कुष्ठं कणाभरिचवेतसम् ॥ २४४ ॥
 दीप्यकश्चेति सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।
 चूर्णमुष्णाभ्युना पीतं बद्धिवृद्धिकरं परम् ॥ २४५ ॥
 सर्वाङ्गशूले चित्रकाद्यं चूर्णम् ।

चित्रकः पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ।
 हिङ्गु पुष्करमूलं च दाडिभं कृष्णजीरकम् ॥ २४६ ॥

विडङ्गहृषाधान्यशताह्वाहिङ्गुपत्रिकाः ।

चव्याम्लेवतसाजाजीवस्तगन्धाशटीवचाः ॥ २४७ ॥

तुम्बुश्वाजमोदा च यवानी रुचकं तथा ।

समभागानि सर्वाणि सर्वैस्तुल्यं तु नागरम् ॥ २४८ ॥

सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा मातुलुङ्गेन भावयेत् ।

ततः कषमितां मात्रां पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २४९ ॥

मध्येन मस्तुना वापि यूषेणापि रसेन वा ।

जयेत्सर्वाङ्गं शूलं कोष्ठगं कुङ्किं तथा ॥ २५० ॥

अर्शोजठरगुल्मघ्नं दीपनीयं विशेषतः ।

चित्रकाद्यमिदं चूर्णमामवातहरं परम् ॥ २५१ ॥

मन्दाग्नौ सैन्धवाद्यं चूर्णम् ।

सिन्धुसौवर्चलव्योषपथ्याजीरकचित्रकैः ।

विडङ्गावशूकाहपाक्यग्रन्थिकरोमकैः ॥ २५२ ॥

त्रिवृच्चव्ययुतैश्चूर्णं तत्रेणाम्लाम्बुना पिबेत् ।

कल्पितं वह्निदास्यर्थं प्रातरुत्थाय मानवः ॥ २५३ ॥

वातव्याधौ सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानां क्षारो यवानामजमोदभागः ।

हरीतकीपिप्पलीशृङ्गवेरं हिङ्गुविडङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ २५४ ॥

एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पिण्डान् प्रथमं तु पञ्च ।

अजीर्णवातं ग्रहगुल्मवातं वातप्रमेहं विषमं च वातम् ।

सकामले पाण्डुविसृचिके च श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम् २५५

नारासिंहं चूर्णम् ।

प्रस्थं शतावरीचूर्णं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।

वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिम् ॥ २५६ ॥

प्रस्थद्वयं तु भल्लातास्त्रिकस्य दशैव तु ।

तिलानां लुञ्चितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ २५७ ॥

श्रूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः ।
 माक्षिकं शर्करार्धेन तदर्धेन च वै घृतम् ॥ २५८ ॥
 शतावरीसमं देयं विदारीकन्दचूर्णकम् ।
 एतानि सूक्ष्मचूर्णानि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २५९ ॥
 पलार्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चात्र भोजनम् ।
 एष मासोपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ २६० ॥
 वलीपालितखालित्यङ्गीहव्यार्धीश्च पीनसान् ।
 भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं च भिनत्स्यपि ॥ २६१ ॥
 अष्टादशैव कुष्ठानि तथाऽष्टाबुदराणि च ।
 प्रमेहं च महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥ २६२ ॥
 अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
 विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान् साभिपातिकान् ।
 एताः सर्वा रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २६३ ॥

सकाञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गवेगो जलदौघनिःस्वनः ।
 स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरम्यः मुरुपवान् सच्चवतां वरिष्ठः २६४
 पुत्रान् संजनयेद्धीमान्नरसिंहनिभांस्तथा ।
 नारसिंहेति विख्यातश्चूर्णो रोगगणापहः ॥ २६५ ॥

अतिसारे गङ्गाधरं चूर्णम् ।

अरलुकमनशुण्ठीधातकीविल्वरोध्रं
 कुटजफलसमेतं मोचनिर्यासयुक्तम् ।

अतिविपजलपाठाः साहकारं च बीजं

ममृणमधुविमिश्रं तण्डुलाम्बुमपीतम् ॥ २६६ ॥

कफोद्भवं मारुतपित्तसंभवं जयेदतीसाररयं तथाऽऽमजम् ।
 मृष्टद्वग्गाधरनाम चूर्णकं तथा हि दोषं ग्रहणीभवं च ॥ २६७ ॥

गुल्मे कटुत्रिकाद्यं चूर्णम् ।

कटुत्रिकं तिक्तकरोहिणी घनं किराततिक्तोऽथ शनक्रतोर्यथाः ।
 ससप्तपर्णातिविषादुरालभाः पटोलमूलं सह त्रायमाणया ॥ २६८

विडङ्गचव्यं सगुडुचि निम्बकं प्रियङ्गुनीलोत्पलरोध्रमञ्जनम् ।
 सधातक्रीमोचरसं फलत्रिकं तथा नवं बिल्वकपित्थसारिवम् ।
 समाः स्युरेते द्विगुणं तु चित्रकं द्विरष्टभागं कुटजाच्चवं ततः ॥
 सुसूक्ष्मपिष्टं शिशिराम्बुयोजितं पिवन्मनुष्योऽर्धपलं गुडान्वितम् ॥
 बुभुक्षिते स्यान्मृदु भोजनं हिमं निहन्ति गुल्यान्कफपित्तसंभवान् ॥
 ज्वरातिसारग्रहणीगदारुचीः प्रमेहमूत्रक्षयवर्धविद्रधीन् ॥ २७० ॥
 अजीर्णपाण्डुक्षतकासशोफान् सदा प्रयुक्तः सगुडः कटुत्रिकः ।

स्थौल्ये व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषकट्टीवराणिग्रुविडङ्गातिविषास्थिराः ।
 हिङ्गुसौवर्जलाजाजीयवानीधान्यचित्रकाः ॥ २७१ ॥
 बृहत्यौ हपुषा पाठा निशे मूलं च केवुकात् ।
 एषां चूर्णं समध्वाज्यं तैलं चापि दशांशकम् ॥ २७२ ॥
 कलाभागैस्तु सक्तूनां युक्तं पीतं निहन्ति तत् ।
 नृणां स्थौल्यदिकान्दोषान् कफमेदोभवांस्तथा ॥ २७३ ॥
 हृद्रोगकामलाश्वित्रश्वासकासगलग्रहान् ।
 करोति बुद्धिं मेधां च सन्नस्याग्रेश्च दीपनम् ॥ २७४ ॥
 अतिस्थौल्यादिकान् दोषान् रोगानन्यांश्च तद्विधान् ।

वातकासे विडङ्गाद्यं चूर्णम् ।

विडङ्गं नागरं रास्त्रा पिप्पली हिङ्गु सैन्धवम् ।
 भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिबोद्धे घृतमात्रया ॥ २७५ ॥
 सकलेऽनिलजे कामे श्वासे हिध्मानिलार्तिषु ।

गुल्मे वचाद्यं चूर्णम् ।

वचा वत्सकबीजं च कुष्ठं चित्रकमेव च ॥ २७६ ॥
 पिप्पली शृङ्गवेरं च पाठा कटुकरोहिणी ।
 यवानी च पटोलं च सैन्धवातिदिषे तथा ॥ २७७ ॥
 हपुषा चाजगन्धा च शटी पौष्करमेव च ।
 एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २७८ ॥

तत्र कर्षसमां मात्रां पिवेदुष्णेन वारिणा ।

गुल्मान् पञ्च च हृद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् २७९

पाण्डुरोगे किराततिक्तकार्यं चूर्णम् ।

किराततिक्तं सुरदारु दावीं मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम् ।

दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं फलत्रिकं वह्निकदुद्रिकं च ॥२८०॥

विडङ्गसारं च समांशकानि हयोरजोऽर्धेन विचूर्णितानि ।

ईषद्वृताक्तं मधुनाऽवलीढमर्शासि शोषं ग्रहणीदोषम् ।

कुष्ठानि कृच्छ्राणि हलीमकं च ज्वरांश्च घोरानथ पाण्डुरोगान् ॥

आमोद्भवान् वातसमुत्थितांश्च पित्तोद्भवांश्छेप्पसमुद्भवांश्च ।

दुष्टप्रणान्वै कफविद्रधींश्च श्वित्राणि हन्याच्छतशः प्रयोगः २८२

कुष्ठारो खण्डसमं चूर्णम् ।

त्रिफलाव्योषविल्वाब्दपिप्पलीमूलचित्रकैः ।

चविकात्वचपत्रैलातिन्तिडीकाम्लवेतसैः ॥ २८३ ॥

समांशं धातुमाक्षीकं सर्वैस्तुल्या सिता भवेत् ।

भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २८४ ॥

चूर्णितं मधुना लेहं वटकान् वा समाक्षिकान् ।

नाशयेत्कुष्ठमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ॥ २८५ ॥

पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं हलीमकशिरोरुजम् ।

मसेकमरुचिं मूच्छीं हृष्टासं मन्दवहिताम् ॥ २८६ ॥

रक्तपित्तं परीसर्पं श्वयथुं चाङ्गतापकम् ।

जनयेत्पाणमुत्साहं बलवर्णस्थिराङ्गताम् ॥ २८७ ॥

चूर्णं खण्डसमं नाम समस्तान्नाशयेद्भवान् ।

कुष्ठे बाकुच्यायं चूर्णम् ।

पलानि संगृह्य दशेन्दुराज्या फलत्रयस्यापि समानमेतत् ।

विडङ्गसारस्य पलानि सप्त शिलोद्भवाऽर्धे च पुरस्य चैकम् ॥२८८

शतं च भल्लातकसत्फलानां पलं तथा पुष्करमूलनाम्नः ।

पलत्रयं लोहभवं सुचूर्णं त्रुटिः पलार्धं ह्यथ कर्षभागान् ॥२८९॥

सपत्रकृष्णाघनयष्टिकानां सचित्रकग्रन्थिककेशराणाञ्च ।
 न्यग्रोधमूलोषणकुङ्कुमानामेकत्र संचूर्ण्य सधृतु खण्डम् ॥२९०॥
 खादेद्यथाग्निं प्रयतस्तु मात्रां कुष्ठान्यशेषाण्यपयान्ति नाशम् ।
 अर्शोविकाराः पडपि प्रवृद्धाः वित्राणि भित्राण्युदराणि चाष्टौ॥
 क्षयाश्च कृच्छ्रः खलु पाण्डुरोगः कण्ठासया विंशतिरेव मेहाः ।
 उन्मादरोगज्वरनेत्ररोगा नासोद्भवा पञ्चविधाश्च गुल्माः ॥२९२
 वातमशीतिविकारं चत्वारिंशत्प्रभेदजं पित्तम् ।

श्लेष्माणं विंशतिकं विनाशयत्यति च दुष्टमपि ॥ २९३ ॥

भवति रुधिरदोषिगौरवर्णो मनुष्यः

समधिकशतवर्षं जीवतीह प्रगल्भम् ।

विघटितयनरोगो मासमात्रप्रयोगा-

द्युवतिनयनहारी हृष्टपुष्टो वृषश्च ॥ २९४ ॥

उदरे भस्माकंचूर्णम् ।

युगर्तुसंख्यानि दलानि भानोश्चत्वारि काण्डानि सुधाद्रुमस्य ।
 सुरेन्द्रवह्न्या दश सत्फलानि पञ्चैव पत्राणि कुमारिकायाः २९५
 चत्वारि वृन्ताकतरोः फलानि व्याघ्रीचतुःपष्टिफलानि युक्त्या ।
 पञ्चाङ्गमेकं हरिपर्णकन्दं सिद्धार्थतैलं च पलप्रमाणम् ॥२९६॥
 यवाहसौवर्चलयोः पलं स्यात् धूर्तस्य वार्धश्च फलं पलं हि ।
 पलानि पञ्चैव शिवाह्वयस्य गोकण्टकं चाऽपि वदन्ति वैद्याः २९७
 गुरुपदेशादधिगम्य सम्यग्भाण्डे स्वबुद्ध्याऽर्कदलानि मुक्त्वा ।
 सर्वाणि चान्यानि महौषधानि सिद्धार्थतैलेन विभिञ्चितानि २९८
 प्रक्षिप्य संरुद्ध्य मुखं तदीयं मृत्कर्पटं सन्धिषु वेष्टनीयम् ।
 गम्भीरगते कुहरे निवेश्य प्रच्छादनीयं छगणैः प्रभूतैः ॥ २९९
 उत्तार्य यत्नेन सुशीतलं तं क्षारं चतुर्भिः प्रहरैः सुसिद्धम् ।
 सूक्ष्मीकृतं जीरककर्षपट्टं मध्ये क्षिपेदर्धपलं क्षवस्य ॥ ३०० ॥
 तदाह्वयवाते ह्यथ पाण्डुरोगे भगन्दराजीर्णविस्त्रुविकासु ।
 आनाह्वयन्धे प्रहणीविकारे पाषाणिकाविद्रधिभूत्रकृच्छ्रे ॥३०१॥

तन्नेण कर्षार्धमिदं प्रदेयं भस्मार्कचूर्णं दाधिमस्तुना वा ।
 श्वासे सक्रासे हृदयोपरोधे कण्ठग्रहे जीर्णगुडेन देयम् ॥ ३०२
 तैलेन शूले मधुनोदरेषु गुल्मप्रकोपे फलपूरकेण ।
 सौवीरकेणाय सदा प्रयोज्यमुष्णेन सर्वत्र जलेन देयम् ॥ ३०३
 यथा मृगेन्द्रो द्विपदर्पहन्ता वज्रं यथा भूधरमध्यभेदि ।
 अयं तथा योगवरो जनानां निहन्ति दुष्टानपि रोगसंघान् ३०४
 योगप्रदीपो मुनिभिः पुराणैर्निवेदितो मूलमसौ हितानाम् ।
 अनेन भीमादापि गाढवर्द्धिर्नरो भवेत्पथ्यहितोपचारैः ॥ ३०५ ॥

अर्शासि पूतीकरजाद्यं चूर्णम् ।

पूतीकरञ्जसूरणसुरताडकरञ्जसिन्धुजातानाम् ।
 पथ्यामुसलीशीतककुब्जाग्नीनां च तुल्यांशम् ॥ ३०६ ॥
 चूर्णं तन्नेणैव पिवतस्तेनैव चाश्रतो भुक्तम् ।
 पक्कफलानीव तरोरर्शासि पतन्ति मासेन ॥ ३०७ ॥

गुन्मे यवक्षाराद्यं चूर्णम् ।

यवक्षारं यवानी च पिवेदुष्णेन वारिणा ।
 एतेन वातजं शूलं गुल्मश्चैव चिरोत्थितः ॥ ३०८ ॥
 भिद्यते सप्तरात्रेण पवनेन यथा घनः ।
 जीर्णं रसैस्तु भुञ्जीत शाशलावकतैत्तिरैः ३०९ ॥

ज्वरातिसारे व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषं वत्सकवीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
 चित्रकं रोहिणी पाठा दार्वी चातिविषा सषाः ॥ ३१० ॥
 सूक्ष्मचूर्णाकृताः सर्वास्तुचुल्या वत्सकत्वचः ।
 सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ३११ ॥
 सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ।
 अरविं हन्ति तृष्णां च ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३१२ ॥
 कामलां ग्रहणीदोषान् गुल्मं प्लीहानमेव च ।
 प्रमेहं पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ३१३ ॥

शोफे कृष्णाद्यं चूर्णम् ।

कृष्णाशिविश्वयनजीरककण्टकारी-

पाटानिशाकरिकणामगधाजटानाम् ।

चूर्णं कयोष्णसलिलैरवलोक्य पीतं

नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ ३१४ ॥

इवासहस्रोगघोहिङ्गुष्वकं चूर्णम् ।

हिङ्गुसौवर्चलं विश्वं दाडिभं साम्लवेतसम् ।

हन्ति श्वासं च हृद्रोगमिदं स्याद्विङ्गुष्वकम् ॥ ३१५ ॥

शापे तिक्त्याद्यं चूर्णम् ।

तिलककन्दुलाजानां चूर्णं मध्वाज्यलेहिनः ।

क्षीराजुपानं मासेन शोषघ्नं नास्त्यतः परम् ॥ ३१६ ॥

वर्ध्मरोगे बिल्वमूलाद्यं चूर्णम् ।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेवृहत्योर्द्वयोः

श्यामातिल्वकरञ्जिशुक्रतरोर्विधौपधारुष्करम् ।

कृष्णाग्रन्थिकवेलेपञ्जलवणक्षाराजमोदान्वितं

पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णोक्तं वर्ध्मजित् ३१७

सर्वमेहेऽप्यन्ध्रवाद्यं चूर्णम् ।

इन्द्रयवतीक्ष्णवीजासौवर्चलयावशूककर्षीशम् ।

मूर्धापाठाशुण्ठीद्विचतुरष्टांशकैर्भागैः ॥ ३१८ ॥

हिङ्गुवर्धकर्षयुक्तं पेयामण्डेन दध्ना वा ।

नाशयति सर्वमेहानशीसि च दपयत्यग्निम् ॥ ३१९ ॥

शले शर्कराद्यं चूर्णम् ।

मरिचं शर्कराहिङ्गुसूक्ष्मचूर्णोक्तं पिवेत् ।

सुखोदकेन तद्द्रव्याशुशूलघ्नममृतोपमम् ॥ ३२० ॥

आनाहे द्विरुत्तरं हिङ्गुवाद्यं चूर्णम् ।

द्विरुत्तरं हिङ्गुवचाग्रिकुष्ठं सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् ।

सुखान्धुनाऽऽनाह्निसूचिकादिहृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ३२१

पानीयच्छायायां मुस्ताद्यं चूर्णम् ।

मुस्ताजमोदबृहतीद्वयवाजिगन्धा-

द्विजीरकं दहनभृङ्गविडङ्गरास्ताः ।

भूनिम्बनिम्बभववल्कलराजवृक्ष-

सौवर्चलं त्रिकटुकं त्रिफला सभाग्गी ॥३२२॥

पुधाकराख्यो जरणः सकुष्ठस्तथाऽपरो मालवदेशजातः ।

नेर्गुण्डिका सैन्धवमेथिके च मरीचमुण्डीमुशलीगुडूच्यः ॥३२३॥

वातव्याधिं विमूर्च्छीं च छायामपरदेशजाम् ।

निहन्ति सेवितं चूर्णमेतेषां पथ्यभोजिना ॥ ३२४ ॥

मन्दासौ शतपुष्पाद्यं चूर्णम् ।

शतपुष्पा विडङ्गानि सैन्धवं मरिचं समम् ।

चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसंदीपनं परम् ॥ ३२५ ॥

गुल्मे नारायणं चूर्णम् ।

शतपुष्पावचाकुष्ठकारव्योऽजाजिधान्यकम् ।

द्रौ क्षारौ पिप्पलीमूलं यवानी कुञ्जिका शटी ॥३२६॥

स्वर्णक्षीर्यजगन्धा च विशाला चित्रकः समम् ।

बृहद्दन्ती सप्तला च देया द्वित्रिचतुर्गुणाः ॥ ३२७ ॥

नारायणमिति ख्यातं चूर्णं श्रेष्ठं विरेचने ।

गुल्मानाहविपाजीर्णश्वासकासगलग्रहान् ॥ ३२८ ॥

शोफार्शोग्रहणीदोषभगन्दरगदाञ्जयेत् ।

गुल्मे त्र्यूषणाद्यं चूर्णम् ।

त्र्यूषणत्रिफलाहिङ्गु कार्ष्णिकं त्रिवृतापलम् ॥ ३२९ ॥

सौवर्चलार्धकर्षं च पलार्धं चाम्लवेतसम् ।

तच्चूर्णं शर्करातुल्यं मद्येनाम्लेन पाययेत् ॥ ३३० ॥

गुल्मपार्श्वार्तिनुत्सिद्धं जीर्णं चास्मिन् नवौदनम् ।

मन्दासौ सैन्धवाद्यं चूर्णम् ।

पालिकं सैन्धवं शुण्ठी द्वे च सौवर्चलात्पले ॥ ३३१ ॥

कुडवांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमर्जकात् ।

एकैकं मरिचाजाज्योर्धान्यकार्धचतुर्थिका ॥ ३३२ ॥

कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।
रुच्यं तदीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित् ॥ ३३३ ॥

आमातीसारे पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ।

पिप्पली चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ।
पाठा वत्सकबीजं च हरीतक्यौ महौषधम् ॥ ३३४ ॥
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् ।
कफात्मकं सपित्तं च पुरीषं चाशु रोधयेत् ॥ ३३५ ॥

पीनसे चव्याद्यं चूर्णम् ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीक-
तालीसजीरकरुजादहनैः समांशैः ।

चूर्णं गुडमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ३३६ ॥

कासेऽजमोदादिभस्मचूर्णम् ।

अजमोदा पलद्रन्द्रं हरिद्रा च विडं तथा ।
सारस्तु खदिरस्यापि ह्यौद्भिदं लवणं तथा ॥ ३३७ ॥
अभया पौष्करं भार्गी ह्येलाटङ्कणकटुफलम् ।
वृषापामार्गयोर्मूलं क्षारयुग्मं तथैव च ॥ ३३८ ॥
प्रत्येकं पलमानानि रविपुष्पचतुष्पलम् ।
चूर्णीकृत्य ततो दद्यात्कुमारीरसभावनाम् ॥ ३३९ ॥
सान्तधूमं घटे दग्ध्वा चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।
मधुना लीढमेतद्धि पञ्चकासनिवारणम् ॥ ३४० ॥

दाहरोगे द्राक्षादिचूर्णम् ।

द्राक्षालाजसितोत्पलं समधुकं खर्जूरगोपीतुगा-
हीविरामलकाब्दचन्दननतं कक्कोलजातीफलम् ॥
चातुर्जातकणं सधान्यकामिदं चूर्णं समां शर्करां
दत्त्वा शीतजलेन भक्षितमिदं पित्तं सदाहं जयेत् ॥ ३४१ ॥
मूर्च्छां छर्दिमरोचकं च प्रदरं पाण्डुं भ्रमं कामलां
यक्षमाणं समदात्ययं सतमकं तृष्णास्रपित्तं तथा ॥ ३४२ ॥

पाण्डुरोगे नवायसं चूर्णम् ।

व्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गदहनाः समाः ।
नवायोरजसो भागास्तचूर्णं मधुसर्पिषा ॥ ३४३ ॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्दोगकुष्ठार्शःशमनं परम् ।

राजयक्ष्मणि द्वितीयं वृहन्नवायसचूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ॥ ३४४ ॥
नवभागोन्मितैरैतैः समं तीक्ष्णं मृतं भवेत् ।
संचूर्णालोडयेत्क्षौद्रे नित्यं यः सेवते नरः ॥ ३४५ ॥
कासं श्वासं क्षयं मेहं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।
ज्वरं मन्दानलं शोफं संमोहं ग्रहणीं जयेत् ॥ ३४६ ॥

मन्दाम्नो शुष्क्याद्यं चूर्णम् ।

शुष्ठीं ससौवर्चलचित्रकाभयां सरामठां दाडिमसैन्धवान्विताम् ।
खादन्ति ये मन्दहृताशना भुवि भवन्ति ते वाडवतुल्यवहयः ३४७

हृद्दोगे तिक्तकं चूर्णम् ।

शुस्तैलाचन्दनोशीरं यवानि व्योषवत्सकौ ।
फलं त्वक् कटुका दारु दार्वी त्वक्पर्पटस्तथा ॥ ३४८ ॥
पटोलपत्रं षड्ग्रन्था मूर्वाभूनिम्बशिद्युकाः ।
त्रायमाणा च सौराष्ट्री मुरा प्रतिविषा समाः ।
तिक्तकं नाम हृद्गुल्मशूलघ्नं सन्निपातनुत् ॥ ३४९ ॥

कुष्ठे लाक्षाद्यं चूर्णम् ।

लाक्षा दन्ती च मूर्वा मधुररसवचाद्रीपिपाठाद्रिकर्णी-
प्रत्यक्पुष्पी विडङ्गं त्रिकटुकरजनीसप्तपर्णाटरुषम् ।
रक्ता निम्बं सुरतरु वचा पञ्चमूल्यौ च चूर्णं
पीत्वा मासं जयति पित्तशुक्लं गव्यमूत्रेण कुष्ठम् ॥ ३५० ॥

प्रहण्यां पञ्चामृतरसः ।

कर्षं रसाद्गन्धकतस्तथैव विमर्द्यं खल्वेऽभ्रकमेव तावत् ।
दद्यात्तथा ताम्रमयोरजश्च गव्येन चाज्येन विमृश्य किञ्चित् ३५१

पात्रे मन्दं वह्निना ज्वालयेत्तद्व्यान्मात्रां रक्तिकैकप्रवृद्धया ।
 यावन्मापो नाधिकं मानवेभ्यः कृत्वा बह्वेर्दीपनं हन्ति रोगान् ३५२
 पाण्डुप्लीहोन्माददुर्नामभेहान् पित्तं साम्लं सातिसारं ज्वरं च ।
 सद्यः शूलान् त्वग्रहण्यामयं च रोगांश्चैवं सूतिकाया निहन्ति ३५३
 अयं हि पञ्चामृतनामधेयो रसेन्द्रराजः क्षयरोगहारी ।
 वातास्रमुग्रं श्वयथुं च हन्यात्स्वयोगयुक्तः सकलान्विकारान् ३५४

पञ्चसमं चूर्णम् ।

पथ्यानागरजीरकाख्यरुचकैः श्यामान्वितैः पञ्चभि-
 श्रूर्णं पञ्चसमं समस्तगदहृत्कायाग्निसंदीपनम् ।
 प्राणोत्साहविवर्धनं रुचिकरं गुल्मग्रन्थीहापहं
 प्रत्याध्मानगरादिरोगशमनं सामानिले पूजितम् ॥३५५॥

छर्द्या बदराद्यं चूर्णम् ।

बदरत्रिफलानां च व्योपस्य च पलद्वयम् ।
 विधोः कर्षस्तु लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ३५६ ॥
 एलात्वक्पत्रकाणां तु पलं स्याद्रंशलोचना ।
 पलाष्टकोऽम्लवेतश्च चतुष्पल उदाहृतः ॥ ३५७ ॥
 चूर्णं द्विगुणखण्डं तु हृद्यं वभिहरं परम् ।
 यक्ष्माणं रक्तपित्तं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ३५८ ॥

उदरे नवक्षारकं चूर्णम् ।

तुवरीटङ्गणव्योपसामुद्रं सैन्धवं विडम् ।
 काचं सौवर्चलं चव्यं क्षारश्चेक्षुरकोद्भवः ॥ ३५९ ॥
 एतानि समभागानि चूर्णीकृत्य प्रयोजयेत् ।
 रक्तवाताखिप्लीहोदररोगापनुत्तये ॥ ३६० ॥

मन्दाप्रावजमोदाद्यं चूर्णम् ।

साजमोदलवणा हरीतकी गृङ्गवेरसहिता च पिप्पली ।
 मद्यतक्रश्रुतशीतवारिणा चूर्णपानमुदराभिदीपनम् ॥३६१॥

दन्तरोगे जातीपत्राद्यं चूर्णम् ।

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकोरण्टपुष्पं वचा
 शुण्ठीदीप्यकपथ्यकाः समधृतं चूर्णं मुखे धारयेत् ॥

वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धिशूलापहं
सद्यः शोफहरं च रक्तशमनं दन्तांश्च वज्रायते ॥ ३६२ ॥

कांसं जातीफलार्थं चूर्णम् ।

जातीफलं विडङ्गं च चित्रकस्तगरस्तिलाः ।

तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥ ३६३ ॥

कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिप्पली शुभा ।

एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंयुतान् ॥ ३६४ ॥

पलानि त्रीणि भृङ्गायाः शर्करा समयोजिता ।

मधुना चूर्णमेतत्तु कर्पार्थं लेहयेत्तथा ॥ ३६५ ॥

जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ।

वातश्लेष्मोद्भवांश्चान्यान् प्रतिश्यायमरोचकम् ॥ ३६६ ॥

एताः सर्वा रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

दाडिमार्यं चूर्णम् ।

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शृङ्गवेरपलत्रयम् ॥ ३६७ ॥

पलद्वयं पिप्पली च कोलचूर्णं पलद्वयम् ।

यवानी चाजमोदा च मिशिश्वैवाल्लवेतसम् ॥ ३६८ ॥

वृक्षाम्लं चविका चात्र ह्यभया च पलोन्मिता ।

सौवर्चलं च धन्याकं सूक्ष्मला त्वक्तथैव च ॥ ३६९ ॥

ग्रन्थिकं मरिचं चात्र पत्रकं सतुगाह्वयम् ।

एषामर्षपलान् भागान् सर्वैस्तुल्या सिता भवेत् ॥ ३७० ॥

एतत्प्राक् भोजनाचूर्णं दीपनं गुल्मनाशनम् ।

अर्शांसि ग्रहणीदोषमतीसारं प्रवाहिकाम् ।

पार्श्वशूलमथानाहं प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥ ३७१ ॥

मन्दाभावामलक्यादौ चूर्णम् ।

आमलकवह्निपथ्यामागधिकासैन्धवैः कृतं चूर्णम् ।

विनिहन्ति कण्ठरोगं मन्दाग्निं रक्तपित्तमपि ॥ ३७२ ॥

स्त्रीरोगे मेथिकाद्यं चूर्णम् ।

मेथिका शतपुष्पा च यवानी मधुयाष्टिका ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्ता त्रिजातं च पुनर्नवा ॥ ३७३ ॥

ऋष्यशोक्ता समङ्गा च चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
 द्राक्षापुष्करमञ्जिष्ठाः समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७४ ॥
 घृतखण्डेन पक्तव्यं काले स्त्रीणां च दापयेत् ।
 गर्भप्रदं च बन्ध्यानां स्त्रीणां बलविवर्धनम् ॥ ३७५ ॥
 शमनं रक्तवातस्य पित्तोपद्रवनाशनम् ।
 त्रिदोषे रुद्धगर्भे च परमं सुखकारकम् ॥ ३७६ ॥

कामवृद्धौ राजयोगः ।

अहिफेनं वत्सनामः केशरं चण्यचित्रकम् ।
 धतूरभृङ्गशिग्रूणां बीजानि सितजीरकम् ॥ ३७७ ॥
 अश्वगन्धाऽऽत्मगुप्ता च कलिङ्गकलवङ्गकम् ।
 आकल्लकोऽजमोदा च मुशली च शतावरी ॥ ३७८ ॥
 पिप्पली पिप्पलीमूलं चातुर्जातकसंयुतम् ।
 कटाहे मधुना पक्त्वा कुर्यात्पूगोपमा वटीः ॥ ३७९ ॥
 भोजनानन्तरं वक्त्रे गुटी धार्या घटीद्वयम् ।
 जातीपत्री विशेषेण धारणीया मुखे सदा ॥ ३८० ॥
 क्षाराम्लदधिवर्जं च कार्यं भोजनमुत्तमम् ।
 षण्ढत्वं स्वल्पवीर्यत्वं हन्याच्छीतभिवानलः ॥ ३८१ ॥
 अतिसारे प्रमेहे च मन्दाग्नौ राजयक्ष्मणि ।
 आमवाते महावाते पाण्डुरोगे शिरोगदे ॥ ३८२ ॥
 श्लिद्धिं पानीयजे रोगे सर्वाङ्गवात इष्यते ।
 ईश्वरेण च संशोक्तः कार्तिकेयाय सुन्दरः ॥ ३८३ ॥
 एष द्वात्रिंशको नाम योगराजः प्रकीर्तितः ।

क्षये आभावं चूर्णम् ।

आभा च धातुमाक्षीकं गिरिजं च त्रिजातकम् ॥ ३८४ ॥
 जीरकर्षभकौ भेदा काकोली पुण्डरीयकम् ।
 व्योषं च बालकं चैव पृथ्वी कालेयकं बिडम् ॥ ३८५ ॥
 एतानि समभागानि ह्यायसं द्विगुणं क्षिपेत् ।

शर्करा च समा देया मधुना सह लेहयेत् ३८६ ॥
 क्षयमेकादशाकारं श्वासं कासं तथैव च ।
 स्वरभेदं पार्श्वशूलं ज्वरं कम्पं च दारुणम् ॥ ३८७ ॥
 रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पीनसं च हनुग्रहम् ।
 द्विध्मां च कण्ठरोगांश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३८८ ॥

पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ।

चत्वारि पिप्पलीनां तु पञ्च सौवर्चलोद्भवाः ।
 जीरकस्य त्रयो भागाः शुण्ठ्या भागत्रयं तथा ॥ ३८९ ॥
 सप्त सप्त स्मृता भागास्तीक्ष्णदाडिमसारयोः ।
 द्वौ भागौ तिन्तिडीकस्य चत्वारश्चाम्लवेतसात् ॥ ३९० ॥
 षड्भागाः सैन्धवस्योक्तास्तथाऽर्धो हिङ्गुतः स्मृतः ।
 निस्तुषानां विडङ्गानामेको भागः प्रकीर्तितः ॥ ३९१ ॥
 तत्सर्वमेकतः कृत्वा सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
 लवणं दीपनं चेदं वातश्लेष्मविकारनुत् ।
 रुच्यमन्नेन संयुक्तं केवलं वा हितं तथा ॥ ३९२ ॥

मन्दाग्रौ रुचकाद्यं चूर्णम् ।

रुचकमरिचशुण्ठीजीरकैर्भागवृद्धै-

र्विडलवणविभागः सैन्धवं चापि सार्धम् ।

कफपवनविकारे शस्यते वातगुल्मे

जनयति जठराग्निं भोजने चेत्सतक्रम् ॥ ३९३ ॥

मन्दाग्रौ सिंहणचूर्णम् ।

अर्धं हिङ्गुपलं पलं सुविमलं सौवर्चलं द्वे पले
 प्रत्येकं मरिचाम्लदीप्यलवणाम्भोराशिजातान् क्षिपेत् ।
 शुण्ठ्याश्च त्रिपलं चतुष्पलमपि स्याद्दाडिमं जीरकं
 श्रीमत्सिंहणभूमिपालकथितं सेव्यं सदेदं बुधैः ॥ ३९४ ॥

अर्धसि सूरणाद्यं चूर्णम् ।

सूरणं दहनं क्षारो मरिचं नागरं क्रमात् ।

अर्धार्धकमिदं चूर्णं क्षाराम्लद्रवभावितात् ॥ ३९५ ॥

हन्यादशीसि शूलं च गुल्मघ्नीहोदरकृमीन् ।

शुक्रं शुक्रं पचत्याशु शान्तमग्निं च दीपयेत् ॥ ३९६ ॥

वातरोगे हरीतकीयोगः ।

धान्यकाञ्जिकयुता हरीतकी हिङ्गुसैन्धवकणासुपूरिता ।

भक्षिता भवति वातरोगहा हन्त्यजीर्णमथ च क्षुधाकरी ॥३९७

विद्रव्यो भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

भूनिम्बार्धपलं निशापलयुतं दाव्याः पले द्वे तथा

दाव्यर्धेन पुनर्नवां कुरु समां दावीसमः प्रग्रहः ।

सार्धं दुर्लभया स्मृता तु कडुका योज्या तदर्धेन वै

ह्यश्माहं निशया समानममृता पादाधिकं स्यात्पलम् ३९८

एतद्रत्सकसप्तकर्षसहितं मुश्लक्ष्णचूर्णीकृतं

वासायाः स्वरसेन भावितमिदं त्रीन् सप्त वा वासरान् ।

भूयस्तद्दुडवारिणा प्रमुदितं पेयं पुरःस्थे रवौ

द्वैतद्विद्रधिरोगिणां विजयकृत् चूर्णं तु गुह्योत्तमम् ॥ ३९९ ॥

ज्वरे किराततिक्ताद्यं चूर्णम् ।

किराततिक्तं त्रिफलापटोलं तिक्तेन्द्रवीजं सुरदारु दावी ।

व्योषं शटीचन्दनयुग्मनिम्बं दुरालभाचन्दनपञ्चकं च ॥४००॥

पुनर्नवोशीरविषागुड्डीचीत्रायन्तिकापिप्पलिमूलतुल्यम् ।

चूर्णं विलिह्यान्मधुनाऽथ वारा तथाऽनुपानं त्वमृतारसो वा ४०१

ज्वरं पुराणं विनिहन्ति शीघ्रं तृतीयकं वा वभिदाहयुक्तम् ।

चातुर्थकं चास्यगतांश्च रोगान् सपीनसं कामलमाशु हन्ति ४०२

कासे दुरालभाद्यं चूर्णम् ।

दुरालभां शटीं द्राक्षां शृङ्गवेरं सितोपलाम् ।

लिह्यात्कर्कटशृङ्गीं च कासे तैलेन वातजे ॥ ४०३ ॥

ग्रहण्यां पिप्पलीमूलाद्यं चूर्णम् ।

समूला पिप्पली क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ।

मातुलुङ्गाभयारास्त्राशटीमरिचनागरम् ॥ ४०४ ॥

चूर्णं समांशकं कृत्वा पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ।

श्लेष्मके ग्रहणीदोषे बलवर्णाशिवर्धनम् ॥ ४०५ ॥

प्रहण्यां कुटेरकाद्यं चूर्णम् ।

कुटेरकश्चामलकी यवानी फलत्रिकं चैव कटुत्रिकं च ।
 वृन्ताकगण्डीरवृषं सनिम्बं कुष्ठं तथा चेन्द्रयवा विडङ्गम् ४०६
 बीजानि दद्याच्चिचुलस्य दावीं दुरालभा तित्ककरोहिणी च ।
 दूर्वोग्रगन्धाऽतिविषा गुडूची किराततित्कं गजपिप्पली च ४०७
 सर्वाण्युपाहृत्य तु चूर्णमेषां भागांशयुक्तं लवणं द्विरंशम् ।
 अयोरजः स्यान्निगुणं च युक्तं फलत्रिकं स्याच्चतुरंशयुक्तम् ४०८
 चूर्णांकृतं तद्धृतभाजनस्थं पिवेच्च मद्येन सुखोदकेन ।
 चूर्णं यथासाध्यबलानुरूपं ग्रीहाभिसादारुचिप्राश्वशूलम् ४०९
 ममेहकुष्ठानथ पाण्डुरोगं हृद्रोगगुल्मं विषमज्वरं च ।
 भगन्दरं श्वासगदांश्च हन्यात् सुदुस्तरान् वातकफोद्भवांस्तु
 एतद्धि चूर्णं बलमांसकारि ह्योजस्करं रोगगणापहारि ॥४१०॥

शोके अयोरजश्चूर्णम् ।

कुडवं त्रिफलायास्तु पिप्पलीकुडवं तथा ।
 विडङ्गपरिचाभ्यां तु द्वे पले च समावपेत् ॥ ४११ ॥
 पलं पलं तु कुर्वीत दन्तीचित्रकयोरपि ।
 गुडूचीपिप्पलीमूलकुष्ठानां च पलं पलम् ॥ ४१२ ॥
 शृङ्गवेरपले द्वे तु पञ्च चव्यात्पलानि च ।
 शेषाण्यर्धपलानि स्युर्यानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ४१३ ॥
 गोल्लुरकः स्थिरा रास्ना मधुकं देवदारु च ।
 वचा चातिविषा चैव मुस्तकं कडुरोहिणी ॥ ४१४ ॥
 कटुफलं सारिवे द्वे च श्यामा भल्लातकानि च ।
 पुनर्नवा त्वचं पत्रं तेजस्वती शतावरी ॥ ४१५ ॥
 क्षुद्रा व्याघ्रनखं चैव मञ्जिष्ठा कूटशालमलिः ।
 निचुलं त्रिवृता भार्गी कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ४१६ ॥
 एतदौषधसंभारं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
 यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्यादयोरजः ॥ ४१७ ॥

तदेकत्र कृतं शोफी प्रलिह्यान्मधुसर्पिषा ।

क्षीरं चान्नुपिवेद्युक्त्या निरन्नः क्षीरसेवनः ॥ ४१८ ॥

अयोरजसमित्येतत्ख्यातं सिद्धं रसायनम् ।

संवत्सरप्रयोगेण शतवर्षं च जीवति ॥ ४१९ ॥

निहन्ति श्वयथुं चोग्रं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

अर्शासि पाण्डुरोगं च मन्दाग्निं कृमिकोष्ठताम् ॥ ४२० ॥

भगन्दरं च पामां च कुष्ठानि किटिभानि च ।

यस्मिन् यस्मिन् विकारे हि युज्यते त्वयसो रजः ।

तं तं निहन्ति वै रोगं देवारीन् केशवो यथा ॥ ४२१ ॥

पाण्डुरोगे किराततिकादिलौहम् ।

किराततित्तं मुरुदारु दावीं मुस्ता गुडुची कटुका पटोलम् ।

दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रिकं च ॥ ४२२ ॥

विडङ्गकं चैव समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथापि लौहम् ।

सर्पिर्मधुभ्यां गुटिका विधेयाः सेव्या सदा वै बदरप्रमाणाः ॥ ४२३ ॥

निहन्ति पाण्डुं श्वयथुं प्रमेहं हलीमकं संग्रहणीमदोषम् ।

श्वासं च कासं च सरक्तपित्तमर्शासि चोर्वोर्ग्रहमामवातम् ॥ ४२४ ॥

प्रवाहिकायां कुटजाद्यं चूर्णम् ।

कुटजत्वग्निन्द्रयवान् पाठां मुस्तं रसाञ्जनं शुण्ठीम् ।

बालं बिल्वमतिविषां कटुकं वै धातकीं समाहृत्य ॥ ४२५ ॥

मधुनाऽऽलोड्य निपीतं तण्डुलपयसा प्रवाहिकां हरति ।

अर्शासि गुदे शूलं पित्तरक्तातिसारं च ॥ ४२६ ॥

गुल्मे समशर्करं चूर्णम् ।

त्रिवृत्तुल्याऽर्धकर्षाणि हिङ्गुसौवर्चलत्वचः ।

श्रेष्ठाभ्लवेतसव्योषं सर्वैस्तुल्या तु शर्करा ॥ ४२७ ॥

समकं नाम तच्चूर्णं पिवेदुष्णेन वारिणा ।

गुल्मान् पञ्च सहद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ ४२८ ॥

शोषे तिलाद्यं चूर्णम् ।

तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्वाज्यसंयुतम् ।

मासेन हन्ति शोषं तु क्षीरं स्यादनुपानकम् ॥ ४२९ ॥

मन्दाग्नौ आमलकादिचूर्णम् ।

धात्रीभागैकसुक्तं च पथ्याभागत्रयं तथा ।

कणाभागत्रयं चैव द्वौ भागौ चित्रकस्य च ॥ ४३० ॥

भागैकं सैन्धवस्यैतच्चूर्णमामलकादिकम् ।

क्षुधाकरमिदं चूर्णं मन्दाग्निं विनिवारयेत् ॥ ४३१ ॥

मन्दाग्नौ सौवर्चलायं चूर्णम् ।

सौवर्चलं कणा शुण्ठी रामठं जीरकद्रवम् ।

मरिचं चाजमोदा च ह्यम्लवेतसमेव च ॥ ४३२ ॥

समभागमिदं चूर्णं मन्दाग्निविनिवारणम् ।

मन्दाग्नौ अग्निचूर्णम् ।

सौवर्चलं सैन्धवं च विडं क्षारः समांशकम् ॥ ४३३ ॥

द्विगुणा च कणा शुण्ठी जीरकं षड्गुणं तथा ।

अग्निचूर्णकमेतच्च वातमन्दाग्निवारणम् ॥ ४३४ ॥

मन्दाग्नौ सिंहणचूर्णम् ।

सौवर्चलं सैन्धवं च सामुद्रं मरिचं तथा ।

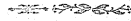
दाडिमं सारकं चाम्लवेतसं समभागकम् ॥ ४३५ ॥

नागरं त्रिगुणं चैव जीरकं च चतुर्गुणम् ।

सिंहणं चूर्णमेतच्च मन्दाग्निविनिवारणम् ॥ ४३६ ॥

इति श्रीवैद्यसोढलप्रथिते गदानिग्रहे चूर्णाधिकारस्तुतीयः ।

अथातश्चतुर्थो गुटिकाधिकारः प्रारभ्यते ।



अग्निमान्येऽभयाद्या गुटिका ।

हरीतकीनां कुडवं त्र्युषणाच्च पलत्रयम् ।
 द्वे पले पिप्पलीमूलात्तथा चैवाभ्लवेतसात् ॥ १ ॥
 चविकां चित्रकं धान्यमजार्जा हृषुषामपि ।
 यवानीं चाजमोदं च तिलिन्दीकं च दाडिमम् ॥ २ ॥
 सौवर्चलोपकुञ्चयौ च पलिकानि प्रदापयेत् ।
 त्वगेलापत्रकनकं कर्षाशं चात्र दापयेत् ॥ ३ ॥
 गुडस्थ च पलान्यत्र दापयेद्विगुणानि च ।
 अभयागुटिका ह्येषा मन्दस्याग्नेस्तु दीपिनी ॥ ४ ॥
 वातशोणितमानाहं गुल्मं पञ्चविधं तथा ।
 चतुरो ग्रहणीदोषानर्शासि षड्विधानि च ॥ ५ ॥
 कासं क्षयं विवन्धं च शूलं हृज्जठराश्रयम् ।
 भक्षिता नाशयत्येषा भोज्यं निर्यञ्चणं स्पृतम् ॥ ६ ॥

अर्शसि काङ्गायनवटकः ।

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्या जीरकस्य च ।
 पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ॥ ७ ॥
 क्रमेण पलद्वन्द्वं हि यवक्षारपलद्वयम् ।
 भल्लातकफलान्यष्टौ कन्दस्तद्विगुणो मतः ॥ ८ ॥
 द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसंमितान् ।
 एकैकं भक्षयेत्प्रातस्तत्क्रमम्लं पिबेदनु ॥ ९ ॥
 वह्निं संदीपयत्याशु ग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।
 काङ्गायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ॥ १० ॥
 कथितो वटको ह्येष गुदजानां विनाशनः ।

गुल्मे काङ्गायनगुटिका ।

शटीं पुष्करमूलं च वह्निं लवणपञ्चकम् ।
 शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ११ ॥

त्रिवृतायाः पलं कुर्यात्रीन् कर्षानथ हिङ्गुतः ।
 यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेनसात् ॥ १२ ॥
 यवान्यजाजिभरिचं धान्याकं शीतपुष्पकम् ।
 उपकुञ्जजमोदे च ह्येषामष्टमिकां तथा ॥ १३ ॥
 मातुलङ्गरसेनैता गुटिकाः कारयेद्विषम् ।
 तासापेकां पिबेद्वे वा तिस्रोऽथ च सुखाम्बुना ॥ १४ ॥
 अम्लैश्च मधैः पातव्या घृतेन पयसा तथा ।
 एषा काङ्कायनेनोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी ॥ १५ ॥
 अशोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी ।
 गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ १६ ॥
 क्षीरेण पित्तगुल्मं च मधैरम्लैश्च वातिकम् ।
 त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सान्निपातिकम् ॥ १७ ॥
 रक्तगुल्मे च नारीणासुप्रीक्षीरेण पाययेत् ।

गुल्मे निकुम्भाया गुटिका ।

निकुम्भरजनीपाठात्रिकटुत्रिफलाशिकाः ।
 बाला वृक्षकवीजं च चूर्णं स्यादनवो गुडः ॥ १८ ॥
 पथ्यया सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ।
 घनीभूते बटीं कृत्वा तां तु स्वादेदभुक्तवान् ॥ १९ ॥
 गुल्मक्षीहाग्निसादांस्ता नाशयेयुरशेषतः ।
 हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगं च दारुणम् ॥ २० ॥

विद्वन्वेऽभयावटकाः ।

पथ्याकटुत्रिकविडङ्गदलत्वगेलाः

सग्नन्थिकाः सचविकामलकाः समुस्ताः ।

अष्टौ त्रिवृद्रवजटाचरणाल्लिभागा

दन्त्याश्च षड्गुणसितामधुमोदकाः स्युः ॥ २१ ॥

विद्भेदनाय मुकुमारतराः सुहृद्याः

शोक्ताः प्रगाढतरत्रिद्विदिकारिणस्ते ।

तावद्विरेचनकरा न भवन्ति याव-

दुष्णं पिवेन्न च नरः सलिलं यथेच्छम् ॥ २२ ॥

हृद्रोगशुल्भशुद्दजश्वयधुममेह-

पाण्ड्यामयोदरविकारभगन्दरघ्नाः ।

स्थौल्याम्लवातविकृतिप्रशमार्थमेते

तृणां भिषग्भिर्भयावटकाः जदिष्टाः ॥ २३ ॥

प.ण्डुरोगे वज्रकुशुटिका ।

रोहिणी चिरविल्वश्च कुटजश्च फलत्रिकम् ।

सुस्तकं पिप्पलीमूलं यष्ट्याहं निम्बनागरम् ॥ २४ ॥

पक्त्वा कषायमेषां तु भावयेच्च शिलाजतु ।

शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥ २५ ॥

वांश्याः कर्कटगृङ्गाश्च मागध्याश्च पलं पलम् ।

धात्रीफलपलार्थं च व्याघ्रीमूलत्वचं तथा ॥ २६ ॥

पत्रत्वगोला गन्धार्थं दत्त्वा चूर्णानि कारयेत् ।

तं विमर्द्य यथान्यायं दद्यान्मधु पलत्रयम् ॥ २७ ॥

वर्तयेद्द्वटकानेतानुदुम्बरफलोपमान् ।

तत्रैकं भक्षयेत्कल्ये सानुपानं यथाबलम् ॥ २८ ॥

विडङ्गरसयूषैश्च सुरारिष्टासवादिभिः ।

क्षीरैर्वा दाडिमाम्लैर्वा पथ्याभोजी पिवेन्नरः ॥ २९ ॥

स जयेत्पाण्डुरोगास्तदुष्टमेहगलग्रहान् ।

यक्ष्मकासांश्च वातादीन् श्वासशोषोदरामयान् ॥ ३० ॥

रोगानीकप्रणाशार्थं सृष्टा भगवता पुरा ।

वज्रकेति समाख्याता वटिकेयं महाशुणा ॥ ३१ ॥

नैव दद्यात्कृतघ्राय नास्तिकायोद्धताय च ।

इष्टाय संप्रयोक्तव्या ब्राह्मणाय विशेषतः ॥ ३२ ॥

श्ले शम्बूकाया गुटिका ।

पलानि त्रीणि शम्बूकालोहचूर्णात्पलद्वयम् ।

रसाञ्जनात्पलं चैकं लोहकिट्टात्पुनः पलम् ॥ ३३ ॥

शर्करां च समां सर्वैर्मधुना च परिप्लुताम् ।
 सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान्कारयेद्भिषक् ॥ ३४ ॥
 तान् भक्षयेत्प्रयत्नेन शूले गुल्मे हृदामये ।
 पक्तिशूले विशेषेण शोफे पाण्डूदरे भ्रमे ॥ ३५ ॥
 कासे कृच्छ्रे च दुर्नासि प्रमेहाभ्रिद्विषु ।
 अग्निमान्द्ये स्पृतिभ्रंशे पीनसार्धावभेदके ॥ ३६

कल्याणवटकाः ।

विडङ्गं पिप्पलीमूलं त्रिफलाधान्यचित्रकाः ।
 मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पल्यः श्रेयसी तथा ॥ ३७ ॥
 लवणान्यजमोदा च चूर्णितं कार्पिकं पृथक् ।
 तिलतैलं त्रिवृच्चूर्णं भागौ चाष्टपलोन्मिता ॥ ३८ ॥
 धात्रीरसस्य प्रस्थांस्त्रीन् गुडस्यार्धतुलां तथा ।
 पक्त्वा मृद्वग्निना खादेदुत्तार्योदुम्बरोपमान् ॥ ३९ ॥
 गुडान् कृत्वा न चात्र स्याद्विहाराचारयन्त्रणा ।
 मन्दाभित्वं ज्वरं मूर्च्छां मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् ॥ ४० ॥
 अस्वप्नं च यकृच्छ्रलं कासं शोषं गरं विषम् ।
 कुष्ठार्शःकामलापेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥ ४१ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्युः पुंसवनाश्च ते ।
 कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्वृतुषु यौगिकाः ॥ ४२ ॥

क्षतक्षीणे एलाद्या गुटिका ।

एलापत्रात्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्धपलं तथा ।
 सितामधुकखर्जूरमृद्धीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ४३ ॥
 संचूर्ण्य मधुना युक्त्या गुटिकाः संप्रकल्पयेत् ।
 अक्षतुल्यां ततश्चैकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ४४ ॥
 कासं श्वासं ज्वरं हिकां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमन् ।
 रक्तनिष्ठिवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ४५ ॥
 शोषणीहाह्वयवातांश्च स्वरभेदं तथा क्षयम् ।
 गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ४६ ॥

क्षतक्षीणे सर्पिर्गुटिका ।

विदारी च बला ह्रस्वा पञ्चमूली पुनर्नवा ।
 पञ्चानां क्षीरवृक्षाणा शुङ्गा मुष्ट्यंशका अपि ॥४७ ॥
 एषां कषाये द्विक्षीरे विदार्या स्वरसांशके ।
 जीवनीयैः पचेत् कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥४८ ॥
 सितापलानि पूतेऽस्मिञ्छीते द्वात्रिंशदावपेत् ।
 गोधूमपिप्पलीवांशचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ४९ ॥
 सक्षौद्रं कुडवं शीतं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
 स्त्यानं सर्पिर्गुडान् कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ५० ॥
 ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरं मद्यं चानुपिवेत्कफे ।
 शोषं कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकश्चिते ॥ ५१ ॥
 रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि क्षते ।
 शस्ता पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ ५२ ॥

पाण्डुरोगे मण्डूरवटकाः ।

मरिचं पञ्चकोलं च देवदारु फलत्रिकम् ।
 विडङ्गमुस्तं तुल्यानि भागास्तु पलसंमितान् ॥ ५३ ॥
 यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
 पक्त्वाऽष्टगुणिते मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ५४ ॥
 वटकानक्षमात्रास्तु पिबेत्तत्रेण तक्रमुक् ।
 पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाश्लित्त्वमरोचकम् ॥ ५५ ॥
 अर्शासि ग्रहणीदोषशोफमूत्रहलीप्रकम् ।
 कृमिं प्लीहानमुदरं हृद्रोगं चाशु नाशयेत् ॥ ५६ ॥
 मण्डूरवटका ह्येते रोगानीकप्रणाशनाः ।

पाण्डुरोगे द्वितीयो मण्डूरवटकः ।

ज्यूपणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥५७ ॥
 दार्वीत्वञ्जाक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ।
 एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ॥५८ ॥

मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ।
 सूत्रमष्टगुणं कृत्वा तस्मिंश्च प्रक्षिपेत्ततः ॥ ५९ ॥
 शनैः सिद्धं ततः शीताः कार्याः कर्षसमा गुहाः ।
 यथाधि भक्षणीयास्ते ग्रीहपाण्ड्वामयापहाः ॥ ६० ॥
 ग्रहण्यशीनुदश्चैव तक्रवाट्याशिनः स्मृताः ।

शोषे क्षारगुटिका ।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वार्ययोरजो व्योषफलत्रिके च ।
 सपिप्पलीमूलविडङ्गक्षारं सुस्ताजगोदासरदारुविव्वम् ॥ ६१ ॥
 कलिङ्गजं चित्रकमूलपाठे यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलांशम् ।
 सहिङ्गुर्कपर्प त्वणु शुष्कचूर्णं क्षोणं तथा मूलकशुण्ठिकानाम् ॥ ६२ ॥
 स्याद्भस्मनस्तत् सलिलेन साध्यमालोड्य यावद्धनममदग्धम् ।
 वर्तते ततः कोलसमानमात्रां कृत्वा सुशुष्कां विधिना तु युज्यात् ॥ ६३ ॥
 ग्रीहोदरशित्रहलीमकार्शःपाण्ड्वामयारोचकशोषशोफान् ।
 विसृचिकागुल्मगरात्रमरीश्च सन्वासकासाः प्रणुदेत्सकुट्टाः ॥ ६४ ॥

कुष्ठे माणिभद्रवटकः

विडङ्गसारामलकाभयानां पलं पलं स्यान्निवृतापलानि ।
 गुडस्य च द्वादश एष योगो मासेन त्रिंशद्गुटिकोपयोगः ॥ ६५ ॥

इयं हि कुष्ठज्वरगुल्मपाण्डुता-

भगन्दरश्वासगरोदराशेसाश्च ।

प्रणाशनी यक्षपतिः स्वयं ददौ

स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे ॥ ६६ ॥

कुष्ठे माणिभद्रवटकः ।

विडङ्गामलकं पथ्या पलांशं तत्समा त्रिवृत् ।
 गुडं तु द्विगुणं दत्त्वा वटकांस्त्रिंशदाचरेत् ॥ ६७ ॥
 कुष्ठानि पिडकार्शसि कृमिगुल्मोदराणि च ।
 कासं श्वासं च शमयेद्विशेषान्माणिभद्रकः ॥ ६८ ॥

अर्शसि सूरणवटकाः ।

षोडश सूरणभागा बह्वेरष्टौ महौषधस्यापि ।
 अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्धेन ॥ ६९ ॥
 त्रिफला कृणा समूला तालीसारुष्करकृमिघ्नानाम् ।
 भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ७० ॥
 भागः सूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारुकस्यापि ।
 भृङ्गैले मरिचांशे चूर्णेऽस्मिन्योजयेन्मतिमान् ॥ ७१ ॥
 द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ।
 गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवान्कुरुते ॥ ७२ ॥
 भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।
 भीमस्य मारुतेरपि येन ते महाशना जाताः ॥ ७३ ॥
 अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ।
 प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाऽप्यर्शसामेषः ॥ ७४ ॥
 श्वयथुश्लेष्मीपदगरजिदग्रहर्णां च कफानिलाज्जाताम् ।
 नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं च ॥ ७५ ॥
 हिक्कां कासं श्वासं सराजयक्ष्मप्रमेहं च ।
 ग्रीहानमप्यथोग्रं हन्ति च रसायनं पुंसाम् ॥ ७६ ॥

अर्शसि लघुसूरणवटिका ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य भागास्ततोऽर्धा नवचित्रकस्य ।
 महौषधाद्भौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥७७॥

अर्शोरोगे मरिचाद्या गुटिका ।

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान्
 क्रमविवर्धितभागमुचूर्णितान् ।

शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान्

कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदे ॥ ७८ ॥

अर्शसि कलिङ्गाद्या गुटिका ।

कलिङ्गलाङ्गलीकृष्णायष्टचपामार्गपिप्पली- ।

भूनिम्बसैन्धवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥ ७९ ॥

गुल्मे गुडवटकाः ।

गुडविभौषधपथ्यामागधिकादाडिमैः कृता गुटिकाः ।
विनिहन्ति भक्ष्यमाणा गुल्माशौवह्निसादगदान् ॥ ८० ॥

अतिसारेऽभयाद्या वटकाः ।

अभयागुडपिप्पल्यः समांशा वटकीकृताः ।
भक्षिता हन्त्यतीसारमर्शःपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ८१ ॥

सर्वातिसारेऽङ्गोलवटिका ।

पलमङ्गोलमूलस्य पाठां दावीं च तत्समाम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटिकामक्षसंमिताम् ॥ ८२ ॥
छायाशुष्कां पिबेत्क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
वातपित्तकफप्रायान् द्रन्द्रजान् सान्निपातिकान् ॥ ८३ ॥
हन्यात्सर्वातिसारांस्तु वटिकेयं प्रयोजिता ।

सर्वातिसारे वृद्धवङ्गोलवटिका ।

सदार्यङ्गोलपाठानां मूलं तु कुटजस्य च ।
शाल्मलेरथ निर्यासो धातकीरोध्रदाडिमम् ॥ ८४ ॥
पिष्ट्वाऽक्षसंमितान् कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्भसा ।
ततस्तु मधुसंयुक्तमेकैकं प्रातरुत्थितः ॥ ८५ ॥
पिबेदत्यन्तमापन्नो विधिसर्गेण मानवः ।
अङ्गोलवटका नाम्ना सर्वातौसारनाशनाः ॥ ८६ ॥

अतिसारे कटुङ्गाद्या गुटिका ।

पलानि दश कटुङ्गाद्दे पले पञ्चकत्वचः ।
स्थिराया बिल्वपेत्रयाश्च पलान्यष्टौ पृथक् पृथक् ॥ ८७ ॥
कटुकाहाञ्जनोशीररोध्रयष्ट्याहमुस्तकान् ।
कालीयकं नखं चैव हरिद्रारक्तचन्दनम् ॥ ८८ ॥
करञ्जफलचूतास्थिदाडिमत्वग्निबुधकाः
केतक्यर्जुनपुष्पाणि बल्कान्यक्षप्रियालयोः ॥ ८९ ॥
समङ्गा शालबीजानि ग्रन्थि चाप्यरिमेदतः ।
फलस्य, वत्सकफलं संक्षुद्य पलसंमितम् ॥ ९० ॥

द्विद्रोणं विपचेदम्भः पूत्वा काथं पचेदनु ।

पिण्डमक्षसमं तस्माद्भृतमादाय बुद्धिमान् ॥ ९१ ॥

कारयेद्गुटिकां श्लक्ष्णां ग्रसतोऽर्धां सुखाम्बुना ।

अट्टक्षतैलसंयुक्तां कफपित्तानिलातिषु ॥ ९२ ॥

केवले सन्निपाते च ततस्तक्रं पिबेदनु ।

तक्रेणैवानुभुञ्जीत नरोऽतीसारपीडितः ॥ ९३ ॥

शृत्युपाशान् जयेच्छीघ्रमियं सम्यक् प्रयोजिता ।

अतिसारसमुत्थानं शृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ९४ ॥

ग्रहण्या चित्रकाया गुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।

व्योषं हिङ्गवजमादं च चर्व्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ९५ ॥

गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।

कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याधु चानलम् ॥ ९६ ॥

ग्रहण्यां क्षारगुटिका ।

द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृता निकुम्भा पाठा वचास्फोटवलाश्च रास्त्रा ।

सकारवीचित्रकपर्कमूलं पृथक् पृथक् तानि पलैर्दशाख्यैः ॥ ९७ ॥

भस्मीकृतान्यम्भसि गालयित्वा पचेत्तुलां जीर्णगुडस्य सम्यक् ।

द्वे पञ्चमूल्यौ यवशूकजं च क्षारं तथा स्वार्जिकसंज्ञिकं च ॥ ९८ ॥

व्योषं वचां चैव हरीतकीं च पृथक् पलानां सह विप्रकेण ।

हिङ्गवम्लभलातकमक्षतुल्यं विपाचयेत्क्षारगुडं यथावत् ॥ ९९ ॥

ततोऽक्षमात्रा गुटिका प्रयोज्या कायाग्निहीनैरवलैर्नैरेश्च ।

सश्लेष्मकासारुचिगुल्मट्टद्वौ कफश्च कण्ठोरसि यस्य तिष्ठत् १००

कुष्ठप्रमेहान् श्वयं च हन्याद्वाताभयप्रीहयकुंद्रवांश्च ।

अन्नं हि शुक्तं जरयेच्च शीघ्रं युक्तो रसैः क्षारगुडप्रयोगः १०१

तालीसाया गुटिका ।

परिचं चव्यतालीसे पलार्धांशानि नागरात् ।

अध्यर्धं पिप्पलीमूलात्पिप्पल्याश्च पलं पलम् ॥ १०२ ॥

कर्षं तु नागपुष्पस्य त्रुटीकर्षार्धमेव च ।
 त्वक्पत्रोशीरकर्षस्तु चूर्णात्रिगुणितो गुडः ॥ १०३ ॥
 गुटिका हृक्षमात्रा च मद्ययूषपयोरसैः ।
 पीताऽम्भसाऽथवा प्रातः सर्वान् हन्याद्दुदोद्भवान् १०४
 शूलं पानात्ययं छर्दिं प्रमेहं विषमज्वरान् ।
 गुल्मं पाण्डुरजं शोफं हृद्रोगं ग्रहणीगदान् ॥ १०५ ॥
 कासहिक्कारुचिश्वासकृम्यतीसारकामलाः ।
 मूत्रकृच्छ्रं च मन्दार्घ्निं हन्याच्छोफं च सा शृशम् ॥ १०६ ॥
 एतदेव भवेच्चूर्णं सिताचूर्णचतुर्गुणम् ।
 सपित्तेषु विकारेषु विशेषणामृतोपमम् ॥ १०७ ॥
 सा चैव गुटिका पथ्याफलत्रयविशेषिता ।
 शोफार्शोग्रहणीशोषपाण्डुशूलापहारिणी ॥ १०८ ॥

क्षयरोगे मरीचादिवटिका ।

मरीचपत्रतालीसचविकानां पलं पलम् ।
 कृष्णातन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठीपलत्रयम् ॥ १०९ ॥
 चातुर्जातमुशीरं च कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
 तत्र त्रिंशत्पलं दद्यात्कथितादमलाद्बुडात् ॥ ११० ॥
 मरीचवटका ह्येते क्षयघ्ना दीपनाः परम् ।

लवहाद्या गुटिका ।

पलार्धं तु लवङ्गस्य तालीसत्रुटिवल्कलम् ॥ १११ ॥
 यवानीचव्यकाजाजीधान्यकं च पलोन्मितम् ।
 द्विपलं मारिचं कृष्णा वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् ॥ ११२ ॥
 कृष्णायाश्च जटा शुण्ठी पथ्या च कुडवोन्मिता ।
 एतत्सर्वं समाहृत्य त्रिगुणेन गुडेन तु ॥ ११३ ॥
 ततोऽर्धपलिकाः कार्या गुटिकास्तु भिषग्वरैः ।
 वटीमेकां ततः स्वादेन्मद्यतकरसासचैः ॥ ११४ ॥
 भक्षिता येन तस्याशःपाण्डुहृत्पार्श्वशूलनुत् ।
 कासगुल्मारुचिश्वासहिक्कामयगलग्रहान् ॥ ११५ ॥

ज्वरातिसारं तन्द्रां च सेविता हन्ति वेगतः ।

कुष्ठे तुवरास्थिवटकाः ।

हरीतकी कलिङ्गानि पटोलफलपुष्करम् ॥ ११६ ॥

बाकुची राजतृक्ष्णश्च बह्वर्कसूलमेव च ।

आवर्तकीफलं चैव भागवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥ ११७ ॥

यावन्त्यभूनि तुल्यानि तुवरास्थां च संभवा ।

भज्जा खदिरसंक्षिप्त्वा गोभूत्रकथिता पुनः ॥ ११८ ॥

एभिः कर्षमितां सर्वैर्गुटिकां कारयेद्भिषक् ।

भान्दयैनामनु गोभूत्रं पिबेच्चापि पलद्वयम् ॥ ११९ ॥

जीर्णज्वरे उदरक्षणे घृतमुष्णोदनं भजेत् ।

सप्ताहं तिलतैलेन निष्पावकङ्कुसेवनम् ॥ १२० ॥

तक्रानुपानं मासं च तत्परं सर्वभुग्भवेत् ।

जयेत्क्षाराम्लवर्जी च सर्वकुष्ठानि मानवः ॥ १२१ ॥

कुष्ठे खदिरादवटिका ।

खदिराद्बीजकान्निम्वात्कुटजाच्छालसारतः ।

पञ्चाशत्पालिकान् भागान् गोभूत्रस्याढकद्वयम् ॥ १२२ ॥

जलद्रोणद्वये चापि सुशुभं दिवसान् दश ।

दशरात्रस्थितं तच्च कषायमनुसाधयेत् ॥ १२३ ॥

अध्यर्थाढकशेषं तु पुनरग्रावधिश्चयेत् ।

चूर्णीकृतान्यथेमानि भेषजान्यत्र दापयेत् ॥ १२४ ॥

वरां भलातकं चैव विडङ्गानि वचां तथा ।

चित्रकावल्गुजौ चैव भागान् दशपलांशकान् ॥ १२५ ॥

काकमाच्यास्तु मूलानि पलानां पञ्चविंशतिम् ।

घनीभूतं तु तं ज्ञात्वा गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १२६ ॥

तां भक्षयेत् कुष्ठार्तः पथ्यभोजी जितेन्द्रियः ।

कुष्ठानि नाशयत्येषा छिन्नाभ्राणीव मारुतः ॥ १२७ ॥

कुष्ठे विपगुटिकाः ।

त्रिफलाव्योषयष्ट्याहविषं तुल्यानि पेषयेत् ।
 भृङ्गास्वुना वटी कार्या हृक्षणा चणकसंमिता ॥१२८॥
 एकैकां वर्धयेद्यावदष्टावस्मान्न वर्धयेत् ।
 आस्तिकेन कुतो योगो विजयेद्वातजान् गदान् ॥१२९॥
 अशीतिं विंशतिं श्लेष्मभवान्सप्त महाक्षयान् ।
 अष्टादशैव कुष्ठानि सन्नमसिं च दीपयेत् ॥ १३० ॥

कुष्ठे लाङ्गलीगुटिका ।

लाङ्गलीत्रिवृतालोहचूर्णं दत्त्वा पलं पृथक् ।
 त्रिंशत् गुटिकाः पथ्याः कार्या भृङ्गरसप्लुताः ॥ १३१ ॥
 छायाशुष्कां च तत्रार्धां गुटिकां भक्षयेत्ततः ।
 जीर्णे रसेन रूक्षेण पेया पूर्वं न भोजयेत् ॥ १३२ ॥
 यन्नितो ब्रह्मचर्याद्यैः क्रमेण गुटिकामपि ।
 खादेत्प्रातस्तु मासैकं भवेत्कामचरः क्रमात् ॥ १३३ ॥
 एवं सर्वाणि कुष्ठानि जयत्यतिबलान्यपि ।
 धीमेधास्मृतियुक्तस्तु नित्यं जीवेत्समाः शतम् ॥१३४॥

कण्डूां त्रिजातगुटिका ।

त्रिजातत्रिफलाव्योषं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
 तत्तुल्यं त्रिवृताचूर्णं शर्कराक्षौद्रमेव च ॥ १३५ ॥
 बद्ध्वाऽत्र मोदकानेषां भक्षयेच्च यथाबलम् ।
 विरेकः प्रथले ह्येष तथा कण्डूविनाशनः ॥ १३६ ॥

मुखरोगे खदिरगुटिका ।

तुलां खदिरसारस्य द्विगुणां त्वरिमेदतः
 प्रक्षाल्य जर्जरीकृत्य चतुर्द्वेण्डुभसः पचेत् ॥ १३७ ॥
 द्रोणशेषं कषायं तु पूत्वा भूयः पचेच्छनैः ।
 ततस्तस्मिन्धनीभूते चूर्णं कृत्वाऽक्षभागिकम् ॥ १३८ ॥
 चन्दनं पद्मकोशीरं मञ्जिष्ठाधातकीधनम् ।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याहृत्त्रेगलापत्रकेसरम् ॥ १३९ ॥
 लाक्षां रसाञ्जनं मांसीत्रिफलारोध्रवालुकम् ।
 रजन्यौ फलिनीमैलां समङ्गां कट्फलं वटम् ॥ १४० ॥
 यवासागरूपत्तङ्गैरिकाञ्जनमावपेत् ।
 लवङ्गजातिकङ्कोलजातीकोशान् पलोन्भितान् ॥ १४१ ॥
 कर्पूरकुडवं चापि पुनः शीतेऽवतारयेत् ।
 ततस्तु गुटिकाः कार्याः शुष्कास्त्वास्ये निधापयेत् १४२
 तैलमेतेन कल्केन कषायेण विपाचयेत् ।
 शूलप्रवलाविभ्रंशशौर्षिर्यकृमिदन्तनुत् ॥ १४३ ॥
 जाडचदौर्गन्ध्यतित्कत्वमुखसम्प्लेदपाकजित् ।
 गलशोषपरीदाहसादसंदोहलेपहृत् ॥ १४४ ॥
 दन्तास्यगलपाकेषु सर्वेष्वेतत्परायणम् ।

मुखरोगे द्वितीया खदिरगुटिका ।

खदिरस्य तुलां शुद्धां जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १४५ ॥
 अष्टभागेऽवशिष्टे तु पुनः कल्कं प्रदापयेत् ।
 जातीकर्पूरपूगानि सकङ्कोलफलानि च ॥ १४६ ॥
 इत्येषां गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धनी ।
 दन्तोष्ठमुखरोगेषु जिह्वातात्वामयेषु च ॥ १४७ ॥

मुखरोगे तृतीया खदिरगुटिका ।

कुङ्कुमलवङ्गपत्रत्वक्शुटिशङ्खाम्बुजानि तुल्यानि ।
 कङ्कोलजातिमृगमदभागैस्त्रिगुणीकृतैः सम्यक् ॥ १४८ ॥
 पञ्चाशत्खदिरस्य भागाः सप्तैव शशधरस्यापि ।
 सहकारतैलयुक्ता खदिरगुटिकाऽऽस्यरोगघ्नी ॥ १४९ ॥
 गलरोगे चरिचाद्या गुटिका ।

मरिचं पिप्पली पाठा यवक्षारः सनागरः ।
 एलापत्रत्वचं पथ्या सैन्धवं चाम्लवेतसः ॥ १५० ॥
 मधुना गुटिका ह्येषां कण्ठरोगविनाशिनी ।

गलरोगे पिप्पल्यादिक्षारगुटिका ।

कर्पमेकं तु पिप्पल्या मरिचानां तथैव च ।
दाडिमस्य पलार्धं च गुडस्य च पलद्वयम् ॥ १५१ ॥
यवक्षारार्धकर्पं च गुटिकां कारयेद्विषकम् ।
मुखेन धारिता हन्ति कासश्वासगलामयान् ॥ १५२ ॥

कफरोगे वत्सनाभाथा गुटिका ।

वत्सनाभवल्लयुगं षड्वल्लास्त्रित्रिकटुकचूर्णस्य ।
त्रिकवल्लद्वितयं पिप्पलीमूलस्य वल्लयुगम् ॥ १५३ ॥
अभया द्वादशवल्ला द्वादशद्विगुणा च गुग्गुलोर्वल्लाः ।
गुटिका धार्या वदने क्षणदायां कफविनाशार्थम् ॥ १५४ ॥

त्रिकटुकाद्या गुटिका ।

त्रिकटुत्रिफलादुरालभाद्विनिशादारुवचाः सचित्रकाः ।
रसगन्धककर्कटाह्वया रुचककटूलहिङ्गुपत्रिकाः ॥ १५५ ॥
इति दर्शितभेषजैर्गुटी मधुना कर्पमिता कृता नृणाम् ।
प्रणिहन्ति निषेविता प्रणे पवनासृक्कफकोपजामयान् ॥ १५६ ॥

भाग्यादिगुटिका ।

भाग्यां सकृष्णा द्विनिशेन्दुकान्तापथ्याविभीतत्वचकुष्ठविश्वाः ॥
कन्यारसेनापि गुटिविधेया सश्वासकासामरुचिं निहन्ति १५७

ज्वरे त्रिवृताद्यो मोदकः ।

त्रिवृतापिप्पलीयुक्तो गुडसर्पिर्विभावितः ।
मण्डानुपानो देयोऽयं मोदकः सन्निपातहा ॥ १५८ ॥

कम्पिलकाद्यो मोदकः ।

कम्पिलकत्रिवृत्कृष्णापथ्यानागरकैरपि ।
सितागुडयुतो ह्येष मोदको ज्वरिणां हितः ॥ १५९ ॥
शीतानुपानतश्छादित्वृष्णापित्तामयान् जयेत् ।

त्रिफलाद्यो मोदकः ।

त्रिवृतार्धवरान्योषशर्करागुडसंयुतम् ॥ १६० ॥

मोदकं भक्षयित्वा तु पिबेच्चोष्णं जलं पुनः ।

पार्श्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ १६१ ॥

ज्वरे सप्तलायो मोदकः ।

सप्तला पिप्पलीमूलं श्यामा दन्ती पृथक्पृथक् ।

एषां दशपलान् भागान् दशमूल्यास्तुलां तथा ॥ १६२ ॥

हरीतक्यस्रधात्रीणां प्रस्थं प्रस्थं समावपेत् ।

जलद्रोणद्वये पकं पूतं पादावशेषितम् ॥ १६३ ॥

विडङ्गं मुस्तकं श्यामां शङ्खिनीं मालंतीमपि ।

त्रिवृश्रोपयुतं ह्येतत्कृत्वा चूर्णं रसे क्षिपेत् ॥ १६४ ॥

वटकानक्षमात्रांस्तु वातश्लेष्मकृते ज्वरे ।

शूले पक्वान्नस्थे च शुद्धचर्षं भक्षयेदिमान् ॥ १६५ ॥

अमे कृष्णाद्या गुटिका ।

कृष्णाशुण्ठीशताह्वानामभयानां षलं पलम् ।

गुडस्य षट्पलान्येषां गुटिका भ्रंशोऽशिनी ॥ १६६ ॥

ज्वरातिसारे कटुङ्गाद्या वटकाः ।

कटुङ्गविल्वजम्बाम्रकपित्थं सरसाङ्गनम् ।

ह्रीविरं च निशे लाक्षां कटुफलं शुकनासिकाम् ॥ १६७ ॥

रोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकीं वटशुङ्गकान् ।

पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसंमितान् ॥ १६८ ॥

छायाशुष्कान्पिबेत्क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।

शमनान् रक्तपित्तस्य शूलातीसारनाशनान् ॥ १६९ ॥

श्रीहोदरे रोहितकवटकाः ।

भागाः पञ्चदशथ कोलकभवा रोहीतकस्य त्रयः

पथ्यायास्त्रय एव तद्विगुणितं संयोज्य सिद्धं गुडम् ।

चातुर्जातकभागसंगसुरभीनश्मरुतो मोदकान्

श्रीहार्शःश्वयथूदरज्वरवमीन् गुल्माग्निसादाङ्गयेत् १७०

गुडपाकविधिः ।

यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्रा तन्तुली भवेत् ।
 तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ १७१ ॥
 क्षिप्तोऽप्सु निश्चलस्तिष्ठेत्पतितश्च न शीर्यति ।
 एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः ॥ १७२ ॥
 सुखप्रदः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ।
 पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ १७३ ॥

धातुक्षये महाकल्याणको गुडः ।

पिप्पलीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ।
 धान्यकं च विडङ्गानि यवानि मरिचानि च ॥ १७४ ॥
 त्रिफलां चाजमोदां च नीलिनीं जीवकं तथा ।
 सौवर्चलं ससिन्धूत्थं सामुद्रं चौद्रिदं वचाश्च ॥ १७५ ॥
 आरग्वधं त्वचं पत्रं सूक्ष्मैलामुपकुञ्चिकाम् ।
 नागरेन्द्रयवांश्चैव गृहीयात् कर्षभागिकान् ॥ १७६ ॥
 मृद्रीकायाः प्रधानाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ।
 त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ रसमापलकस्य च ॥ १७७ ॥
 प्रस्थं द्विगुणितं कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्
 यदा पकं विजानीयात्तदैवमवतारयेत् ॥ १७८ ॥
 उदुम्बरेण धात्र्या वा बदरेणाथ वा समम्
 यथाबलं प्रयुञ्जीत समीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥ १७९ ॥
 सर्वाश्च ग्रहणीदोषान्प्रमेहांश्चैव विंशतिम्
 अर्शांसि वातगुल्मांश्च कुष्ठानाहभगन्दरम् ॥ १८० ॥
 उरोघातं प्रतिश्यायं हृद्रोगं चैव नाशयेत् ।
 धातुक्षीणे बलक्षीणे स्त्रीभिः क्षीणे क्षये तथा ॥ १८१ ॥
 ज्वराणां चैव सर्वेषां वन्ध्यानां चापि पुत्रदम् ।
 रूपौदार्यं स्वरौदार्यं मेधामाविन्दते स्थिराम् ॥ १८२ ॥
 महाकल्याणको ह्येष रसायनमनुत्तमम् ।

ग्रहण्यां कल्याणको गुडः ।

कृष्णात्वरग्रन्थिकं वह्निं दीप्यकोपणसैन्धवम् ।

कृमिघ्नत्रिफलाधान्यकोलाजाज्यजमोदकाः ॥ १८३ ॥

पलिकानि त्रिवृच्चूर्णतैलयोश्च पलाष्टकम् ।

रसप्रस्थत्रयं धात्र्या गुडस्यार्धशतं क्षिपेत् ॥ १८४ ॥

एतत्कल्याणको नाम ग्रहणीपाण्डुजित्परम् ।

ग्रहण्यां यवान्धाया गुटिका ।

यवानी धान्यकं विल्वं चविकात्रुटिवल्कलम् ।

अम्लवेतसवृक्षाम्लं त्रिफला शिखिग्रन्थिकम् ॥ १८५ ॥

सौवर्चलं सैन्धवं च हपुषा च हरीतकी ।

यष्टिका सातला स्पृक्का पलमानानि चूर्णयेत् ॥ १८६ ॥

गुडस्य तु पलान्यत्र दापयेद्विगुणानि तु ।

यवानीगुटिका ह्येषा ग्रहणीनाशनी परा ॥ १८७ ॥

चन्द्रप्रभा गुटिका ।

कीटघ्नेभकणाग्निमागधिजटासुस्ताशटीताप्यकं

भूनिम्बत्रिफलासुराहचविकान्वयोषं वचा धान्यकम् ।

रात्रीयुग्मविषात्रिवृत्रिलवणं क्षारत्रिजातान्वितं

कर्षं कर्षमतः पुराद्दशपलं शैलेयकाष्टान्वितम् ॥ १८८ ॥

लोहात्तत्र सिताचतुष्पलयुतं स्याद्दशजायाः पलं

हन्त्यशीसि षडेव गुल्ममजयं शोषं क्षयं कामलाम् ।

नाडीमर्मगदाञ्जलोदररुजो दीर्घज्वरान्विद्रधीन्

यक्ष्माणं सभगन्दरं कफमरुत्पित्तोद्भवं पाण्डुताम् १८९ ॥

तं तं व्याधिसमूहशुक्रविकृतीन्ग्रन्थ्यर्बुदंश्लीपदान्

मेहांश्लुक्रविनाशमश्मरिरुजस्त्वन्यांश्च देहस्थितान् ।

व्याधीन्हन्ति दृढाननेन विधिना चन्द्रप्रभा सेविता

मन्दाग्नेः परमं प्रदीपनमियं कुर्याज्जरां जर्जराम् ॥ १९० ॥

स्वेच्छाहारविधौ च पानविषये शीतातपे मैथुने
शुक्ता नास्ति विरोधिनी च सततं मोक्षा पुरा ब्रह्मणा १९१

पित्ते कल्याणका गुटिका ।

द्राक्षां नियोज्य विधिना द्विगुणां शिवायाः

संचूर्ण्य हृक्षफलमात्रमितां प्रभाते ।

कल्याणकारककृतां गुटिकामिमां यः

संसेवते भवति तस्य हि पित्तनाशः ॥ १९२ ॥

हृद्रोगरक्तविषमज्वरपाण्डुवान्ति-

कुष्ठानि कासपिट्टिकारुचिमेहमुख्याः ।

आनाहगुल्मगरविद्रधिकामलाद्याः

सर्वेऽपि ते विलयमाशु सुखेन यान्ति ॥ १९३ ॥

अर्शाक्षि प्राणदा गुटिका ।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च

पिप्पल्याः कुडवार्धं च चत्रिकापलमेव च ।

पलं तालीसपत्रस्य पलार्धं केशरस्य च

द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकस्य पलं तथा ॥ १९४ ॥

सूक्ष्मैलाकर्षमेकं तु कर्षं चोचमृणालयोः ।

अजमोदामजार्जी च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ १९५ ॥

गुडस्य विंशतिपलं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

वट्यो हृक्षममाणास्तु प्राणदा इति विश्रुताः ॥ १९६ ॥

पूर्वं भक्ष्यास्तु पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ।

मद्यं मांसरसं यूपं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ १९७ ॥

हन्यादर्शाक्षि सर्वाणि सहजान्यस्रजान्यपि ।

वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ १९८ ॥

पानात्यये तथा पाण्डौ वातरोगे गलग्रहे ।

मन्दाग्रौ मूत्रकृच्छ्रे च तथैव विषमज्वरे ॥ १९९ ॥

कृमिहृद्रोगिणां चैव ह्येताः स्युरमृतोपमाः ।

शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विद्महे पित्तवायुजे ॥२००॥

प्राणदायां सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ।
 अम्लपित्ते सशूले च प्रयोज्या गुदजातुरे ॥ २०१ ॥
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ।
 पलद्वयं चानिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ २०२ ॥

वार्ताकगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्रिपलं लवणत्रयात् ।
 वार्ताकात्कुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ २०३ ॥
 दग्ध्वा रसेन वार्ताक्या वटिका भोजनोत्तरम् ।
 कृता भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिता ॥ २०४ ॥
 विमूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्नी च सा स्मृता ।

पाण्डुरोगेऽभयाद्यो मोदकः ।

अभया पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
 पत्रत्वक्पिप्पलीमुस्ताविडङ्गामलकानि च ॥ २०५ ॥
 एतानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत् ।
 त्रिवृदष्टगुणा देया शर्करा चैव षड्गुणा ॥ २०६ ॥
 मधुना मोदकान् कृत्वा मानतः कर्षसंमितान् ।
 एकैकं भक्षयेत्भातः शीतं चानुपिवेज्जलम् ॥ २०७ ॥
 तावद्विरच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ।

पाण्डुत्वकासविषमज्वरवह्निसादान्

प्लीहाक्षिरोगमथ चाश्मरिकां तथैव ।

हन्याद्रसायनमिदं खलु कामलां च

हृत्पव्ययं बहुफलं सततोपयोज्यम् ॥ २०८ ॥

गुल्मेऽभयाद्या वटकाः ।

हरीतक्याः पले द्वे तु ग्रथिकं चाम्लवेतसम् ।
 पलार्धं चार्धकर्षांशा व्योषट्काम्लवाष्पिकाः ॥ २०९ ॥
 यवानी चाजमोदा च कारवीशटिपौष्करम् ।
 बिडं सौवर्चलं चय्यं ह्युपाजाजिधान्यकम् ॥ २१० ॥
 कोलाम्लं दाडिमं चैव चातुर्जातं च कार्षिकम् ।

गुडद्विगुणितं चूर्णं कृत्वा तु वटकान्भजेत् ॥ २११ ॥

गुल्मानाहोदरश्लेष्मिहपाण्डुशोग्रहणीगदान् ।

कासातीसारपार्श्वार्तिश्वासारोचककामलाः ॥ २१२ ॥

मदात्ययवमीमेहहिक्कापीनसपित्तजान् ।

शमयेज्ज्वरशूले च ह्यग्निदीप्तिकरं परम् ॥ २१३ ॥

कृष्णाग्निस्मृतियुक्तस्तु निखं जीवेत्समाः शतम् ।

विसृचिकायां जीरकाद्या गुटिका ।

जीरकभागद्वितयमेको भागस्तथैव मरिचस्य ।

द्वौ भांगौ सिन्धूत्थाद्विङ्गोर्भागश्चतुर्थांशः ॥ २१४ ॥

कार्या गुडेन वटिकाऽजीर्णालसकौ विसृचिकाधमानौ ।

हन्ति मुखोदकपीताऽनुलोमनी मूढवातस्य ॥ २१५ ॥

बृहच्छिवगुटिका ।

काले रवितापाह्वये कृष्णायसे शिलाजतु पवरम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं स्यहं विशुद्धं पुनः शुष्कम् ॥ २१६ ॥

दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य ।

मधुकरसे गोमूत्रे प्रहरं भावयेत्क्रमश एकाहम् ॥ २१७ ॥

क्षीरेण तु तत्परतो भावयित्वा गवां पुनः शुष्कम् ।

सप्ताहं भाव्यं स्यात्काथेनैषां यथालाभम् ॥ २१८ ॥

काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा ।

ऋद्धियुगर्षभवीरामुण्डीतिकाजीरकांशुमत्यश्च ॥ २१९ ॥

रास्त्रापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकालिङ्गचव्याब्दाः ।

कटुका शृङ्गी पाठा चेति पलांशानि कार्याणि ॥ २२० ॥

अब्द्रोणसाधितानां रसेन पादांशकेन भाव्यानि ।

गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षट् च ॥ २२१ ॥

द्विपलं च विश्वधात्रीमागधिकाकर्पटाख्यमरिचानाम् ।

चूर्णपलं च विदार्या तालीसपलानि चत्वारि ॥ २२२ ॥

षोडश सितापलानि तु चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ ।

तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णस्य पलानि पञ्च पञ्चानाम् ॥ २२३ ॥
 त्वक्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां च मिश्रयित्वा तु ।
 गिरिजस्य षोडशपलैर्गुटिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः ॥ २२४ ॥
 ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः ।
 तासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम् ॥ २२५ ॥
 क्षीररसदाडिमरसाः सुखासवा हिमकरशिशिरतोयानि ।
 आलोडनाय तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ २२६ ॥
 जीर्णे लघ्वन्नपयोजाङ्गलनिर्युहयूषभोजी स्यात् ।
 सप्ताहं भोजनमेवमतः परं भवेत्सर्वसामान्यम् ॥ २२७ ॥
 भुक्त्वाऽपि भक्षितेयं यदृच्छया नावहेद्द्रव्यं किञ्चित् ।
 निरुपद्रवा प्रयुक्ता मुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ २२८ ॥
 संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा व्रातशोणितं प्रबलम् ।
 बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढ्यवातं च ॥ २२९ ॥
 ज्वरयोनिशुक्रदोषान् स्त्रीहार्शःपाण्डुहृद्ग्रहणीरोगान् ।
 वर्धनमिगुम्बपीनसहिक्कात्वासारुचिकासान् ॥ २३० ॥
 जठरं प्वित्रं कुष्ठं पाण्ड्यं क्लैब्यं क्षयं मदं शोषम् ।
 उन्मादापन्मारौ वदनाक्षिशिरोगतात्रोगान् ॥ २३१ ॥
 आनाहमतीसारमसृग्दरकामले प्रमेहांश्च ।
 गलगण्डापच्यवुदविद्रधिभगन्दरं रक्तपित्तं च ॥ २३२ ॥
 अतिकाश्यमतिस्थौल्यं स्वेदमपि श्लीपदं च विनिहन्ति ।
 दंष्ट्राविषमपि मौलं गरलानि बहुप्रकाराणि ॥ २३३ ॥
 मञ्जौषधिप्रयोगानरियुक्तान् कौलिकास्तथा सर्पान् ।
 पापमलक्ष्मीं चैयं शमयेद्द्वटिका शिवा नाम ॥ २३४ ॥
 बल्या वृष्या धन्या कान्तिवशःश्रीप्रजाकरी चैयम् ।
 दद्याच्चुपवल्लभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥ २३५ ॥

श्रीमान्प्रकृष्टमेधास्मृतिबुद्धिबलान्वितो दृढशरीरः ।
 पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोबलसंपदोपेतः ॥ २३६ ॥
 बलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः ।
 संवत्सरप्रयोगात्, द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ २३७ ॥
 सर्वामयजिन्महितं शुनिभिर्भक्ष्यं रसायनवरिष्ठम् ।
 शिवशुटिकेति प्रथितमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥ २३८ ॥

पाण्डुरोगे लघुशिवगुटिका ।

कुटजत्रिफलानिस्वपटोलघननागरात् ।
 भावितानि दशाहं वै रसैश्च द्विशुणैः खलु ॥ २३९ ॥
 शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ।
 त्वक्क्षारीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यान् पलोन्मितान् ॥ २४० ॥
 क्षुद्रायाः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्यात्रिगन्धिकान् ।
 मधुत्रिफलसंयुक्तान्कुर्यादक्षसमान् गुडान् ॥ २४१ ॥
 दाडिमाम्बुपयःक्षीररसयूषसुरासवान् ।
 भक्षयित्वा पिवेच्चानु निरन्नो भुक्त एव च ॥ २४२ ॥
 पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकाशौभगन्दरान् ।
 हृच्छूलशुक्रमूत्राग्निदोषशोफगरोदरान् ॥ २४३ ॥
 कासासृग्दरपित्तासृक्छोपगुल्मगलामयान् ।
 नेत्रवर्त्मगतान् हन्युः सर्वरोगहराः शिवाः ॥ २४४ ॥

कुष्ठ वज्रकगुटिकाः ।

शैलस्य धातो रजसः शिलाभ्यः सूर्यप्रतापाज्जतुसंनिकाशम् ।
 कृष्णं स्रवेन्मूत्रसमानगन्धि शिलाजतु प्राज्ञतमास्तदाहुः २४५
 रूप्यादिधातोर्गलितं दृषद्भ्यस्तेभ्यः प्रशस्तं प्रवदन्ति पूर्वम् ।
 विशोधयेत्तप्तुदिने सुपूते द्विपञ्चमूलीसलिले कटाहे ॥ २४६ ॥
 लौहे समालोडय दिवाकरस्य संतापनं रश्मिभिरेव कुर्यात् ।
 प्रणीततापात्सरवद्गृहीत्वा पुनः पुनस्तप्तमथोद्धरेच्च ॥ २४७ ॥
 तावत्प्रदेयं सलिलं क्रमेण गाढस्य संदर्शनमेव यावत् ।

तावच्छिलाजत्वाभिसन्निविष्टं समुद्धृतं यावदशेषतश्च ॥ २४८ ॥
 अष्टौ पलान्यस्य विशोधितस्य ततः क्रमाद्भावयितुं यतेत ।
 द्विपञ्चमूल्यौ चिरविल्वमुस्तापटोलनिम्बत्रिफलाः पलांशाः २४९
 सपिप्पलीजीरकरोहिणी च द्रोणेऽम्भसस्तान्द्रिपलान्यथोक्तान् ।
 प्रकाश्य चैवाष्टमभागशेषं तस्मात्सृजेद्भावनमल्पमल्पम् ॥ २५० ॥
 पात्रेऽथ लौहे परिशोषयेत्तत्पुनः पुनर्भाषितमेव यावत् ।
 पलद्वयं पिप्पलिकर्कटाल्ये चूर्णीकृते लोहरजःसमांशे ॥ २५१ ॥
 पलं बृहत्याः सनिदिग्धिकायाः सितोपलामष्टपलान्वितां तु ।
 पलत्रयं वेणुजरोचनाया मधुत्रयं तद्विनिवेश्य कृत्वा ॥ २५२ ॥
 त्रिपष्टिसंख्यान्वटकान्विधिज्ञः खादेत्सुरावारिपयोनुपानात् ।
 रसेन वा लावकपिञ्जलानां तोयेन वा दाडिमसंस्कृतेन ॥ २५३ ॥
 भुक्तैस्तथाऽभुक्तवति प्रदेया रोगादिते निष्परिहारिणी च ।
 कुष्ठोदरश्वासगलामयांश्च भगन्दरान्भूत्रविघ्नघ्नुल्मान् ॥ २५४ ॥
 यक्ष्माणमर्शांसि सकासहिक्कां घ्नीहां च हन्याद्विषमज्वरांश्च ।
 बद्धेश्च दीप्तिं परमां करोति बलीश्च हन्यात्पलितानि चैव ॥ २५५ ॥
 सेन्या त्वियं वज्रकनामधेया मुनिप्रदिष्टा वटिका प्रधाना ।
 वर्ज्याः कुलत्थाश्च सकाकमाच्यः कपोतमांसं च सदा प्रयोगे ॥

विषे सर्षपाद्या गुटिकाः ।

सर्षपाः पृष्टिपर्णी च तगरं पद्मकेसरम् ।
 हरीतालं विडङ्गानि रोध्रद्राक्षाप्रियङ्गवः ॥ २५७ ॥
 चन्दनं बालकं मांसी विशाला समनःशिला ।
 श्रीवासकनिशादावीपद्मकं ध्याममेव च ॥ २५८ ॥
 मुरसप्रसवाः स्पृक्का रोचना गन्धनाकुली ।
 शम्पाकः कुङ्कुमं दारु स्थौणेयं गिरिकर्णिका ॥ २५९ ॥
 जात्याः पुष्पं प्रवालं च पिप्पली मरिचानि च ।
 सूक्ष्मैला सिन्दुवारश्च यष्ट्याहं रोध्रमेव च ॥ २६० ॥

एतान्यङ्गानि षट्त्रिंशत्पुष्येण परिपेष्य वै ।
 गुटिकां कोलमात्रां च छायाशुष्कां हि कारयेत् ॥२६१॥
 नस्यपानाञ्जने चैषा सम्यग्लेपे च पूजिता ।
 भुंसां सर्वविषार्तानां राजद्वारे रणे तथा ॥ २६२ ॥
 वणिजां लाभकामानां विवादे च सदा हिता ।
 सरीसृपा न तिष्ठन्ति यत्र तिष्ठति वेम्नि ॥ २६३ ॥
 अनया संप्रलिप्तस्य चौरवह्निभयं कुतः ।
 सर्पदंशभयं चापि जलराशिभयं न च ॥ २६४ ॥

भूतदोषे सिद्धार्थकाया गुटिका ।

सिद्धार्थकव्योपवचाश्वगन्धानिशार्द्रयं हिङ्गु पलाशकं च ।
 बीजं करञ्जात्कुसुमं शिरीषात्फलं च बल्कश्च कपित्थवृक्षात् ॥
 समाणिमन्थं सनतं च कुष्ठं श्योनाकमूलं किणिही सिता च ।
 बस्तस्य मूत्रेण सुभावितं तत्पित्तेन गव्येन गुडान्विदध्यात् ॥
 दुष्टत्रणोन्मादनशान्ध्ययुक्ता उद्ग्रन्धका वारिनिमग्नदेहाः ।
 दिग्धाहता दर्पितसर्पदष्टास्तान्साध्यत्यञ्जनपानलेपैः ॥२६७॥

शोषेऽश्वत्थवटकाः ।

मूलत्वक्पत्रगुङ्गानामश्वत्थस्य समाहरेत् ।
 शतं शतावरीं मेदां मधुपर्णीं पुनर्नवाम् ॥ २६८ ॥
 सहाद्रयं गुडूर्चीं च श्रेयसीं च शिवां स्थिराम् ।
 बृहतीं च वयस्थां च काकोलीं काकनासिकाम् ॥२६९॥
 दशद्रोणेषु दुग्धस्य पचेत्तत्समात्रया ।
 सिद्धं शीतं पुनः क्षीरं मन्यानेन विमन्थयेत् ॥ २७० ॥
 जायते यद्धृतं तत्र तदुद्धृत्य पुनः पचेत् ।
 क्लैर्मेधुक्जीवन्तीमधुकोत्पलजीवकैः ॥ २७१ ॥
 द्राक्षामेदामहामेदावार्ताकीकण्टकारिका- ।
 उच्यतेत्रायमाणाख्यशृङ्गाटककसेरुकैः ॥ २७२ ॥
 मज्जा तालस्य बीजानां पुष्करस्य च केसरैः ।
 धात्रीफलविदारीक्षुरसैः काशमर्यजैः सह ॥ २७३ ॥

तत्सिद्धं कलशे ताम्रे कृतकौतुकमङ्गलः ।
 उच्चटेश्वरससौद्रतुगाक्षीर्याश्च बुद्धिमान् ॥ २७४ ॥
 मस्थं मस्थं पृथग्दद्याच्छर्कराधेतुर्ला तथा ।
 आत्मगुप्ताफलानां च कुडवं मरिचस्य च ॥ २७५ ॥
 त्रिसुगान्धिकृतावापं मन्थानेन विमन्थितम् ।
 पलिकान्मोदकान्कृत्वा स्थापयेन्मृन्मये नवे ॥ २७६ ॥
 तेभ्यो द्वावप्यथवाऽप्येकं खादेद्योऽग्निबलं प्रति ।
 मोदकं नियताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ २७७ ॥
 स हन्याद्यक्ष्मणः सद्य एकादशविधं बलम् ।
 स्वरवर्णवलौदार्यतुष्टिपुष्टिविवर्धनम् ॥ २७८ ॥
 आयुष्यं परमं चाग्र्यं भूतोपहतचतेसाम् ।
 व्याकुलीकृतधातूनां वृद्धानां क्षीणरेतसाम् ॥ २७९ ॥
 वाजीकरणमप्येतद्रन्ध्यानां पुत्रदं परम् ।
 धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलवर्धनम् ॥ २८० ॥
 हृत्पार्श्वग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रापतत्रकान् ।
 अपस्मारं तथोन्मादं नाशयेत्तद्रसायनम् ॥ २८१ ॥
 पाण्डुरोगे पुनर्नवामण्डूरम् ।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ।
 विडङ्गं देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ २८२ ॥
 हरिद्राद्वितयं दन्ती त्रिफला चविका तथा ।
 कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ २८३ ॥
 एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
 मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ २८४ ॥
 पाण्डुशोषोदरानाहशूलार्शःकृमिरोगनुत् ।

वातव्याधौ रसोनापिण्डः ।

* पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ।
 दिङ्गु त्रिकडुकं क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ॥ २८५ ॥

शतपुष्पा वचा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
 अजमोदा यवानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥२८६॥
 प्रत्येकं च पलं चैषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडश ॥ २८७ ॥
 प्रक्षिप्य तैलमार्णां च प्रस्थार्धं काञ्जिकस्य च ।
 खादेत्कर्षप्रमाणं च तोयं मद्यं पिवेदनु ॥ २८८ ॥
 आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्तृते ।
 अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गलामये ॥ २८९ ॥
 सोन्मादे वातसंभ्रमे शूले जत्रुषु शस्यते ।

वातव्याधौ बृहल्लघुनपिण्डः ।

चव्याचित्रकतालीसं यवानी धान्यकं वचा ।
 अजमोदाऽश्वगन्धा च दाडिमं चाम्लवेतसम् ॥ २९० ॥
 रास्नाग्रन्थिविडङ्गाह्वमभयाजीरकद्रयम् ।
 क्षारद्रयसमायुक्तं लवणत्रयसंयुतम् ॥ २९१ ॥
 शतमूली नतं कुष्ठं व्योषं पूतीकरञ्जकम् ।
 शतपुष्पाऽजगन्धा च शटीरामठसंयुतम् ॥ २९२ ॥
 निस्तुषं लथुनं कृत्वा द्रव्याणां च चतुर्गुणम् ।
 घृतेन मिश्रितं पिण्डमक्षमात्रं तु भक्षयेत् ॥ २९३ ॥
 आढ्यवाते हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ।
 कोष्ठशीर्षगते वाते सर्वाङ्गानिलसंग्रहे ॥ २९४ ॥
 तूनीप्रतूनीगुल्मेषु सप्तस्वेव क्षयेषु च ।
 कृमिकोष्ठापहारी च ह्यशीतिपवनापहः ॥ २९५ ॥
 क्षीराहारो भवेत्तस्य मांसाहारोऽथवापि वा ।
 पुरुषस्य भवेद्देहस्तप्तहेमसमप्रभः ॥ २९६ ॥
 त्रिफला गन्धकश्चैव गुग्गुलुः समभागतः ।
 कार्या वातारितैलेन गुटिका वातरोगिणाम् ॥ २९७ ॥

वातव्याधौ व्योषाद्या गुटिका ।

व्योषं सग्रन्धिकं पथ्यां चित्रकं जीरकद्रव्यम् ।
 अजमोदां यवानीं च वचां चैवमवल्लुजम् ॥ २९७ ॥
 लवणत्रितयं क्षारौ समभागानि चूर्णयेत् ।
 द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्तं गुग्गुलुं शुभम् ॥ २९८ ॥
 पलार्धसंमितं चात्र योजयेच्चाभ्लवेतसम् ।
 गुटिकैषा हिता वाते साधे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २९९ ॥
 नवं करोति भयं च जठरानलदीपनी ।
 पूजिता देवदेवेन कालपादेन शम्भुना ॥ ३०० ॥

कुष्ठे स्वायम्भुवो गुग्गुलुः ।

शशिरेखा पञ्चपलं तावद्द्विरजश्च गुग्गुलोर्दश च ।
 ताप्यस्य पलत्रितयं द्वे लोहाच्छ्रवणिकायाश्च ॥ ३०१ ॥
 त्रिफलाकरञ्जपल्लवखदिरगुडूचीवचानिवृद्धन्ती- ।
 मुस्ताविडङ्गरजनीचतुरङ्गुलवह्निकुटजैश्च ॥ ३०२ ॥
 पलिकैश्चूर्णमेतन्मूत्रेण गवां पिवेन्नरः प्रातः ।
 कुष्ठी घृतमधुमिश्रं जयत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ३०३ ॥
 श्वित्रार्णि कुष्ठकोठौ विषगः गुल्मोदरप्रमेहांश्च ।
 उन्मादभगन्दरमपस्मृतिश्लेष्मिपदकृमिश्वासान् ॥ ३०४ ॥
 जयति बलीपलीतानि च योगः स्वायम्भुवः प्रोक्तः ।

कुष्ठे धन्वन्तरीया सप्तविंशतिका गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिकटुत्रिफलासुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
 सूक्ष्मैला पिप्पलीमूलं माक्षिकं सुरदारु च ॥ ३०५ ॥
 तुम्बरुः पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्रव्यम् ।
 सौवर्चलं विडं चैव सैन्धवं हस्तिपिप्पली ॥ ३०६ ॥
 द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्तं गुग्गुलुं पचेत् ।
 प्राक्षिप्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३०७ ॥

अजमोदा विडङ्गं च दाडिमं साम्लवेतसम् ।
 बाष्पिका पौष्करं दारु त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ ३०८ ॥
 एषामर्धपलैर्भागैः पलानि दश गुग्गुलोः ।
 संमिश्र्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्वुधः ॥३०९॥
 भक्षयित्वा ससर्पिष्कां जीर्णं च प्रमिताशनम् ।
 वातश्लेष्मविकारेषु नाडीदुष्टत्रणेषु च ॥ ३१० ॥
 श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेतं प्रयोजयेत् ।
 जठरं योनिशूलं च ह्यन्तर्भूतं च विद्रधिम् ॥ ३११ ॥
 पार्श्वशूलं कृमीन् गुल्मान्प्रमेहांशल्यरोचकौ ।
 केवलानिलजान् रोगानशीतिं श्लैष्मिकानपि ॥३१२॥
 सेविता नाशयत्याशु रसायनमनुत्तमम् ।

राक्षायो गुग्गुलुः ।

स्नामृतैरण्डसुराहविश्वं तुल्यं पुरेणाथ विमृद्य खादेत् ।
 तामयी कर्णशिरोगदी च नाडीयुतश्चैव भगन्दरी च ॥३१३॥

आमवाते धन्वन्तरीया द्वात्रिंशका गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिकटुत्रिफलासुस्तं विडङ्गं चित्रकं वचा ।
 चव्यैलापिप्पलीमूलं हृषुषा सुरदारु च ॥ ३१४ ॥
 तुम्बुरुः पौष्करं कुष्ठं विशाला रजनीद्रयम् ।
 बाष्पिका जीरकं थुण्ठी सपत्रा च दुरालभा ॥ ३१५ ॥
 सैन्धवं च विडं क्षारौ विषा चं हस्तिपिप्पली ।
 भागानेषां समान्कृत्वा तुल्यं कृत्वा तु गुग्गुलुम् ॥३१६॥
 ततो वदरमात्रां तु गुटिकां कारयेद्वुधः ।
 मेधावी भक्षयित्वा तां मधुना सह योजिताम् ॥३१७॥
 आम हन्यात्सुदुर्वारमन्नटुद्धिं गुदकृमीन् ।
 आनाहं च तथान्मादं कुष्ठानि गुदजानि च ॥३१८॥
 शुभ्रसीं च हनुस्तम्भपक्षाघातापतानकान् ।
 शोफं ष्ठीहामयं मेहं कामलामरुचिं तथा ॥ ३१९ ॥

नाम्ना द्वात्रिंशको ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान् ।

धन्वन्तरिकृतो योगः सर्वरोगानिषुदनः ॥ ३२० ॥

वातव्याधौ बिल्वाद्यो गुग्गुलुः ।

बिल्वैलापटुहेमचव्यहपुषाद्राक्षकणादाडिमं

मूलं पौष्करमक्षपाक्यमरिचं शुण्ठी यवानी वचा ।

कर्चूरेन्द्रयवाम्लवेतसत्रुटित्वकितन्तिडीकाशिकं

नैम्बं पत्रमजाजियुग्मरुचकं क्षुद्राम्बुधात्रीफलम् ॥ ३२१ ॥

पाठाधान्ययवासदीप्यककणामूलं दलं वाष्पिका

मुस्ता कर्षसमैश्वतुष्पलयुतैः शौद्रस्य जीर्णस्य वै ।

दत्त्वा गुग्गुलुमत्र चाष्टपालिकं कृत्वा वटान्भक्षये-

त्ते जग्था विनिहन्ति वातकफजान् व्याधीनशेषानपि ३२२

अर्शसि योगराजो गुग्गुलुः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।

पाठाविडङ्गभार्गान्द्रयवहिङ्गुवचान्वितैः ॥ ३२३ ॥

सर्षपातिविषाजाजिधान्यकै रेणुकायुतैः ।

गजकृष्णाजमोदाभ्यां कटुमूर्वासमन्वितैः ॥ ३२४ ॥

समभागान्वितैरेतैस्त्रिफला द्विगुणा भवेत् ।

त्रिफलासहितैरेतैः समभागस्तु गुग्गुलुः ॥ ३२५ ॥

एतच्चूर्णीकृतं सर्वं मधुना च परिप्लुतम् ।

योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३२६ ॥

अर्शसि वातगुल्मं च पाण्डुरोगमरोचकम् ।

नाभिशूलमुदावर्तं प्रमेहान्वातशोणितम् ॥ ३२७ ॥

कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम् ।

महान्तमग्निसादं च श्वासकासभगन्दरान् ॥ ३२८ ॥

रेतोदोषाश्च ये पुंसां योनिदोषाश्च योषिताम् ।

निहन्त्याच्चाथु तान्सर्वान्दुर्वारानप्यसंशयम् ॥ ३२९ ॥

एष निष्परिहारस्तु पानभोजनमैथुने ।

सततभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥ ३३० ॥

नाडीव्रणे त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः ।

हन्ति नाडीव्रणक्लेदभगन्दरगलामयान् ।

पिटिकां विद्रधिं गुल्मं गुग्गुलुस्त्रिफलान्वितः ॥ ३३१ ॥

प्रमेहे गोक्षुरगुग्गुलुगुटिका ।

त्रिकटुं त्रिफलां मुस्तं गुग्गुलुं च समांशकम् ।

गोक्षुरकाथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३३२ ॥

देशकालवलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिनीम् ।

न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ३३३ ॥

प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ।

पदरं मूत्रदोषं च मूत्राघातं च नाशयेत् ॥ ३३४ ॥

वातगुल्मे वातरक्ते च कैशोरको गुग्गुलुः ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।

प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ ३३५ ॥

द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ।

संसाधयेत्प्रयत्नादर्व्या संघट्टयेच्च तद्यावत् ॥ ३३६ ॥

अर्धक्षयितं जातं तोयं ज्वलनस्य संपर्कात् ।

अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ ३३७ ॥

सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलस्पर्शे ।

पथ्याचूर्णं द्विपलं त्रिकटुकचूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ ३३८ ॥

कृमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ।

पलमेकं गुड्मूत्र्या दत्त्वा संमूर्च्छयं यत्नेन ॥ ३३९ ॥

संस्थापयेच्च गुप्तं स्निग्धे भाण्डे घृतेन सुरभीणाम् ।

आदाय तस्य मात्रां विहितातिथिदेवताप्रणतिः ॥ ३४० ॥

खादेद्यथाग्निं मनुजो व्याधिवलापेक्षया सम्यक् ।

उपयुज्य चानुपानं यूपं क्षीरं सुगन्धिसलिलं च ॥ ३४१ ॥

इच्छाहारविहारो भेषजकालश्च सर्व एवात्र ।

तनुरोधि वातशोणितमेकद्वित्र्युल्बणं चिरोत्थमपि ॥ ३४२ ॥
 भ्रमस्रुतपरिशुष्कं स्फुटितमपि त्विहन्ति यत्नेन ।
 व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुरोगमेदांसि ॥ ३४३ ॥
 मन्दाग्नित्वविवन्धं प्रमेहदोषांश्च नाशयति ।
 सततं निषेव्यमाणः कालेन निहन्ति रोगगणम् ॥ ३४४ ॥
 अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरिकं रूपम् ।

त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः ।

पलानि काथयेत्पष्टिं त्रिफलायास्तु गुग्गुलोः ।
 पलैः षोडशभिः सार्धमपां द्रोणद्रयेन तु ॥ ३४५ ॥
 चतुर्भागावशेषं तु कृत्वा भूयोऽप्यधिश्रेयत् ।
 यनीभूतं कषायं तु ज्ञात्वा चोद्धृत्य निःक्षिपेत् ॥ ३४६ ॥
 छिन्नान्व्योषविडङ्गानां चूर्णानि पलिकानि च ।
 ततो मात्रां बलापेक्षी भक्षयेद्वातरक्तनम् ॥ ३४७ ॥
 कुष्ठिन श्वित्रिणं चैव गुल्मिनं मेहिनं तथा ।
 बलं मेधां स्मृतिं ज्ञानं तेज आयुर्विवर्धयेत् ॥ ३४८ ॥

गृध्रत्यां कंसाद्यो गुग्गुलुः ।

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम् ।
 प्रस्थेन युक्तं तु पलङ्कपस्य द्रोणे जलस्य स्थितमेकरात्रम् ॥ ३४९ ॥
 अर्धाविशेषं कथितं कषायं भाण्डे पचेत्तं पुनरेव लौहे ।
 अमूनि पश्चादवतार्य दद्याद्द्रव्याणि संचूर्ण्य पलार्धकानि ॥ ३५० ॥
 विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृद्धपूषणाचित्रकाश्च ।
 यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानाहितभोजनानि ॥ ३५१ ॥
 निषेवमाणस्य निहन्ति रोगाञ्जङ्गमगतान्गुध्रासिकादिकांश्च ।
 ग्रीहानमुग्रं जठराणि गुल्मं पाङ्गुल्यकण्डूकृमिवातरक्तम् ॥ ३५२ ॥
 कंसाह्वयो गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितौ तत्प्रथितप्रभावः ।
 बलेन नागेन्द्रसमं मनुष्यं वेगेन कुर्याद्धारिवेगतुल्यम् ॥ ३५३ ॥
 आयुष्पदो हर्षकरोऽतिपथ्यश्चक्षुष्पदः पुष्टिकरो विषघ्नः ।

क्षतस्थ सन्धानकरो विशेषाद्गरेषु शस्तः सकलेषु चैव ॥ ३५४ ॥

गण्डमालायां त्रिफलाया गुग्गुलुटिका ।

त्रिफलात्रिवृतादन्तीनीलिनीचतुरङ्गुलाः ।

एषां तु भिषजा ग्राह्या प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ ३५५ ॥

कुट्टितैः कथितैरेभिश्चतुर्द्रोणप्रमाणतः ।

पचेत्तु सलिलं तावद्यावद्दोणावशेषितम् ॥ ३५६ ॥

पञ्चाशत्तत्र निक्षिप्य गुग्गुलोस्तु पलान्यपि ।

पचेत् पाकघनीभूते त्वगेलानागकेसरम् ॥ ३५७ ॥

त्रिकटुत्रिफलामुस्तयवानीजीरकाणि च ।

पिप्पलीमूलदहनहपुषाकृष्णजीरकम् ॥ ३५८ ॥

वाष्पिका साजमोदा च नित्तिडीकाम्लवेतसौ ।

सौवर्चलं च कृत्वैषां श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ३५९ ॥

पलार्धप्रमितैर्भागैः प्रत्येकं च विचक्षणः ।

ततोऽक्षमात्रां गुटिकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ३६० ॥

गण्डमालार्बुदग्रन्थ्यूस्तम्भोदरपीडितः ।

अनेनैव विधानेन गिरिजं वा प्रयोजयेत् ॥ ३६१ ॥

वातरक्ते बृहत्स्वायम्भुवगुग्गुलः ।

अलम्बुषालोहचूर्णमनयोर्द्वे पले पृथक् ।

पलत्रयं च ताप्युत्थाद्वाकुच्याः पलपञ्चकम् ॥ ३६२ ॥

शिलाजतु तयोस्तुल्यं पलानि दश गुग्गुलोः ।

सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३६३ ॥

शाणं कर्षार्धकर्षं वा ततः खादेत्प्रयत्नतः ।

वातरक्तं च कुष्ठानि श्वित्राणि विविधानि च ॥ ३६४ ॥

अर्शासि क्षुद्ररोगांश्च ग्रहणीं च भगन्दरान् ।

वस्तिजांश्चक्रदोषांश्च पाण्डुतामुदराणि च ॥ ३६५ ॥

शोफश्लीपदमानाहं यक्ष्माणं च विशेषतः ।

नाडीव्रणांश्च सर्वास्तु हन्याद्विद्रधिहृद्दान् ॥ ३६६ ॥

वृष्यो वल्यश्च धन्यश्च केश्यो मेधाश्रिवर्धनः ।
 आयुर्वर्णकरस्त्वच्यः पुत्रसौभाग्यदस्तथा ॥ ३६७ ॥
 गर्भसन्धानकृत्योक्तो गर्भपुष्टिकरः परम् ।
 कालपादेन विख्यातो नाम्ना स्वायंभुवो भुवि ॥ ३६८ ॥

कासे सप्तचत्वारिंशत्तिका गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं कुटजं गजपिप्पलीम् ।
 त्वगोलापत्रहपुषाग्रन्थिकं जीरकद्रव्यम् ॥ ३६९ ॥
 विडङ्गं चित्रकं पाठां त्रायमाणां दुरालभाम् ।
 पटोलेन्द्रयवान् दारु पञ्चैव लवणानि च ॥ ३७० ॥
 यवानीं वाष्पिकां भागीं हरिद्रे सारिवाद्रयम् ।
 दाडिमं पौष्करं धान्यं वचां क्षारद्रयं तथा ॥ ३७१ ॥
 हरेणुकाजमोदं च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।
 सतुम्बूरुणि सर्वाणि कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३७२ ॥
 गुग्गुलुश्च समो देयो हविषा सह योजयेत् ।
 गुटिकामक्षमात्रां तु भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३७३ ॥
 कासं श्वासं तथा शोफमशीस्यथ भगन्दरम् ।
 हृत्पृष्ठपार्श्वशूलं च हन्ति मन्दाग्नितामपि ॥ ३७४ ॥
 आमवातमुदावर्तमेदोवृद्धिगुदकृमीन् ।
 आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठपाण्डुरामयान् ॥ ३७५ ॥
 नाडीदुष्टप्रणान् सर्वान्प्रमेहश्लीपदानपि ।

वातरक्ते कन्थडिका गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिफलातिविषादारुदार्वागुस्ताटरूपकैः ।
 खदिरासननक्ताह्वागुडूचीतृपपादकैः ॥ ३७६ ॥
 भूनिम्बनिम्बकटुकाकलिङ्गकुलकैः समैः ।
 कायं कृत्वा ततः पूर्वं शीतमष्टगुणेऽम्भसि ॥ ३७७ ॥
 गुडूच्याः कारयेत्काथमर्धं शिष्टेऽथ वारिणि ।
 क्षित्वा पुरं नवे भाण्डे स्थापयेद्रजनीमथ ॥ ३७८ ॥

आतपेनैव तीव्रेण कौशिकं परिशोषयेत् ।
 शुष्कस्य तु पलान्यष्टौ तावन्मानं शिलाजतु ॥ ३७९ ॥
 ताप्यचूर्णात्पलं चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ।
 एकीकृतं सुसंक्षुद्य लिह्यात्तं त्रिफलाम्बुना ॥ ३८० ॥
 तनुना मुद्गयूपेण जाङ्गलानां रसेन वा ।
 जीर्णे यूपेण भुञ्जीत पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ ३८१ ॥
 यथारोगं यथासात्म्यं रसैर्यूपैश्च संस्कृतैः ।
 त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ३८२ ॥
 निहन्ति वीर्यतः शीघ्रं कुष्ठरोगं व्रणानपि ।
 छिन्नभिन्नांश्च संधत्ते दरिद्र इव कन्थडीम् ॥ ३८३ ॥

गण्डमालायामष्टावत्वारिंशत्संज्ञा गुग्गुलुटिका ।

त्रिकटुत्रिफलासुस्तं कुटजं गजपिप्पलीम् ।
 त्वगेलापत्रहपुषाग्रन्थिकं जीरकद्रयम् ॥ ३८४ ॥
 विडङ्गं चित्रकं पाठां त्रायमाणां दुरालभाम् ।
 पटोलेन्द्रयवान् दारु पञ्चैव लवणानि च ॥ ३८५ ॥
 यवानीं वाष्पिकां भार्गीं हरिद्रे सारिवाद्रयम् ।
 दाडिमं पौष्करं धान्यं वचां क्षारद्रयं तथा ॥ ३८६ ॥
 पिप्पलीं चाजमोदां च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
 तुम्बरूणि च सर्वाणि कार्षिकान्युपकल्पयेत् ॥ ३८७ ॥
 सूक्ष्मचूर्णीकृतेष्वेषु पलानि दश पञ्च च ।
 महिषाक्षस्य मतिमान् तत्पादेन च माक्षिकम् ॥ ३८८ ॥
 द्रव्यैरष्टोत्तरैश्चत्वारिंशता परिनिर्मितः ।
 गण्डमालापचीग्रन्थिमूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ३८९ ॥
 क्षयाढ्यवातशोफांश्च मन्यास्तम्भं तथाऽर्दितम् ।
 अर्शांसि च प्रमेहांश्च स्थौल्यदोषगुदामयान् ॥ ३९० ॥
 अर्बुदं घ्राणरोगं च बाधिर्यं गृध्रसीं तथा ।
 पूतिनासं प्रतिश्यायं पिटिकां क्षतविद्रधिम् ॥ ३९१ ॥

सोदरामन्नवृद्धिं च जयेदग्निं च दीपयेत् ।

अमृताया गुग्गुलुगुटिका ।

अमृतात्रुटिवेष्टवत्सकं कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।

क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिटिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ ३९२ ॥

शोफादौ गुडार्द्रकगुटिका ।

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा ।

कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥

शोफप्रतिश्यायगलास्यरोगान् सन्धासकासारुचिपीनसादीन् ।

जीर्णज्वराशोग्रहणीविकारान् हन्यात्तथाऽन्यानकफवातरोगान् ॥

गुल्मे आरोग्यलक्षणम् ।

पलानि दश वारुण्याः स्नुक्काण्डात्पलविंशतिः ।

शतं सिंहीफलानां तु कुमार्याश्च पलद्वयम् ॥ ३९५ ॥

अर्कपत्रशतं चैकं शतं पूतीकपत्रकात् ।

महिषाक्षात्पिचुं चैकं रसौनात्पलपञ्चकम् ॥ ३९६ ॥

पलानि पञ्च सिन्धुत्थाच्चिरविल्वत्वचस्तथा ।

सौवर्चलात्तथा त्रीणि व्योषात्पञ्च पलानि च ॥ ३९७ ॥

पलद्वयं तु काचस्य सामुद्रलवणादश ।

पलमेकं विडाल्यस्य कुडवं दरकृष्णतः ॥ ३९८ ॥

यवान्याश्चाजमोदायाः पलार्धं तु पृथक् पृथक् ।

रामठस्य पलं चैकं पलैकं जीरकद्रयात् ॥ ३९९ ॥

कुडवं राजिकायाश्च प्रस्थार्धं चित्रकस्य च ।

सर्वमेकत्र संयोज्य कुट्टयित्वा ह्युलूखले ॥ ४०० ॥

प्रस्थार्धं चार्कदुग्धस्य मार्नी सर्षपतैलतः ।

एकत्र मिलितं कृत्वा चान्तर्धूमं ततो दहेत् ॥ ४०१ ॥

मस्तुना तं पिबेत्क्षारं कषार्धं कर्षमेव वा ।

गुल्मं शूलं तथाऽऽनाहमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ ४०२ ॥

हृद्रोगं ग्रहणीदोषमञ्जोर्जीर्णं विसृचिकाम् ।

अष्टीलामूर्ध्ववातं च वातकुण्डलिकां तथा ॥ ४०३ ॥
 मूत्रग्रन्थि प्रतिश्यायं कासं श्वासं तथाऽश्मरीम् ।
 स्त्रीहानमामदोषांश्च वातश्लेष्मोद्भवान् गदान् ॥ २०४ ॥
 आरोग्यलवणं हन्यात् सन्नस्याग्नेश्च दीपनम् ।

गण्डमालायां काञ्चनारगुग्गुलुः ।

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः ।
 षट्पला त्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम् ॥ ४०५ ॥
 पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा ।
 कर्षकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ ४०६ ॥
 सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ।
 संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधः ॥ ४०७ ॥
 भक्षयेत्प्रातरेकैकामनुपानविशेषतः ।
 गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ४०८ ॥
 ग्रन्थीवृणां सगुल्मांश्च विद्रधिं च भगन्दरम् ।
 अनुपाने प्रयोक्तव्यः काथो मुण्डीसमुद्भवः ॥ ४०९ ॥
 काथो वा खदिरस्याथ पथ्याकाथोऽथवा जलम् ।

गण्डमालायां काञ्चनगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणा मताः ॥ ४१० ॥
 तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ।
 एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः ॥ ४११ ॥
 क्षौद्रस्य च ततो दद्याद्दश भागान् विचक्षणः ।
 सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च ॥ ४१२ ॥
 नाडीत्रणे विद्रधौ च गुटिकेयं प्रशस्यते ।

क्षतक्षीणे सर्पिर्गुटिका ।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्ध्वभकजीवकैः ।
 वीरिधिक्षीरकाकोलीबृहतीकपिकच्छुभिः ॥ ४१३ ॥
 खर्जूरफलमेदाभिः क्षीरपिष्टैः पलोन्मितैः ।
 प्रस्थैर्धात्रीविदारीक्षुरसैः प्रस्थं घृतात्पचेत् ॥ ४१४ ॥

शर्कराऽष्टपलं शीते क्षौद्रार्धप्रस्थमेव च ।

दत्त्वा सर्पिर्गुडान् कुर्यात्कासहिक्काज्वरापहान् ॥४१५॥

यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् ।

शुक्रनिद्राक्षयं तृष्णां हन्युः काश्यं सकामलम् ॥४१६॥

क्षतक्षीणे क्षीरादिलेहगुटिका ।

विदारीस्वरसं नीत्वा चतुष्पलमितं भिषक् ।

प्रस्थं तित्तिरिमांसस्य रसात् प्रस्थं घृतस्य च ४१७ ॥

प्रस्थद्वयं गवां क्षीरं रसादिक्षोस्तथाऽऽढकम् ।

पाकार्थं प्रक्षिपेद्गण्डे तत्र कल्कमिमं क्षिपेत् ॥ ४१८ ॥

जीवन्ती चैव काकोल्यौ द्वे मेदे मधुकं तथा ।

जीवकर्षभकौ मुद्गमाषपण्यौ प्रमाणतः ॥४१९ ॥

प्रत्येकं तत्पलार्धं स्यात्पियालस्य चतुष्पलम् ।

चतुष्पलं मधुकानां द्विपला वंशलोचना ॥४२० ॥

प्रधुयष्ट्या भवेत् कर्षो ह्यक्षमज्जापलं तथा ।

कणापलं च खर्जूरात् पलानां विंशतिः स्मृता ॥४२१॥

कल्कं संपेषयेदिक्षो रसैः पूर्वद्रवे क्षिपेत् ।

मन्दाग्निपाचनाल्लेहीभूते शीते क्षिपेत्सिताम् ॥ ४२२ ॥

विंशत्पलप्रमाणां तु मधुनोऽष्टपलं तथा ।

अजार्जामरिचानां तु पलमेकं नियोजयेत् ॥ ४२३ ॥

क्षीरादिलेहपूर्वा तु गुटी हिक्काज्वरापहा ।

यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् ॥ ४२४ ॥

शुक्रनिद्राक्षयं तृष्णां हन्यात्काश्यं सकामलम् ।

प्रभावतीवटिका ।

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ॥ ४२५ ॥

भद्रमुस्ता विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम् ।

सैन्धवं चित्रकं चैव कुष्ठं पाठा हरीतकी ॥ ४२६ ॥

एतानि समभागानि छागमूत्रेण पेषयेत् ।

गुटी कोलास्थिमाना च छायाशुष्का प्रभावती ॥४२७॥

अग्निमुखवटी ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।
 त्रयो भागा विडङ्गानां सैन्धवं च चतुर्गुणम् ॥ ४२७ ॥
 अजाज्याः पञ्चभागाश्च षड्भागाश्चैव नागरात् ।
 मरिचात् सप्त भागाः स्युः पिप्पली चाष्टभागिका ॥ ४२८ ॥
 कुष्ठं नवगुणं प्रोक्तं दशभागा हरीतकी ।
 एकादश तथा वहेर्भागा द्वादश दीप्यकात् ॥ ४२९ ॥
 गुडेन द्विगुणेनैव गुटिकां कारयेद्बुधः ।
 ततो वातरुजातानां नित्यमेव प्रयोजयेत् ॥ ४३० ॥

श्वासादौ सूर्यचन्द्रप्रभागुटिका ।

त्रिकत्रयं हरिद्रे द्वे तिक्ता तिक्तं शटी वचा ।
 वेङ्गचित्रकतालीसभार्गीपद्मकजीरकम् ॥ ४३१ ॥
 द्वौ क्षारौ पिप्पलीमूलं पट्टनि त्रीणि तुम्बरु ।
 देवदारु वचा चर्व्यं धान्यकं गजपिप्पली ।
 वत्सकातिविषादन्तीश्यामापुष्करकामृताः ॥ ४३२ ॥
 भागोऽमीषां सूक्ष्मचूर्णीकृतानां
 भागश्चार्धो माक्षिकादेय एव ।
 तद्द्रव्यंश्या, भागवृद्ध्या परे स्यु-
 रभ्रं लोहं शैलजं कौशिकश्च ॥ ४३३ ॥

संमर्द्य गुटिका कार्या सूर्यचन्द्रप्रभाभिधा ।
 पूर्वाह्ने तां प्रयुञ्जीत माक्षिकेण परिप्लुताम् ॥ ४३४ ॥
 अनुपाने प्रयुञ्जीत तक्रं मधु रसोत्तमम् ।
 क्षीरं बदरतोयं वा शर्करामिश्रितं जलम् ॥ ४३५ ॥
 घृतं मूत्रं तथा चाम्लस्वादुदाडिमजं रसम् ।
 कासं श्वासं तथा शोषमरुचिं पार्श्ववेदनाम् ॥ ४३६ ॥
 अर्शासि कामलां मेहं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।

हृद्रोगं मूत्रकृच्छ्रं च श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥ ४३७ ॥
 यकृत्प्लीहाभिवृद्धिं च कृमिं ग्रन्थिं भगन्दरम् ।
 श्लीपदं गण्डमालां च व्रणान्नाडीव्रणानपि ॥ ४३८ ॥
 अतिस्थौल्यातिकाश्ये च विद्रधीन्पिटिकामपि ।
 नासानेत्राश्रितात्रोगान् शिरोरोगान् सुदारुणान् ॥ ४३९ ॥
 मुखरोगानशेषांश्च रक्तपित्तं स्वरक्षयम् ।
 ज्वरं च सन्निपातोत्थं विषमं चापि पैत्तिकम् ॥ ४४० ॥
 विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान् ।
 निजानृतुभवांश्चैव ये चान्ये नात्र कीर्तिताः ।
 तांस्तान् प्रशमयत्येषा वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४४१ ॥

मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-

मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।

स्त्रीषु महर्षं बलमिन्द्रियाणा-

मग्नश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्ता ॥ ४४२ ॥

अतीसारे विशल्या गुटिका ।

फलत्रयं त्र्यूषणजीरकं च कुबेरसंज्ञं पलमात्रमेतत् ।
 पलद्वयं नूतनधूर्तपत्न्याः कर्षककं चैव विषस्य योज्यम् ॥ ४४३ ॥
 पलार्धमात्रं करभस्य चूर्णं ततः समेनैव गुडेन योज्यम् ।
 गुटी निबद्धा चणकप्रमाणा नियोजनीया हि सदाऽतिसारे ४४४
 चतुर्विधाजीर्णभयापहन्त्री स्मृता विशल्या गुटिकेति नाम्ना ४४५

त्रोटहरी गुटिका ।

शुण्ठीसक्तुपुनर्नवात्रिफालिकासैरेयशेफालिका-

मुस्तावासकनिम्बपत्रकटुकाबोलाश्वगन्धावचाः ।

व्योषच्छिन्नरुहाविडङ्गसहिताः सर्वाः समांशा बुधै-
 र्विंशांशा च महौषधी परिमिता खण्डस्य विंशांशकाः ४४६

तत्तुल्येन च गोघृतेन मधुना सर्वं च संमर्दितं

बद्धा तेन शिवाप्रमाणगुटिका श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ।

क्षीणस्यानिलजाग्निहन्ति सहसा सर्वप्रमेहांस्तथा

नाम्ना त्रोटहरी गुटी च विजया लोके च या विश्रुता ४४७

कासे चन्द्रप्रिया गुटिका ।

चन्द्रप्रिया लोमशगन्धवत्यौ कटुत्रिकं तिक्तकरोहिणी च ।

भूनिम्बभाग्यौ गिरिमल्लिका च समानभागं खलु सर्वद्रव्यम् ।

वासारसेनाथ गुटी विधेया मुदुस्तरे चाशु निहन्ति कासम् ॥४४८

मुखरोगे खदिरगुटी ।

जातीफलैलादलकुङ्कुमानि लवङ्गकङ्कोलकपुष्कराणि ।

वराङ्गकर्चूरयुतान्यमूनि समानि भागानि निशाकरस्य ॥४४९॥

भागद्रयं स्यान्मृगनाभिजायाः सपूतिकायाः खलु तुर्यभागः ।

षष्टिविभागाः खदिरस्य साराद्भागत्रयं तत्र वरस्य दद्यात् ॥४५०॥

एकीकृतं घृष्टमुचन्दनेन सुकामिनीहस्ततलैः प्रमर्द्य ।

सुवासितं पुष्पचयैः सुगन्धैर्वटी कृता स्यान्मुखरोगहृत्त्री ॥४५१॥

स्त्रीणां प्रमोदं विपुलं ददाति मुखं सुगन्धं विशदं करोति ।

युवाऽतिरेताः सुभगो जनानां प्राणप्रियः स्यादतिकामिनीनाम् ॥

कण्ठं विपञ्चीनिनदेन तुल्यं करोत्यसौ खादिरसंज्ञका वटी ४५३

मुखरोगे द्वितीया खदिरगुटिका ।

पद्माहवक्रागुरुकुङ्कुमैश्च तुल्यांशकैः क्षुण्णशिलाविपिटैः ।

सर्वैः समः स्यात्खादिरस्य सारः सारङ्गदर्पस्फटिकाधिवासः ४५४

बलप्रमाणा गुटिका विधेयास्ताः सेविता घ्नन्ति कफप्रमेहम् ।

हिक्काग्रिसादारुचिपीनसांश्च रोगानशेषान् खलु चास्यजातान् ॥

सूताभ्रहेमसाहितां पूर्वोक्तां भक्षयेत्पातः ।

नाम्ना खादिरवटिका कथितेयं सिंहगुप्तेन ॥ ४५६ ॥

वातरोगे त्वगाद्या गुटिका ।

त्वगोले गन्धकं चैव गुग्गुलुं समभागतः ।

कुर्याद्वातारितैलेन गुटिकां वातरोगिणाम् ॥ ४५७ ॥

रसायनार्थे विजयागुटिका ।

पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य तथैव तु ।

एलात्वक्पत्रमुस्तानां भागोऽर्धपलिकः स्मृतः ॥ ४५८ ॥

व्योषं चाथ कणामूलं विषं च पलमात्रकम् ।

नागकेसरचूर्णं तु कर्षं दद्याद्विचक्षणः ॥ ४५९ ॥

रेणुकार्धपलं चात्र रसस्य कर्षमेव च ।

एतत्संभृत्य संभारं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ ४६० ॥

गुडस्यार्धतुलां दत्त्वा दर्व्या सम्यग्विघट्टयेत् ।

ततस्तु गुटिकाः कृत्वा तस्मात्षष्टिशतत्रयम् ॥ ४६१ ॥

एकैकां भक्षयेत्प्रातः कृताहारो यथाबलम् ।

मासेन पलितं हन्ति करोत्यग्निं द्वितीयके ॥ ४६२ ॥

शुक्रवृद्धिं तृतीये तु बलवर्णप्रसादनम् ।

हन्यष्टादश कुष्ठानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४६३ ॥

प्लीहानं श्वासकासौ च हृन्नवृद्धिमरोचकम् ।

अशीतिं वातजान्त्रोगान्मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ४६४ ॥

प्रमेहान्विशतिं चैव तथाऽर्शासि गलग्रहम् ।

सर्पलृताविषं हन्ति सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४६५ ॥

योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् ।

बलेन गजतुल्योऽसौ वेगेन तुरगोपमः ॥ ४६६ ॥

मायूरस्तु भवेदग्निर्वाराहश्रोत्र एव च ।

चटकः स्त्रीविलासेन गृध्रदृष्टिश्च जायते ॥ ४६७ ॥

उपयोगात्परं जीवेन्नरो वर्षशतत्रयम् ।

न चान्ने परिहारोऽस्ति न चाध्वनि न मैथुने ॥ ४६८ ॥

(ग्राम्यधर्मं च कुर्वाणो भोजनं च यथेच्छया ।)

विजया नाम गुटिका विख्याता रुद्रभाषिता ।
भक्षयन्ति नरा ये तु तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥ ४६९ ॥

चातरोमे योगोत्तमा गुटिका ।

त्र्युषणं त्रिफला क्षारौ लवणान्यथ चित्रकम् ।
तालीसं चविकं शृङ्गी निक्षे द्वे गजपिप्पली ॥ ४७० ॥
एला त्वचं विडङ्गानि पौष्करं नागकेसरम् ।
ताप्यकं दीप्यको मुस्ता समभागानि कारयेत् ॥ ४७१ ॥
द्रव्याप्येतानि यावन्ति तावन्मात्रमयोरजः ।
तावच्छिञ्जलाजतुर्देयः सर्वैस्तुल्यस्तु गुग्गुलुः ॥ ४७२ ॥
संकुट्य गुटिकां कुर्यादक्षमात्रप्रमाणतः ।
खादेन्ना मधुना युक्त्या तोयक्षीररसाशनः ॥ ४७३ ॥
निर्यञ्चितं सदा भोज्यं सर्वर्तुषु निरत्ययम् ।
अशीतिं वातजात्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ४७४ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ।
उदराणि तथा चाष्टौ श्वयथुं पवनात्मकम् ॥ ४७५ ॥
विंशतिं मूत्रकृच्छ्राणि दुष्टनाडीत्रणानि च ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४७६ ॥
कासं श्वासं तथा हिक्कां हृच्छूलं छर्धरोचकम् ।
गुल्मांश्च पाण्डुरोगं च जयेत्पञ्च प्रकारजम् ॥ ४७७ ॥
चत्वारो ग्रहणीदोषाः षडशीसि तथैव च ।
सर्वास्तान्नाशयत्याशु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ४७८ ॥
अर्बुदं गण्डमालां च विद्रधि सभगन्दरम् ।
हरते सर्वरोगांश्च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
योगोत्तमेति विख्याता गुटिका वैद्यपूजिता ॥ ४७९ ॥

प्रमेहे कर्पूरादिगुटिका ।

कर्पूरशृङ्गावाथ धूर्तबीजं जातीफलं लोहमृताभ्रकं च ।
रसोऽथ गन्धं त्रपु नागशुल्बे एला विषं धान्यकट्टात्रिकं च ॥४८०

तालीसपत्रं त्वथ नागपुष्पं तमालपत्रं कपिकच्छुबीजम् ।
 सत्त्वं गुड्याः क्षुरकस्य बीजं वटी विधेया सितया समेता ॥ ४८१ ॥
 वातप्रमेहं सकफं सपित्तं श्वासं च कासं बहुसन्निपातान् ।
 बलं च हीनं स्वरभङ्गजाड्यं निहन्ति कामं खलु दीपयन्ती ४८२

गुल्मे गुडवटकाः ।

गुडविश्वौषधपथ्यामागधिकादाडिमैः कृता गुटिका ।
 विनिहन्ति भक्ष्यमाणा गुल्माशौवहिसादगदान् ॥ ४८३ ॥

पाण्डुरोगे क्षारवटकाः ।

शृङ्गवेरविडङ्गानि पिप्पली मरिचानि च ।
 नीलीपत्रं पृथक्पर्णी हरिद्राद्रयमेव च ॥ ४८४ ॥
 मञ्जिष्ठा भद्रमुस्तं च शिशुबीजानि चित्रकम् ।
 देवदारु वचा दन्ती त्रिफला हस्तिपिप्पली ॥ ४८५ ॥
 शालिपर्णी च मूर्वा च द्राक्षा कटुकरोहिणी ।
 शक्रबीजं सभल्लातं बृहत्यौ द्वे दुरालभा ॥ ४८६ ॥
 शतावरी विशल्या च पाठा भार्गी हरेणुका ।
 एतानि समभागानि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥ ४८७ ॥
 यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्यादयोरजः ।
 क्षारं च यावश्कानां ततो द्विगुणमावपेत् ॥ ४८८ ॥
 गोमूत्रसंयुतान्कुर्याद्द्वटकानक्षसंमितान् ।
 खादेदेकं ततो द्वौ वा मुखं चाशु पिबेज्जलम् ॥ ४८९ ॥
 अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।
 श्वयथुं श्वासकासौ च कृमिदोषांश्च नाशयेत् ९ ४९० ॥
 व्याधितस्य बलं ज्ञात्वा गवां मूत्रेण दापयेत् ।
 पाण्डुरोगं निहन्त्याशु ब्रह्मदण्ड इवोद्धतम् ॥ ४९१ ॥
 वटकाः क्षारपूर्वास्तु प्रयोज्याः सिद्धिमिच्छता ।
 एष शङ्करणो योगो वैद्यानामर्थकृत्तथा ॥ ४९२ ॥

कुष्ठे पश्यावटकाः ।

पथ्यां सेन्द्रयवां सर्किशुकफलां सार्कां तथाऽऽवर्तकीं
 व्याधिघ्नैः तु योजितां हुतभुजा सारुष्करां बाकुचीम् ।
 तद्वच्च क्रिमिशत्रुणाऽप्युपगतमैकैकवृद्धानिमान्
 गोमूत्रेण विमृद्य तुल्यतुवरान्कुष्ठी वटान्भक्षयेत् ॥ ४९३ ॥
 निहन्ति हतनासिकाकरजकर्णपादाङ्गुलि-
 क्षरद्दुधिरपूतिपूयपरिजग्धजन्तुवृणान् ।
 मभिन्नचिरलक्षितस्वरमशेषकुष्ठं मह-
 निहन्ति कुस्तेऽरुणाकर्ववपुषं नरं योगतः ॥ ४९४ ॥

ज्वरे फलत्रिकाद्यो मोदकः ।

फलत्रिकगुडव्योषशर्करात्रिवृताकृतम् ।
 मोदकं भक्षयित्वाऽनुपिवेत्कोष्णं जलं पुनः ।
 पार्श्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ ४९५ ॥

रसायने त्रिफलाद्या वटकाः ।

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश संहरेत् ।
 सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलत्रयम् ॥ ४९६ ॥
 पलानि दश बाकुच्याः शतं भ्रूजातकात्तथा ।
 शिलाजतु पलद्वन्द्वं गुग्गुलोस्तु पलद्वयम् ॥ ४९७ ॥
 पलं पुष्करमूलस्य पलार्धं तु फलस्य च ।
 ग्रन्थिकाश्री मरीचं च पिप्पलयो विश्वभेषजम् ॥ ४९८ ॥
 त्वक्पत्रं कुङ्कुमं मुस्ता नागकेसरमेव च ।
 यष्टीमधुकराश्रं च कार्ष्णिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ४९९ ॥
 यावन्त्येतानि सर्वाणि तावत्खण्डं प्रदापयेत् ।
 पलिकान्वटकान्कुर्यात्सर्वव्याधिविनाशनान् ॥ ५०० ॥
 एकैकं भक्षयेत्प्रातर्यथेष्टं चात्र भोजनम् ।
 ग्रीहमर्शास्यतीसारं वातगुल्मं भगन्दरम् ॥ ५०१ ॥
 कुष्ठानि चैव सर्वाणि सप्तरात्राद्बपोदति ।

एतत्सर्वं प्रयुञ्जानो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ ५०२ ॥

अश्चौ लाजाद्यो मोदकः ।

द्वादशाष्टचतुस्त्रिंशच्चेकार्धार्धसमायुतैः ।

लाजैस्तुगातिन्तिडीककोलव्योषत्रिजातकैः ।

सचन्द्रा मोदका रुच्याः क्रमाद्विगुणशर्कराः ॥ ५०३ ॥

त्रिफलाद्या गुटिका ।

त्रिफलावदराणां स्याद्बोषस्य च पलद्वयम् ।

कर्पूरकर्षो लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ५०४ ॥

एलात्वक्पत्रकाणां तु पलं स्याद्रंशरोचना ।

पलाष्टिकाऽम्लवेत्रश्च चतुष्पल उदाहृतः ॥ ५०५ ॥

चूर्णाद्विगुणखण्डं स्याद्द्रव्या वमिहरा परम्

यक्षमाणं रक्तपित्तं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ५०६ ॥

अर्शासि चित्रकगुटिकाः ।

चित्रकस्य पलं दत्त्वा त्रिवृतोऽर्धपलं तथा ।

कणाकर्षो गुडस्याष्टौ पलानि समुपाहरेत् ॥ ५०७ ॥

विंशतिश्च हरीतक्यो गुटिका दश कारयेत् ।

दशमे दशमे चाहि त्वेकैकां भक्षयेत् सुधीः ॥ ५०८ ॥

मण्डलानि च कण्डूश्च हर्शासि ग्रहणीं जयेत् ।

प्रमेहे वामदेवेन कथिता गुटिका ।

कटुत्रिकं वचा मुस्ता विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ ५०९ ॥

एतानि समभागानि पथ्या च द्विगुणा विषात् ।

पञ्चत्रिंशद्गुडाद्रागाः काथयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ५१० ॥

कोलमाना गुटी ह्येषा हन्ति मेहं विशेषतः ।

मन्दाग्निमामवातं च लालामेहं सगुल्मकम् ॥ ५११ ॥

गुग्गुलगुटिका ।

गुग्गुलुकुडवादर्थं ककुभत्वगयोरज्ञोविडङ्गानि ।

भल्लातकगोधुरकौ त्रिवृता त्रिफला द्वितीयार्धम् ॥ ५१२ ॥

भुक्तवैनां गुटिकां यथेष्टचरितः षण्मासयोगात्पुमान्
सव्याधीन्सभगन्दरान्सपिटिकानर्शासि दुष्टव्रणान् ।
खालित्यं पलितं जरामपि तनोर्जित्वा प्रदीप्तानलः
सौभाग्यात्सुखो निरामयतनुर्जीवेत्समानां शतम् ॥ ५१२ ॥

शोफे लघुत्रिफलागुग्गुलुगुटिका ।

गुग्गुलुस्त्रिफला कृष्णा पञ्चनेत्रत्रिभागिकाः ।
गुटिकाः शोषगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिताः ॥ ५१३ ॥

वातव्याधौ पृथुत्रिफलाया गुग्गुलुगुटिका ।

त्रिफला ह्रुषा मुस्तं चविका चित्रकः शटी ।
यवानीग्रन्थिकव्योषसौवर्चलदुरालभाः ॥ ५१४ ॥
अजमोदा विडङ्गं च दाडिमं साम्लवेतसम् ।
बाष्पिका पौष्करं दारु त्वगोलापत्रकेसरम् ॥ ५१५ ॥
एषामर्धपलैर्भागैः पलानि दश गुग्गुलोः ।
संमिश्र्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ५१६ ॥
भक्षयित्वा ससर्पिष्कां जीर्णे च प्रमिताशनम् ।
वातश्लेष्मविकारेषु नाडीदुष्टव्रणेषु च ॥ ५१७ ॥
श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेनं प्रयोजयेत् ।
जठरे योनिशूलेषु त्वन्तर्भूतं च विद्रधिम् ॥ ५१८ ॥
पार्श्वशूलं कृमीन् गुल्मान्प्रमेहान् छर्धरोचकौ ।
केवलानिलजात्रोगानशीतिं श्लैष्मिकानपि ।
विंशतिं नाशयत्याशु रसायनमनुत्तमम् ॥ ५१९ ॥

गुरुमे त्रिवृताद्या गुटिका ।

त्रिवृत्पलं हिङ्गुकर्षस्त्रिभारस्य पलत्रयम् ।
यवानीभरिचाजाजीधान्यकं शितिवारकम् ॥ ५२० ॥
उपकुञ्जीविडङ्गाजमोदाश्चार्धपलोन्मिताः ।
पृथक्पलद्वयं दद्यादम्लवेतसजं रजः ॥ ५२१ ॥
मातुलङ्गरसेनैषां गुटिकां कारयेद्भिषक् ।

पिवेत्क्षीरेण मन्थैर्वा सर्पिषाऽम्लैः सुखाम्बुना ॥ ५२२ ॥

काङ्कायनेन गुटिका संसोक्ता गुल्मनाशिनी ।

कफजं तु गवां मूत्रैः पयसा पित्तसंभवम् ॥ ५२३ ॥

त्रिफलारसमूत्रैस्तु निहन्यात्सान्निपातिकम् ।

रक्तगुल्मे तु नारीणामुष्ट्रीदुग्धेन वा पिवेत् ॥ ५२४ ॥

कृष्णाद्या गुटिका ।

शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभयानां पलं पलम् ।

गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ५२५ ॥

इति श्रीवैद्यसोढलप्रथिते गदानिग्रहे गुटिकाधिकारश्चतुर्थः समाप्तः ।

अथातः पञ्चमो लेहाधिकारः प्रारभ्यते ।

अर्शासि पथ्यावलेहः ।

श्यामागुड्गुच्यामलचित्रकाणां भागान् पलानां शतसंमितांश्च ।

सर्वान्पृथक्संपरिकल्प्य युक्त्या द्रोणद्वयेऽपां तु विपाच्य पात्रे ॥ १ ॥

लौहे दृढे मन्दहुताशने च पादावशिष्टं विधिवद्विभिन्नः ।

भूयः पचेत्तं तुलया गुडस्य शुक्लेन वस्त्रेण विशोधितस्य ॥ २ ॥

चूर्णीकृतैर्जीरकयुग्मदन्तीपाठात्रिवृत्रयूषणग्रन्थिकाहैः ।

धान्याजमोदेभकणायवानीभल्लातकारुष्यैश्च पलप्रमाणैः ॥ ३ ॥

प्रस्थत्रयेणाथ हरीतकीनामैकध्यमालोड्य शनैस्तु दर्व्या ।

ज्ञात्वा सुपकं रसगन्धवर्णैः कुम्भे निदध्यात्रिसुगन्धियुक्तम् ॥ ४ ॥

प्रस्थार्धयुक्तं मधुनोऽत्र शीते भल्लातकास्थिप्रभवाच्च तैलात् ।

दत्त्वा पलार्धं यवशूकजस्य चाष्टौ पलान्येव सितोपलायाः ॥ ५ ॥

एनं लिहेदक्षफलप्रमाणमर्शोविकारी प्रसमीक्ष्य वह्निम् ।

कुष्ठानि सर्वाणि निहन्ति हिक्रां श्वासं च कासारुचिपाण्डुरोगान् ।

मन्दानलत्वं ग्रहणीविकारान् गुल्मान्सशोफानुदरामयांश्च ।

शूलानि यक्ष्माणमसृक्प्रवृत्तिं पथ्यावलेहोऽयामिति प्रदिष्टः ॥ ७ ॥

अर्शसि चित्रकावलेहः ।

चित्रकस्य शतं दद्यात्तुल्यो ग्रन्थिको मतः ।
 पञ्चाशदशमूलस्य शेषान् पञ्चपलान् पृथक् ॥ ८ ॥
 बलां भाङ्गीं शटीं पाठां पौष्करं मूलमेव च ।
 चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषे तथैव च ॥ ९ ॥
 पचेद्दृडशतं दत्त्वा लेहवत्साधु साधयेत् ।
 चतुष्पलं तु पिप्पल्यास्तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ॥ १० ॥
 त्रिजाताच्च पलं चैकं मरिचस्य पलं तथा ।
 सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दर्व्या सम्यग्विघट्टयेत् ॥ ११ ॥
 पलमात्रं ततः खादेत्प्रीहगुल्मोदराशसि ।
 हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं शीतार्तिं चाम्लपित्तकम् ॥ १२ ॥
 भारद्राजेन संप्रोक्तो लेहश्चित्रकसंज्ञकः ।

अर्शसि चित्रकावलेहः ।

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं
 साध्यं यावत्पाददलस्थमथेदम् ।
 अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि
 काथ्यं भूयः सान्द्रतया समवेतम् ॥ १३ ॥
 त्रिकडुकमिशिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग-
 कृमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः ।
 जयति गुदजकुष्ठप्रीहगुल्मोदराणि
 मबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः ॥ १४ ॥
 रक्तापित्ते कूष्माण्डकावलेहः ।

शतं पलानि कूष्माण्डात् सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
 पचेत्तप्ते घृतमस्थे पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ १५ ॥
 यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं क्षिपेत् ।
 पिप्पलीशृङ्गवेराच्च द्वे पले जीरकस्य च ॥ १६ ॥
 त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्धकम् ।
 न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत्ततः ॥ १७ ॥

तत्पक्वं स्थापयेद्ग्राण्डे क्षौद्रं दत्त्वा घृतार्धकम् ।
 तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ १८ ॥
 श्वासकारुचिच्छर्दिर्दृष्णाज्वरनिपीडितः ।
 पुनर्नवकरं वृष्यं बलवर्णप्रसादनम् ॥ १९ ॥
 उरःसन्धानकृद्दृढं बृंहणं स्वरबोधनम् ।
 अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ २० ॥

रक्तपित्ते खण्डकूष्माण्डकावलेहः ।

प्रस्थेनाज्यस्य भृष्टं पलशतमलघुच्छिन्नकूष्माण्डकस्य
 पक्तव्यं खण्डतुल्यं मधु शिशिरतरे तत्र दद्याद्घृतार्धम् ।
 व्योषं धान्यं सजीरं प्रसृतिमितमथ स्याच्चतुर्जातकं च
 प्रक्षेप्यं रक्तपित्तं हरति बलकरः खण्डकूष्माण्डकोऽयम् ॥ २१ ॥

अर्शसि खण्डसुणावलेहः ।

कूष्माण्डकविधानेन शस्यते मूर्खं सदा ।
 अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २२ ॥

गुडकूष्माण्डकावलेहः ।

शतं पलानि कूष्माण्डात्सुस्विन्नं निष्कूलीकृतम् । ।
 प्रस्थं तैलघृतादियं तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत् ॥ २३ ॥
 त्वक्पत्रधान्यकं व्योषं जीरकैलाह्वयानलम् ।
 ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीशृङ्गवेरकम् ॥ २४ ॥
 शृङ्गाटकं कसेरुं च पेलवं तालमस्तकम् ।
 चूर्णीकृत्य पलांशेन गुडस्य तुलया पचेत् ॥ २५ ॥
 शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत् ।
 कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च दीपनम् ॥ २६ ॥
 कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणशुत्तमम् ।
 प्रमदासु प्रसक्तानां ये चान्ये क्षीणरेतसः ॥ २७ ॥

१. अस्याग्रे 'क्षौद्रार्धकां सितां केचित् केचिद्द्राक्षां सितार्धकाम् । द्राक्षार्धानि
 लवणानि मनाक् कर्पूरकं क्षिपेत्' इति योगरत्नाकरेऽधिकः पाठः ।

क्षयेणैव गृहीतानां परमुक्तं भिषग्जितम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम् ॥ २८ ॥
गुडकूष्माण्डकः ख्यातः कृष्णात्रेयेण पूजितः ।

शोषे एलायवलेहः ।

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनसारशालान् ।
विडङ्गभलातकचित्रकोग्राकटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रजांश्च ॥ २९ ॥
पक्त्वा जलेनैव पचेद्भि सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलं चात्र सितोपलाया दद्यात्तुगायाश्च पलानि षट्च ३०
प्रस्थं घृतस्य द्विगुणं च कुर्यात्क्षौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात् ।
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्यात्पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ ३१ ॥
एतद्भि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति चैव पाण्डुरामयं चैव भगन्दरं च ॥ ३२ ॥
श्वासं च हन्ति स्वरभेदकासं हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ।
न चात्र किञ्चित्परिवर्जनीयं रसायनं चैतदुपास्यमानम् ॥ ३३ ॥

अर्शासि भलातकावलेहः ।

भलातकसहस्रं तु द्रोणेऽपां विधिवत्पचेत् ।
ततः पदावशिष्टं तु पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ३४ ॥
गुडस्य तु तुलां दत्त्वा तत्र भूयो विपाचयेत् ।
त्र्युषणं त्रिफला दन्ती चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ३५ ॥
चव्याजमोदापाठाश्च पिप्पलीमूलमेव च ।
एपां द्विपालिकान्भागान् सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३६ ॥
लेहीभूते ततः पश्चात्प्रक्षिपेन्मतिमान्भिषक् ।
शीतीभूते ततः पश्चात्तुर्जातपलं क्षिपेत् ॥ ३७ ॥
उदुम्बरसमां मात्रां खादयेच्च यथाबलम् ।
अर्शासि ग्रहणीदोषं प्लीहानं विषमज्वरम् ॥ ३८ ॥
कुष्ठगुल्मोदरं हन्ति मन्दाशित्वमरोचकम् ।
कासश्वासहरो हृद्यो भलातकगुडः स्मृतः ॥ ३९ ॥

ग्रहण्यां कल्याणको गुडावलेहः ।

प्रस्थत्रये ह्यामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य ।
 चूर्णांकृतैर्ग्रीन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहपुपाजमोदैः ॥ ४० ॥
 विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाभिधान्यैश्च पलप्रमाणैः ।
 दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टौ ह्यष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ४१
 तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टस्त्रिगुण्ण्धिपुक्तम् ।
 अनेन सर्वे ग्रहणीविकारः सन्धासकासस्वरभेददोषाः ॥ ४२ ॥
 पाण्डुरं गुल्मभगन्दरार्तिमेदःसमुत्थं च विकारजातम् ।
 शाम्यन्ति, चायं चिरमन्दवहेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ४३
 स्त्रीणां च बन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः

भृष्टेषत्रिहृतां तैले त्रिगुण्ण्धि पिचुं पिचुम् ।

सिद्धे विधेयमत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ४४ ॥

कार्ष्णे पञ्जरीरकावलेहः ।

कुस्तुम्बयौ यवानी समरिचमगधा दीप्यकाजाजिचव्याः
 पथ्या श्यामाहमूलं कृमिहरहपुषे कारवी सातला च ।
 शुष्ठीवन्दाकनागोद्भवशतकुसुमा मेथिका चाक्षभागाः
 कंसेलाद्भागयुग्मं सकलगणमिदं चूर्णयेदौषधानाम् ॥ ४५ ॥
 सर्पिःप्रस्थं प्रदद्याद्दृढपलदशभिः साधयेन्मन्दवह्नौ
 क्षीरप्रस्थैश्चतुर्भिः स च सकलगदान्हन्ति युक्तस्त्रिगन्धैः ।
 लेहोऽयं चानिलघ्नः कृशवलयजननः शोधनश्चार्तवस्य
 या स्त्री गर्भं न धत्ते जनयति तनयं दीर्घजीवानुयुक्तम् ४६

योनिरोगे पञ्जरीरकावलेहः ।

जीरकं हपुषा धान्यं यवानी बदराणि च ।

शताह्वा मेथिका हिङ्गुपत्रिका कामदृक्षकम् ॥ ४७ ॥ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदा च वाष्पिका ।

चित्रकं च पलांशानि तथा चैव चतुष्पलम् ॥ ४८ ॥

कसेरुकं तथा शुण्ठी कृष्णा जीरकमेव च ।

गुडस्यार्धशतं दद्याद्भूतप्रस्थं तथैव च ॥ ४९ ॥

क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।

पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ५० ॥

नारीणां गर्भकामानां प्रदुष्टे चैव मारुते ।

विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं स्वरक्षयम् ॥ ५१ ॥

दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रं च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।

हन्ति, पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ ५२ ॥

उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीकालिवर्जिताः ।

श्रीबाहुशालो गुहाबलेहः ।

त्रिवृत्तेजस्वती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकः शटी ।

गवाक्षी मुस्तकं बिल्वं विडङ्गानि हरीतकी ॥ ५३ ॥

पलोन्मितानि चैतानि भल्लातकपलाष्टकम् ।

पलानि वृद्धदारोः षट् षोडशैव तु सूरणात् ।

जलद्रोणद्वये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५४ ॥

पूतं रसं तु तं दत्त्वा काथेभ्यस्त्रिगुणो गुडः ।

लेहं पचेद्दि तं यावद्दर्वीलेपं व्रजेद्बुधः ॥ ५५ ॥

अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ।

त्रिवृत्तेजस्वतीकट्वीचित्रकं द्विपलांशकम् ॥ ५६ ॥

एलात्वक्पत्रनागाहं षट्पलं परिकीर्तितम् ।

द्रात्रिंशच्च पलानीह चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥ ५७ ॥

ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीरं रसायनम् ।

पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ५८ ॥

जयेदर्शासि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ।

अयं सर्वाङ्गदांश्चैव कल्याणो लेह उत्तमः ॥ ५९ ॥

दुर्नामान्तकरश्चैव मेधाजनन उत्तमः ।

गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ ६० ॥

सर्वरोगं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

श्वासकासे विभीतकावल्लेहः ।

प्रस्थं विभीतकानामनस्त्रां हि साधयेद्गवां मूत्रे ।

लेहवदवलेहो मधुसहितः श्वासकासहरः ॥ ६१ ॥

कासेऽगस्त्यहरीतक्यवलेहः ।

द्विपञ्चमूलेभकणात्मगुप्ताभार्गीशटीपुष्करमूलविश्वाः ।

पाठामृताग्रन्थिकशङ्खपुष्पिरास्त्राग्न्यपामार्गवलायवासान् ॥ ६२ ॥

द्विपालिकानेव यवाढकं च हरीतकीनां च शतं गुरुणाम् ।

द्रोणे जलस्याढकसंयुते तु काथीकृते पूतचतुर्थभागे ॥ ६३ ॥

पचेत्तुलां शुद्धशुडस्य दत्त्वा पृथक्सतैलात्कुडवं घृताच्च ।

चूर्णं च तावन्मगधोद्भवानामनेकरोगौघमथाशु हन्यात् ॥ ६४ ॥

तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमान्द्यस्वरभेदकासान् ।

पाण्ड्यामयश्वासशिरोक्षिरोगान्द्रोगाहिक्राविषमज्वरांश्च ॥ ६५ ॥

मेधावलोत्साहमतिप्रदं च चकार चैतं भगवानगस्त्यः ।

कासे द्वितीयोऽगस्त्यहरीतक्यवलेहः ।

दशमूलीं स्वयङ्गुप्तां शङ्खपुष्पीं शटीं बलाम् ।

हस्तिपिप्पलयपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ६६ ॥

भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशं यवाढकम् ।

हरीतकीशतं चैकं जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ६७ ॥

यवैः सिक्त्रैः कपायं तं पूतं तन्नाभयाशतम् ।

पचेद्दुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ६८ ॥

तैलाच्च पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।

कुडवं, पलमानं च चतुर्जातं समावपेत् ॥ ६९ ॥

लिङ्घाद्वे चाभये नित्यं ततः खादेद्रसायनात् ।

वलीं च पलितं हन्याद्दर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ ७० ॥

पञ्च कासान् क्षयं श्वासं हिक्रां च विषमज्वरम् ।

गुल्ममेहग्रहण्यर्शाहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ ७१ ॥

अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।
 यथोद्दिष्टं गुणं कुर्वन्पित्तं च कुरुते यदा ॥ ७२ ॥
 तदा सायं गुडो योज्य एष एवालपमात्रया ।
 पादशेषे कपायेऽत्र स्विन्ना विद्याद्धरीतकीः ॥ ७३ ॥
 भर्जितास्तिलतैलस्य कुडवे गोघृतस्य वा ।
 पचेत्तान्नमये पात्रे ह्यापाकालोहितोदयात् ॥ ७४ ॥
 फलानां तु शतं सङ्ख्या चातुर्जातं पृथक्पलम् ।
 बद्ध्वा पोटलके पथ्या यवान् स्विन्नांश्च कारयेत् ॥७५॥

वासिष्ठहरितकयवदेहः ।

यवाढकं सप्त जलाढकानि हरीतकीनां च शतं गुरूणाम् ।
 दन्त्यश्वगन्धाचिरविल्वमूलं भल्लातकांश्चापि च पक्वविल्वम् ७६
 उभे हरिद्रे गजपिप्पली च मूलानि पत्राणि च चित्रकस्य ।
 पिप्पल्यपामार्गमथात्मगुप्ता सर्वाणि कुर्यात्पलसंमितानि ॥ ७७
 लौहे समादाय पचेत्कटाहे द्विपञ्चमूलं च यवप्रमाणम् ।
 मृद्वग्निस्निद्धांश्च यवान्वदित्वा शनैः प्रयत्नादवतारयेच्च ॥ ७८ ॥
 निःस्त्राव्य तेनैव जलेन सम्यक् सार्धं पुराणस्य शतं शुडस्य ।
 भूयो गुरूणामथ तत्र दद्याद्धरीतकीनां च सहस्रमन्यत् ॥७९॥
 प्रस्थं पुराणस्य घृतस्य चैव नवस्य तैलस्य च तावदेव ।
 शीते मधु स्नेहसमं च दद्यात्पलानि चाष्टावथ पिप्पलीनाम् ॥८०॥
 पथ्ये सलेहे त्वथ भक्ष्यमाणे सर्वा रूजो नाशयतो हि मासात् ।
 मासद्वयेनैव च नेत्ररोगान् हतो हि गार्धं लभते च चक्षुः ॥८१॥
 मासैस्त्रिभिर्नाशयतो हि कुष्ठं विशीर्णतां चाङ्गुलिनासिकानाम् ।
 भगन्दरश्ल्मीपदवातगुल्मानर्शास्यथो मासचतुष्टयेन ॥ ८२ ॥
 केशान् घनान्कुञ्चितदीर्घनीलान्स पञ्चभिश्चैव करोति मासैः ।
 सहस्रसङ्ख्यां च तथोपयुज्य बलं लभेतोत्तमकुञ्जरस्य ॥ ८३ ॥
 स्वरं मयूरस्य जवं हयस्य शरच्छशाङ्कस्य तथैव कान्तिम् ।

सौभाग्यमेधास्मृतिसत्त्वतेजःशोभान्वितः पद्मसमानगन्धः ॥८४॥
 जीवेत्समानां च सहस्रमन्यत्प्रयोगकालादिति सिद्धवाक्यम् ।
 न चान्नपानेऽध्वनि मैथुने वा नरेण किञ्चित्परिहार्यमास्मिन् ॥
 समीक्ष्य कल्पं तु रसायनानां चकार योगं भगवान्वसिष्ठः ॥८५॥

चासाहरीतक्यवलेहः ।

तुलामादाय वासायाः संकाश्याष्टगुणे जले ।
 तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ८६ ॥
 गुरुणामभयानां तु खण्डाच्छुद्धात्तथा शतम् ।
 शीतीभूते निदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥ ८७ ॥
 वंशोद्गवायाश्चत्वारि पिप्पल्यर्धपलं तथा ।
 चातुर्जातपलं चैव सर्वदा हन्ति सेवितः ॥ ८८ ॥
 विद्रधिं जठरं गुल्मं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
 श्वासं क्षयं तथा कासं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥ ८९ ॥
 पलार्धं भक्षयेदस्य यथेष्टं चात्र भोजनम् ।

गुल्मे दन्तीहरीतक्यवलेहः ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ॥ ९० ॥
 दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ।
 अष्टभागावशेषं च रसं पूतमधिश्रयेत् ॥ ९१ ॥
 दन्तीसमं गुडं पूतं क्षिपेत्त्राभयाश्च ताः ।
 तैलार्धकुडवं चैव त्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ॥ ९२ ॥
 पलार्धं चूर्णितं दद्यात् पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
 लेहवत्साधयेत्तं च शीते तैलसमं मधु ॥ ९३ ॥
 क्षिपेच्चूर्णं पलं चैकं त्वगोलापत्रकेसरात् ।
 ततो लेहपलं लिह्याज्जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ॥ ९४ ॥
 सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषान् प्रशमयत्यलम् ।
 गुल्मं श्वयथुमशीसि पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ९५ ॥

हृद्रोगं ग्रहणीदोषं कामलां विषमज्वरम् ।
कुष्ठं प्लीहानमानाहं तथा हन्युपसेवितः ॥९६ ॥
न चात्र परिहार्यं स्याद्द्रोज्यो मांसरसौदनः ।

कासे व्याप्रीहरीतक्यवलेहः ।

व्याप्रीशतं हरीतक्यो दत्त्वा च शतसंमिताः ॥ ९७ ॥
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ।
आलोड्यार्धतुलां तस्मिन् गुडस्य त्वभयाश्च ताः ॥९८॥
प्रक्षिप्यास्मिन् घनीभूते त्वगेलापत्रकेसरम् ।
मगधोषणसंयुक्तं पालिकं, चार्धकार्षिकम् ॥ ९९ ॥
यवक्षारं च संचूर्ण्य तस्मिन्स्तम्भक्षिपेत्पुनः ।
मधुनः पलपदकेन युक्तः कासामयापहः ॥ १०० ॥
स्वरवर्णावहः पुंसामग्नेर्दीप्तिकरः परम् ।

सर्वकासे द्वितीयो व्याप्रीहरीतक्यवलेहः ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुतां च ।
हरीतकीनां च शतं विदध्यादथात्र पक्त्वा चरणावशेषम् १०१
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते ।
कटुत्रिकं च त्रिपलप्रमाणं पलानि षट्पुष्परसस्यं तत्र ॥१०२॥
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निं प्रयुज्यमानो विधिनाऽवलेहः ।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च द्विदोषजं कासमपि त्रिदोषम् १०३
क्षतोद्भवं च क्षयजं च हन्यात्सपीनसश्वासमुरःक्षतं च ।
यक्षमाणमेकादशरूपमुग्रं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥१०४॥

प्लीहोदरे रोहीतकावलेहः ।

पक्त्वा शतं रोहितवल्कलानां पथ्याशतं माहिषमूत्रमग्नौ ।
पादावशेषे खलु पञ्चकोलमुत्सृज्य मूत्रे सह दन्तिनीभिः १०५
भूयः पचेद्यावदुपैति लेहं पथ्याद्वयं नित्यमथोपयुज्य ।
पश्चाल्लिहेलेहहितं हिताशी प्लीहोदरं हन्ति यकृच्च शीघ्रम् ॥१०६

शोफे पुनर्नवहरीतक्यवलेहः ।

प्रस्थं पुनर्नवायास्तु चित्रकस्य तथैव च ।
 पाठानागरदन्तीनां भागान्दशपलेन्मितान् ॥ १०७ ॥
 दशमूलतुलार्धं तु पथ्यानां शतमेव च ।
 चतुर्गुणैऽम्भसः पक्त्वा पूतं पादावशेषितम् ॥ १०८ ॥
 गुडस्यैकां तुलां क्षिप्त्वा लेहवत्साधु साधयेत् ।
 क्षिपेच्चूर्णाकृतं तत्र त्रिजातं त्रिकटुं तथा ॥ १०९ ॥
 नागकेसरसंयुक्तं पलांशमुपकल्पितम् ।
 शीतीभूते ततो दद्यात्कुडवं माक्षिकस्य च ॥ ११० ॥
 अतो लेहपलं लीढ्वा पथ्यां चैकां च भक्षयेत् ।
 शोफगुल्मोदरार्शोष्ठी पुनर्नवहरीतकी ॥ १११ ॥

शोफे कंघहरीतक्यवलेहः ।

द्विपञ्चमूलस्य तुलाकषाये कंसोऽभयानां च शतं गुडाच्च ।
 लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥
 प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावत्शुक्तात् ।
 एकां ततः प्राश्य तथा च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥
 कासज्वरारोचकमेहहिक्काप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
 कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ११४ ॥

शोफे हरीतक्यवलेहः ।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।
 दत्त्वा गुडतुलां तस्मिँल्लेहे दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ ११५ ॥
 त्रिजातकं तथा व्योषं किञ्चिच्च यवशुकजम् ।
 प्रस्थार्धं च हिमे क्षौद्रात्स निहन्त्युपयोजितः ॥ ११६ ॥
 प्रवृद्धशोफज्वरमेहगुल्मकार्श्यामवाताम्लकरक्तापित्तम् ।
 वैवर्ण्यमूत्रानलशुक्रदोषश्वासारुचिप्लीहगरोदरांश्च ॥ ११७ ॥

अर्शःपीनसयोश्चित्रकहरीतक्यवलेहः ।

चित्रककषायपलशतममृताधात्रीरसं च तुल्यांशम् ।
 संमिश्र्य गुडशतं च द्विपञ्चमूलीकषायेण ॥ ११८ ॥

तत्तुल्येन हरीतक्याढकमेकं विपाच्य गुडपाकम् ।
 अर्धप्रस्थं मधुनस्तस्मिन्दच्चा ततोऽन्येद्युः ॥ ११९ ॥
 द्वे द्वे पले निदध्यादेलात्वक्पत्रत्रिकटुकानाम् ।
 सयवक्षारार्धपलं यथाग्नि पश्चात्प्रयुञ्जीत ॥ १२० ॥
 एतद्रसायनोत्तममश्विभ्यामग्निवृद्धये प्रोक्तम् ।
 उपयुक्तवतां पुंसामपि काष्ठतृणानि जीर्यन्ति ॥ १२१ ॥
 अर्शःश्वासभगन्दरकासकृमिशोफकुष्ठगुल्मांश्च ।
 मासद्रयोपयोगादेतद्विनाशयत्यन्नवृद्धिमपि ॥ १२२ ॥
 रोगानीकसमेतं विशेषतो हन्ति राजयक्ष्माणम् ।
 अजितमपि भेषजशतैः पीनसरोरोगं त्र्यहाज्जयति ॥ १२३ ॥

मन्दासौ द्वितीयश्चित्रकहरीतकयवल्लहः ।

चित्रकपलशतमभिनवमाहृत्य कषायमेव कुर्वीत ॥
 धात्रीरसस्य पलशतममृतायाः स्वरसमेव तत्तुल्यम् १२४
 दशमूलस्य पलशतमष्टाविंशत्तथा जलद्रोणे ।
 अभयाढकं च भिषजा साध्यं पूते कषायेऽस्मिन् १२५
 शुद्धगुडस्य शतं स्याद्रसेन चालोड्य सपदि तत्रैव ।
 अभयाश्च ताः समस्ता मृदुना ज्वलनेन मार्दवं नेयाः १२६
 मधुनः पलानि षोडश तस्मिन्देयानि शीतलीभूते ।
 त्वक्पत्रमरिचकेसरमागधिकैलापले द्वे स्युः ॥ १२७ ॥
 यवक्षारपलैकमेतत्प्राश्याग्निमात्रया विद्वान् ।
 जरयति तृणकाष्ठान्यपि त्रिसप्तदिवसोपयोगेन ॥ १२८ ॥
 कासश्वासभगन्दरकुष्ठान्यष्टादशोदराण्यष्टौ ।
 मासोपयोगादेतत्क्षतक्षयं हन्ति राजयक्ष्माणम् ॥ १२९ ॥
 षण्ढोऽप्यषण्ढतां च याति वर्षमात्रोपयोगेन ।
 सुरलोकरोगनिचयप्रशमनकरणैकलक्ष्यमाहात्म्यौ ॥ १३० ॥
 दिव्यं रसायनमिदं कृतवन्तावश्विनौ देवौ ।

हलीमके आमलकावलेहः ।

रसमामलकानां तु सुशुद्धं यन्नपीडितम् ।
 द्रोणं पचेत्तु मृद्रशौ तत्र चेषानि दापयेत् ॥ १३१ ॥
 चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकद्रिपलं तथा ।
 प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेषितम् ॥ १३२ ॥
 शृङ्गवेरपले द्वे च तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ।
 तुलार्धं शर्करायाश्च तद्धनीभूतमुद्धरेत् ॥ १३३ ॥
 मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलसंमितम् ।
 हलीमकं च पाण्डुत्वं कामलां चापकर्षति ॥ १३४ ॥

कामलायां विडङ्गाद्यवलेहः ।

विडङ्गत्रिफलामुस्तमधुकं कटुरोहिणी ।
 अयोरजो हरिद्रे च चित्रकं गुडशर्करे ॥ १३५ ॥
 खदिरस्य कषायेण चूर्णान्येतानि साधयेत् ।
 मृद्रग्निसिद्धं तं लेहं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १३६ ॥
 स लेहः कामलां हन्यादपि संवत्सरोत्थिताम् ।
 नाशयेत् पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापि पैत्तिकम् ॥ १३७ ॥

श्रासे हरीतक्यवलेहः ।

भार्गीजटापलशतं सलिलार्मणाभ्यां
 युक्तं च मूलतुलया सहितं विपाच्य ।
 पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां
 पक्तव्यमुज्ज्वलगुडस्य शतेन सार्धम् ॥ १३८ ॥
 उत्तार्य तत्र शिशिरे मधुनः पलानि
 चत्वारि च त्रिगुणितानि पलत्रयं च ।
 व्योषं त्रुटित्वगिभकेसरपत्रकाणा-
 मेषां पलं खलु निधेयमथोपयुज्य ॥ १३९ ॥

१. मूलतुलयेति दशमूलतुलयेत्यर्थः ।

श्वासं सकासमपि शोषमथातिद्विक्वा-

येकाहिकं ज्वरमपीनसमुत्कटं च ।

हन्याद्रसायनमिदं हि पुरन्दरस्य

श्रोक्तं सहस्रकरपुत्रभिषग्वराभ्याम् ॥ १४० ॥

अर्शासि कुटजावलेहः ।

तुलां कुटजमूलस्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागावशेषं तु कषायमुपकल्पयेत् ॥ १४१ ॥

वस्त्रपूतं पुनः काथं पचेत्लेहत्वमागतम् ।

भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटु त्रिफलां तथा ॥ १४२ ॥

रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ।

वचामतिविपां विल्वं मक्षिपेत्तु पलं पलम् ॥ १४३ ॥

त्रिशत्पलं गुडस्यात्र चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ।

मधुनः कुडवं दद्याद्भूतस्य कुडवं तथा ॥ १४४ ॥

शमयेत्लेह एपस्तु हार्शो रक्तसमुद्रवम् ।

वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १४५ ॥

ये च दुर्नामजा रोगास्तांश्च सर्वान् व्यपोहति ।

रक्तपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १४६ ॥

ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।

अनुपाने घृतं दद्याद्दधि तक्रं जलं पयः ॥ १४७ ॥

जीर्णे तु पथ्यभोजी स्यादर्शोभ्यः प्रविमुच्यते ।

रोगानीकवधार्थाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १४८ ॥

अर्शासि द्वितीयः कुटजावलेहः ।

कुटजत्वचं विपाच्य पलशतमात्रां महेन्द्रसलिलेन ।

यावत्स्याद्धि घृतं तद्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ १४९ ॥

मोचरसश्च समङ्गा फलिनी च पलांशकास्त्रिभिस्तैश्च ।

वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ १५० ॥

पूतः क्रथितः सान्द्रः स रसो दर्वीप्रलेपको ग्राह्यः ।

मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयति रक्तम् ॥ १५१ ॥
 छगलीपयसा युक्ता पेयामण्डेन वा यथाशिवलम् ।
 जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुञ्जीत ॥ १५२ ॥
 रक्ताशीस्यतिसारं रक्तं सासृग्दरं निहन्त्याशु ।
 बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्यभयभागम् ॥ १५३ ॥

अर्शसि कुटजाष्टकोऽषलेहः ।

तुलामथाद्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुध पक्त्वा रसमाददीत ।
 तस्मिन्सुपूते पलसंमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाश्वलेन १५४
 पाठां समङ्गाऽतिविषे सस्रुस्तं विल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।
 प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्वर्षाप्रलेपस्तु रसस्तु यावत् ॥ १५५ ॥
 पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽथवापि ।
 निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ १५६ ॥
 दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं पित्तं तथाऽशीसि सशोणितानि ।
 असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ १५७ ॥

ग्रहण्यां मधुपाकविधिः ।

पाठाऽजमोदा मधुकं समङ्गा मुस्ता जलोशीरविडङ्गधान्यम् ।
 बिल्वाग्निगुण्ठीमगधाः सरोध्रश्यामाः कुधात्री करिकुङ्कुमं च १५८
 जम्बवाभ्रयोरस्थि सवलकलं च सर्वाणि चैतानि पलांशकानि ।
 द्रोणे जलस्य प्रपचेत्कषायमष्टावशेषं सितवस्त्रपूतम् ॥ १५९ ॥
 क्षौद्रं क्षिपेदष्टपलप्रमाणं पलार्धनागाह्वयचन्दनैलाः ।
 सहैव संमर्द्य विधाय चूर्णं क्षौद्रान्वितं तच्च पुनर्विपाच्यम् ॥ १६० ॥
 उत्तार्य लेहं घृतभाजने च निधापयेत्सप्त दिनानि गुप्तम् ।
 तं पाययेद्द्रचाधिवलं समीक्ष्य जयेच्च सर्वान् ग्रहणीविकारान् ।
 अरोचकं जीर्णमथातिसारं तृष्णाम्लपित्तं वमिहृद्ग्रहं च ॥ १६१ ॥

कासे कण्टकार्यवलेहः ।

समूलफलशाखां तु कुट्टयेत्कण्टकारिकाम् ।
 तां पचेत्सकिलद्रोणे चतुर्भागावशेषिताम् ॥ १६२ ॥

कषायं तं परिस्राव्य पुनरभावधिश्रयेत् ।
 युक्त्या घृतं च दातव्यं कल्कं चैषां प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥
 दुरालभा गुडुची च श्यूषणं चित्रकस्तथा ।
 रास्ना कर्कटशृङ्गी च पिप्पलीमूलमेव च ॥ १६४ ॥
 एतान्येकपलीकानि तथा फाणितशर्कराम् ।
 पलानां विंशतिं दत्त्वा तं लेहं सान्द्रमुद्धरेत् ॥ १६५ ॥
 शीते दद्यात्पिप्पलीनां चूर्णं चात्र गुडोन्मितम् ।
 कुडवं तु तुगाक्षीर्या मधुनः कुडवं तथा ॥ १६६ ॥
 तं लिह्यान्मात्रया लेहं पञ्चकासनिवारणम् ।
 हृद्रोगानाहहिक्काश्च श्वासं चैवापकर्षति ॥ १६७ ॥

शोषे निदिग्धिकाद्योऽवलेहः ।

तुलां निदिग्धिकायास्तु तदर्धं ग्रन्थिकस्य च ।
 चित्रकस्य तदर्धं च दशमूलं च तत्समम् ॥ १६८ ॥
 द्रोणद्वयेऽम्भसः काथ्यमष्टभागावशेषितम् ।
 पूते क्षिपेत्तदर्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १६९ ॥
 सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।
 अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातत्रिपलं तथा ॥ १७० ॥
 मरिचानां पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
 मधुनः कुडवं दत्त्वा भक्षयेत् यथाबलम् ॥ १७१ ॥
 स्वरबुद्धिकरश्चैव प्रतिश्यायहरः परम् ।
 कासश्वासाग्निमान्द्याशोऽगुल्ममेहगलामयान् ॥ १७२ ॥
 आनाहमूत्रकृच्छ्रांश्च हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ।

उदावर्ते पथेलामूलावलेहः ।

पटोलमूलं रजनी त्रिफला चतुरङ्गुलम् ॥ १७३ ॥
 नीलिनी त्रिवृता दन्ती कृमिघ्नं च पुनर्नवा ।
 कटुका सातला रोध्रं भागान्दशपलोन्मितान् ॥ १७४ ॥

दत्त्वा द्रोणचतुष्कं तु सलिलं पादशेषितम् ।
 तैलस्य कुडवं तत्र गुडस्य तु शतं तथा ॥ १७५ ॥
 त्रिवृच्चूर्णपलान्यष्टौ लेहवत्साधु साधयेत् ।
 चूर्णकृतं क्षिपेत्तत्र व्योषस्य पलपञ्चकम् ॥ १७६ ॥
 पलत्रयं त्रिजातस्य दत्त्वा संघट्टयेत्पुनः ।
 ततो यथाबलं खादेत्पलार्धं पिचुमेव वा ॥ १७७ ॥
 नाहारे यन्नणा काचिन्न विहारे तथैव च ।
 उदावर्तविबन्धाशौगुलमपाण्डूरकृमीन् ॥ १७८ ॥
 कुष्ठमेहारुचीर्हन्ति विड्ढिबन्धेषु शस्यते ।
 लेहः पटोलमूलाख्यः सर्वकर्मसु युज्यते ॥ १७९ ॥
 मुखरोगे वाग्भ्यंजलेहः ।

दाव्यास्तु मूलार्धतुलां जलस्य द्रोणे श्रुतां पूतचतुर्थशेषाम् ।
 भुनिम्बदावीखदिरारिभेदैः पुनर्विपकं पलिकैश्चतुर्भिः ॥ १८० ॥
 पूतं ततो गैरिकचूर्णपादं मन्दानले तच्च पुनर्विपकम् ।
 सन्नीय शीतं मधुशर्कराभ्यां सदा प्रयोज्यं घृतभाजनस्थम् १८१
 नानाप्रकारेषु सुखामयेषु सुदारुणेषुग्ररुजेषु चैव ।
 प्रशीर्णजीर्णेष्वबलद्विजेषु कृच्छ्रेषु दुष्टेषु व्रणेषु चैव ॥ १८२ ॥
 कल्पोज्यमिष्टो मधुकस्य चैव प्रपौण्डरीकस्य वृषस्य चैव ।
 जातीरिभेदत्रिफलासमङ्गारोध्रस्य जम्बोः खादिरस्य चैव १८३

नागराद्योऽवलेहः ।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् ।
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्धशतं तथा ॥ १८४ ॥
 व्योषं त्रिजातकं चैव पलांशमुपकल्पयेत् ।
 बल्यं च वर्ण्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ १८५ ॥
 शमनं ह्यामवातस्य सौभाग्यकरमुत्तमम् ।

कासे कसेर्वाद्योऽवलेहः ।

कासेरोस्तु तुलार्धं हि द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ॥ १८६ ॥

द्रोणार्धशेषे पूते च दद्याद्दुडतुलां तथा ।
 सर्पिषः कुडवं दद्याल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ १८७ ॥
 व्योषस्य कुडवं चैव त्रिजातं त्रिपलं तथा ।
 केशरस्य पलद्वन्द्वं चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ॥ १८८ ॥
 तद्यथाशिवलं खादेत्कासकृमिज्वरापहः ।
 हृत्पाण्डुरोगवैवर्ण्यदौर्वल्यानाहनाशनः ॥ १८९ ॥
 कसेरुकावलेहोऽयं स्वरपुष्टिविवर्धनः ।

अर्शासि भ्रूतकावलेहः ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकाऽमृता ॥ १९० ॥
 हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः ।
 एषां चतुष्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १९१ ॥
 भल्लातकसहस्रे द्वे छिन्वा तत्रैव दापयेत् ।
 तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्द्विषक् ॥ १९२ ॥
 तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ।
 ज्यूपर्णं त्रिफलावह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् ॥ १९३ ॥
 सौवर्चलं विडङ्गं च पलिकांशान् प्रकल्पयेत् ।
 कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ॥ १९४ ॥
 सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ।
 सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ॥ १९५ ॥
 प्रातर्भोजनकाले च ततः खादेद्यथाबलम् ।
 अर्शासि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १९६ ॥
 कृमिशुल्भाश्मरीमेहांञ्छूलं चाशु व्यपोहति ।
 करोति भुक्तवृद्धिं च बलीपलितनाशनम् ॥ १९७ ॥
 रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।

पीनसे चित्रकावलेहः ।

वह्निद्विपञ्चमूल्योरस्तु काथे पलशतद्वये ॥ १९८ ॥
 अमृताया रसस्यक पूतेऽस्मिन्नभयाशतम् ।

पचेद्दुडतुलां दत्त्वा यावदापाकलक्षणम् ॥ १९९ ॥
 अन्येद्युस्तत्र माक्षीकात् सुशीते कुडवद्रयम् ।
 प्रक्षिपेत्त्रिसुगन्धस्य त्रिकटोश्च पलद्वयम् ॥ २०० ॥
 प्रत्येकं स्याद्यवक्षारः शुक्तिस्तस्मिन् रसायने ।
 उत्तमं कथितं पुंसामश्विभ्यामग्निवृद्धये ॥ २०१ ॥
 जीर्यन्त्यपि च काष्ठानि कासश्वासक्षयकुमीन् ।
 गुल्मोदरार्शः कुष्ठं च जयेच्छ्लोषं भगन्दरम् ॥ २०२ ॥
 योगशतैरजेयं च त्र्यहाज्जयति पीनसम् ।

रक्तपित्ते खण्डखाद्योऽवलेहः ।

शतावरी गुडूची च वृषमुण्डितिकाभयाः ॥ २०३ ॥
 तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ।
 भार्गी पुष्करमूलं च पृथक्पञ्चपलानि च ॥ २०४ ॥
 जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ।
 दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा ॥ २०५ ॥
 पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णितम् ।
 खण्डं घृतं समं देयं पलषोडशकं बुधैः ॥ २०६ ॥
 पचेत्तान्नमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ।
 प्रस्यार्धं मधुनो देयं शुभाश्रमजतुकं त्वचम् ॥ २०७ ॥
 शृङ्गी विडङ्गकृष्णे च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम् ।
 त्रिफला धान्यकं पत्रं त्र्यक्षं मरिचकेशरम् ॥ २०८ ॥
 चूर्णं दत्त्वा तु निर्मथ्य स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
 यथाकालं प्रयुञ्जीत विडालपदकं ततः ॥ २०९ ॥
 गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसः पयः ।
 शुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम् ॥ २१० ॥
 रक्तपित्तं क्षयं कासं पक्तिशूलं तथैव च ।
 वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ॥ २११ ॥

श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं ग्रीहोदरं तथा ।
 आनाहं मूत्रसंस्त्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ २१२ ॥
 चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यो मङ्गल्यः प्रीतिवर्धनः ।
 आरोग्यपुत्रदः श्रेष्ठः कायान्निबलवर्धनः ॥ २१३ ॥
 श्रीकरो लाघवकरः खण्डखाद्यः प्रकीर्तितः ।
 छागं पारावतं मांसं तिच्चिरिः कृकरः शशः २१४
 कुलिङ्गः कृष्णसारश्च तेषां मांसानि योजयेत् ।
 नालिकेरपयःपानं मुनिषण्णकवास्तुकम् ॥ २१५ ॥
 शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम् ।
 फलं वार्ताकपक्काभ्रं खर्जूरं स्वादुदाडिमम् ॥ २१६ ॥
 ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसंभवम् ।
 वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्यं प्रकुर्वता ॥ २१७ ॥

रक्तपित्ते द्वितीयो वासावलेहः ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ।
 तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ २१८ ॥
 चूर्णानामभयानां तु खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा ।
 द्वे पले पिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ २१९ ॥
 कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् ।
 क्षित्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती तथावलम् ॥ २२० ॥
 श्वासकासक्षतच्छर्दी यक्षमाणं च नियच्छति ।

श्वासकासयोर्भोगीगुडावलेहः ।

शतं संग्राह्य भाग्यास्तु दशमूल्यास्तथा परम् ॥ २२१ ॥
 शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ।
 पादशेषे च तस्मिस्तु रसे वस्त्रपरिष्कृते ॥ २२२ ॥
 आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ।
 पुनः पचेत्तु मृद्रग्नौ यावलेहत्वमागतम् ॥ २२३ ॥
 शीते तु मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत् ।

त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पालिकं च पृथक् पृथक् ॥ २२४
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ।

भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं तथा ॥ २२५ ॥

श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ।

स्वरवर्णभ्रदो ह्येष जठरानलदीपनः ॥ २२६ ॥

हरितकीशतैकस्य वारिप्रस्थमिहाधिकम् ।

श्वासकासयोः कुलत्थगुडावलेहः ।

कुलत्थादशमूलाच्च द्विजयष्ट्यास्तथैव च ॥ २२७ ॥

शतं शतं च संग्राह्य चतुर्दोणेऽम्भसः पचेत् ।

अष्टभागावशेषे तु गुडस्यार्धतुलां क्षिपेत् ॥ २२८ ॥

शीतीभूतेऽथ पके च मधुनोऽष्टौ पलानि च ।

पलानि षट् तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्वे पले तथा ॥ २२९ ॥

त्रिसुगन्धिसुगन्धं तं खादेदग्निबलं प्रति ।

श्वासं कासं ज्वरं हृक्कां नाशयेत्तमकं तथा ॥ २३० ॥

मानसान्निध्यसंवादाद्धिपलं त्रिसुगन्धिनः ।

श्वासकासयोः पिप्पलीगुडावलेहः ।

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी ॥ २३१ ॥

श्वासकासज्वरघ्नी च पाण्डुष्टीहोदरापहा ।

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगिषु ॥ २३२ ॥

जीर्णज्वरेऽग्निसादे च शस्यते गुडपिप्पली ।

अतिसारे कुटजावलेहः ।

कुटजस्य तुलां दत्त्वा चतुर्दोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २३३ ॥

द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते गुडतुलार्धकम् ।

घृतस्य कुडवं तत्र क्षित्वा मृद्गग्निना पचेत् ॥ २३४ ॥

प्रतिवापे च देयानि द्रव्याण्येतानि धीमता ।

समङ्गा बिल्वपेशी च मज्जा जम्ब्वाम्नसंभवा ॥ २३५ ॥

पिप्पली चाजमोदा च शुण्ठीमरिचवत्सकम् ।

मुस्ता भल्लातको रोध्रं धातकी गजपिप्पली ॥ २३६ ॥

अम्बुष्ठा वालकं चैव द्वे बृहत्यौ सचित्रकौ ।
 पङ्गुन्था पिप्पलीमूलं विडङ्गानि हरीतकी ॥ २३७ ॥
 नागकेसरयष्ट्याहारलुत्वकूपत्रकेसरम् ।
 विषा चेन्द्रयवाः पाठा सूक्ष्मैला जीरकद्रवम् ॥ २३८ ॥
 एभिः कर्षसमैर्भागैर्लेहवत्संप्रसाधयेत् ।
 मधुनः कुडवं सिद्धे शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३९ ॥
 कायाग्निबलमालक्ष्य मात्रया योजयेद्विषकम् ।
 तत्रेण च, सतक्रं हि भोजनं हितमिष्यते ॥ २४० ॥
 एतद्धि ग्रहणीरोगमतीसारान् सुदारुणान् ।
 प्रवाहिकां निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २४१ ॥

अतीसारे कुटजावलेहः ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् ।
 काथे पादावशेषेऽस्मिन्पूते लेहं पुनः पचेत् ॥ २४२ ॥
 सौवर्चलयवक्षारबिडसैन्धवपिप्पली- ।
 धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्रवम् ॥ २४३ ॥
 लिङ्गाद्भद्रमात्रं तु शीतं क्षौद्रेण संयुतम् ।
 पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ २४४ ॥
 दुर्वारं ग्रहणीदोषं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।

अशस्तु कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशोषितम् ॥ २४५ ॥
 कल्कीकृत्य क्षिपेत्त्र ताक्ष्यशैलं कटुत्रिकम् ।
 रोध्रद्रव्यं मोचरसं बालदाडिमजां त्वचम् ॥ २४६ ॥
 बिल्वं कर्कटिकां मुस्तं समङ्गां धातकीपलम् ।
 पलानि दश दद्याच्च कुटजस्यैव च त्वचः ॥ २४७ ॥
 विंशतिं सर्पिषः पूते पलानि विंशतिं गुडात् ।
 तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥ २४८ ॥
 सवातं ग्रहणीदोषं कासश्वासं निवर्हति ।

जरायां च्यवनप्राशावलेहः ।

विल्वान्निमन्थकद्वङ्गकाश्मर्यः पाटला बला ॥ २४९ ॥

कणा पर्ण्यश्चतस्रश्च श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ।

शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ॥ २५० ॥

अभया चामूता मुस्ता जीवकर्षभकौ शटी ।

ऋद्धिः पुनर्नवा मेदा सेव्यं चन्दनमुत्पलम् ॥ २५१ ॥

विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ।

एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च २५२

पञ्च दद्यात्तद्वैकथ्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ।

ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ॥ २५३ ॥

तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ।

पलद्वादशके भृष्टा दद्याच्चार्धतुलां भिषक् ॥ २५४ ॥

शुद्धमत्स्यण्डिकायास्तु लेहवत्साधु साधयेत् ।

षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥ २५५ ॥

चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ।

पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेसरात् ॥ २५६ ॥

इत्थयं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ।

कासश्वासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते ॥ २५७ ॥

वृद्धानां शोषिणां चैव बालानां चाङ्गवर्धनः ।

स्वरक्षयसुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ॥ २५८ ॥

पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपर्कषति ।

अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुध्यान्न भोजनम् ॥ २५९ ॥

च्यवनोऽस्य प्रयोगेण सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ।

मेघां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ।

स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ २६० ॥

रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् ।

जराकृतं रूपमपास्य सर्वं विभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ २६१ ॥

जरायां ब्राह्मरसायनावलेहः ।

पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान्दशपलोन्मितान् ।
 हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलकं नवम् ॥ २६२ ॥
 विदारिगन्धां बृहतीं पृष्टिपर्णीं निदिग्धिकाम् ।
 विद्याद्विदारिगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रापञ्चमं गणम् ॥ २६३ ॥
 विल्वाग्निमन्थकटुङ्गकाश्मर्यः पाटला तथा
 पुनर्नवा सूर्पपर्ण्यौ बला चैरण्ड एव च ॥ २६४ ॥
 जीवकर्षभकौ वीरा जीवन्ती सशतावरी ।
 शरेक्षुदर्भकासानां शालीनां मूलमेव च ॥ २६५ ॥
 एतेषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत् ।
 भागान्यथोक्तान् तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि ॥ २६६ ॥
 दशभागावशेषं तु पूतं तद्ग्राहयेद्रसम् ।
 हरीतक्यश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यामलकानि च ॥ २६७ ॥
 तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चकैः ।
 विनीय तस्मिन्नियूहे चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ २६८ ॥
 मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शङ्खपुण्याः प्लवस्य च ।
 मुस्तानां सविडङ्गानां चन्दनागुरुणोस्तथा ॥ २६९ ॥
 मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च ।
 भागान् पञ्चपलान्कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा २७०
 सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकम् ।
 तैलं स्याद्ब्याढकं तत्र तथा त्रीणि च सर्पिषः ॥ २७१ ॥
 साध्यं तान्नमये पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना ।
 ज्ञात्वा लेहमदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥ २७२ ॥
 स्नेहार्थं क्षौद्रमानं स्यात् तत्सर्वं घृतभाजने ।
 तिष्ठेत्संमूर्च्छितं तस्य मात्रां काले प्रयोजयेत् ॥ २७३ ॥
 आहारं नोपस्न्ध्याद्या ह्येवं मात्रा तु सा स्मृता ।
 षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥ २७४ ॥

वैखानसास्तथा चान्ये वालिखिल्यास्तपोधनाः ।
 रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः ॥ २७५ ॥
 मुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाय्यमवापुस्तरुणं वयः ।
 वीततन्द्रा-कृम-न्वासा निरातङ्गाः समाहिताः ॥ २७६ ॥
 मेधास्मृतिबलोपेताश्चिरकालं तपोधनाः ।
 ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्यं चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥ २७७ ॥
 आयुष्कामः प्रयुञ्जानो ब्राह्मं हीदं रसायनम् ।
 दीर्घमायुर्वलं चाय्यं कामाञ्छेष्टान्समश्नुते ॥ २७८ ॥

क्षतक्षीणिऽमृतप्राशावल्लहः ।

जीवकर्षभकौ वीरा जीवन्ती नागरं शटी ।
 मेदे पर्ण्यश्चतस्रश्च काकोल्यौ द्वे निदिग्धिके ॥ २७९ ॥
 पुनर्नवे द्वे मधुकमात्मगुप्ता शतावरी ।
 ऋद्धिः परुषकं भार्गी मृद्रीका बृहती तथा ॥ २८० ॥
 शृङ्गाटकस्तामलकी पयस्या पिप्पली बला ।
 बदराक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाणि च ॥ २८१ ॥
 फलानि चैवमन्यानि कल्कान्कुर्वीत कार्षिकान् ।
 धात्रीरसविदारीक्षुच्छागमांसरसान् पयः ॥ २८२ ॥
 दत्त्वा प्रस्थोन्मितान् भागान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ॥ २८३ ॥
 ततो मात्रां प्रयुञ्जीत क्षीरमांसरसाशनः ।
 नष्टशुकक्षतक्षीणदुर्वलान् व्याधिकर्षितान् ॥ २८४ ॥
 स्त्रीमसक्तान् कृशान्वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ।
 कासहिक्काज्वरश्वासतृष्णादाहान् सपैत्तिकान् ॥ २८५ ॥
 निहन्ति छर्दिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ।

लघुच्यवनप्राशोऽवल्लहः ।

विल्वादिपञ्चमूलाब्दबलापर्णीचतुष्टयम् ।
 ऋद्धिकृष्णाशटीपथ्याजीवकर्षभकामृताः ॥ २८६ ॥

द्राक्षा पुनर्नवा मेदे जीवन्ती काकनासिका ।
 उत्पलैलाजशृङ्गश्च काकोली वृषचन्दनम् ॥ २८७ ॥
 विदारीगोक्षुरव्याघ्रीपौष्करं च पलोन्मितम् ।
 शतानि पञ्च धात्र्याश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८८ ॥
 पलद्वादशके भृष्टा धात्रीस्तास्तैलसर्पिषोः ।
 सितार्धतुलया युक्ताः काथं लौहे पुनः पचेत् ॥ २८९ ॥
 द्वे पिप्पल्या पले वांश्याश्चत्वारः षट् च माक्षिकात् ।
 चातुर्जातपलं तस्मिन् सिद्धशीते प्रयोजयेत् ॥ २९० ॥
 हृद्रोगश्वासहृत्कासवातरक्तक्षयार्तिजित् ।
 सेच्योऽयं च्यवनप्राशः स्वर्यो वृष्यो रसायनः ॥ २९१ ॥

शोषेऽमृतप्राशोऽवलेहः ।

छागमांसरसक्षीरविदारीक्षुरसाढकम् ।
 धात्रीफलरसश्चैव मृद्धीकानां रसो घृतम् ॥ २९२ ॥
 पृथक्प्रस्थोन्मितैरतैः पचेत्कर्षसमैर्भिषक् ।
 वाताममधुकाक्षोटशृङ्गाटककसेरुकाः ॥ २९३ ॥
 परूषकं शटी भार्गी जीवन्ती च पुनर्नवा ।
 खर्जूरं पिप्पली शृङ्गी ह्यात्मगुप्ता सजीवका ॥ २९४ ॥
 सिंही व्याघ्रपदी स्याच्च द्राक्षा तामलकी स्थिरा ।
 बदरं कदरं चैव जीवनीयानि यानि च ॥ २९५ ॥
 तत्सिद्धं राजते पात्रे निधेयं साधु साधितम् ।
 प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ॥ २९६ ॥
 त्वगेलापत्रमरिचचूर्णं चार्धपलोन्मितम् ।
 विनीय भक्षयेन्मात्रां लिह्याद्वापि यथाबलम् ॥ २९७ ॥
 बलवर्णकरं वृष्यं वृंहणं स्वरबोधनम् ।
 कासश्वासारुचिं हन्यात्तृणमूर्च्छासृग्दरं तथा ॥ २९८ ॥
 परं क्षीणक्षतहितं वन्द्यापुत्रप्रदायि च ।
 अमृतप्राशनाभेदममृतं देवतास्विव ॥ २९९ ॥

शोषे पिप्पल्याद्योऽत्रलेहः ।

कृष्णाञ्जूर्णं क्षिपेत्प्रस्थं सिताप्रस्थद्वयं तथा ।
 प्रस्थार्धं गोघृतं चैव कुडवं माक्षिकं तथा ॥ ३०० ॥
 दुग्धाढकौनसंयुक्तं यथोक्तं विपचेद्विषक् ।
 चतुर्जातपलं चैकं चूर्णमेतद्विनिक्षिपेत् ॥ ३०१ ॥
 प्रत्यूषे भक्षयेन्नित्यं ततः कार्यं समाचरेत् ।
 हन्त्यष्टादश कुष्ठानि क्षयमेकादशात्मकम् ॥ ३०२ ॥
 पञ्चकासान् तथा श्वासान् पाण्डुं फ्लीहमपस्मृतिम् ।
 मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं शुक्रदोषं तथा जराम् ॥ ३०३ ॥
 धातुक्षयं च मन्दाग्निं व्याधिं परमदुस्तरम् ।
 सर्वास्तान्नाशयत्याशु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ३०४ ॥
 सुभगो दर्शनीयश्च स गच्छेत्प्रमदाशतम् ।
 रसायनमिदं श्रेष्ठमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ३०५ ॥

शोषे द्वितीयः पिप्पल्याद्यवलेहः ।

पिप्पलीप्रस्थमादाय क्षीरं चैव चतुर्गुणम् ।
 अर्धाढकं घृतं गव्यं शुद्धखण्डात्तथाऽऽढकम् ॥ ३०६ ॥
 पचेन्मृद्वाग्निना तावद्यावत्पाकमुपागतम् ।
 शीतीभूते क्षिपेत्तस्मिंश्चतुर्जातपलत्रयम् ॥ ३०७ ॥
 योजयेन्मात्रया दोषघातवग्निबलसात्म्यतः ।
 बल्यो वृष्यस्तथा वृधो धातुपुष्टिकरः परः ॥ ३०८ ॥
 जीर्णज्वरहरश्च व स्त्रियं चैव तु बृंहयेत् ।
 छर्दिर्तृष्णारुचिश्वासशोषाहिध्माः सकामलाः ॥ ३०९ ॥
 हृद्रोगं पाण्डुगुल्मं च प्रदरं च त्रिदोषजम् ।
 शोणितानिबकार्श्यं च रक्तपित्तं नियच्छति ॥ ३१० ॥
 सतताभ्यासयोगेन वलीपलितवर्जितः ।

क्षयादिरोगे रसाहरीतक्यवलेहः ।

हरीतक्याः शतं द्रोणे पयासि परिसाधयेत् ॥ ३११ ॥

घृतावशेषमुत्तार्य निष्कुलीकृत्य च क्रमात् ।
 रसगन्धकलोहानां चूर्णेनापूर्य वेष्टयेत् ॥ ३१२ ॥
 सूत्रेण मासमेकं तु मधुमध्ये निधापयेत् ।
 पथ्याशी भक्षयेदेकां सर्वरोगविमुक्तये ॥ ३१३ ॥

खण्डार्द्रकावलेहः ।

मुस्विन्नाच्छृङ्गवेरात्पलशतमनवं निस्तुषं संविधाय
 प्रस्थे चाज्यस्य पक्त्वा पलशतसहितं शुद्धमत्स्यण्डिकायाः ।
 कौरङ्गी देवपुष्पं मधुदलकणानागकिञ्जल्कभृङ्गं
 शुक्लाजाजी सघनमरिचतुगा सार्धकर्षद्वयाः स्युः ॥ ३१४ ॥
 तस्मिन्नीरं विदित्वा ज्वलनसुखगतं पात्रमुत्तार्य यत्ना-
 त्कृत्वा चेषन्मदशशिसुरभितं चूर्णितेनावचूर्ण्य ।
 मातः शीतेऽतिमात्रं मधुकुडवयुगं सार्धमावाप्य सान्द्रं
 तल्लीढं हन्ति जीर्णज्वरमथ कसनं राजयक्ष्माणमेव ॥ ३१५ ॥

अतीसारंऽङ्गोलमूलावलेहः ।

पलमङ्गोलमूलस्य दशांशं विल्वमेव च ।
 तद्भागो राजवृक्षस्य काथ्यमष्टगुणे जले ॥ ३१६ ॥
 तेन पादावशेषेण फाणितं कारयोद्भिषक् ।
 शीतीभूते प्रदातव्यं मस्तुना सहितं बुधैः ॥ ३१७ ॥
 फाणिते दीयमाने तु सत्वरं लर्दयेद्यदा ।
 शीतलं भोजनं देयं दध्यन्नं भक्तमेव च ॥ ३१८ ॥
 पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
 दुर्वारं ग्रहणीदोषं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ३१९ ॥

अर्शसि भङ्गातकावलेहः ।

पर्पटावलगुजानन्तावचारखदिरचन्दनम् ।
 पाठाशुण्ठीशटीभार्गीवासाभूनिम्बवत्सकम् ॥ ३२० ॥
 श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गेन्द्रयवं जलम् ।
 हस्तिकर्ण्यमृताद्राक्षापटोलरजनीद्रयम् ॥ ३२१ ॥

कणारग्वधसप्ताहविल्वश्यानाकपाटलाः ।
 एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥३२२॥
 अष्टभागवशेषं तु कषायमवतारयेत् ।
 भल्लातकसहस्राणि छित्त्वा द्रोणमितेऽम्भसि ॥ ३२३ ॥
 चतुर्भागावशेषं तु कषायं परिकल्पयेत् ।
 तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कतरयेत् ॥ ३२४ ॥
 गुडस्य च तुलां दत्त्वा लेहवत्साधयेद्विषकम् ।
 भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत् ॥ ३२५ ॥
 त्रिकटुत्रिफलासुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ।
 सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ ३२६ ॥
 दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलांशकम् ।
 संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्कोष्णे घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ३२७ ॥
 महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ।
 प्राणिनां च हितार्थं वै जयेच्छीघ्रं निषेवितः ॥३२८॥
 शिवत्रयौदुम्बरं सिध्मं रुक्षजिह्वं च काकणम् ।
 पुण्डरीकं च चर्मालयं विस्कोटं रक्तमण्डलम् ॥३२९॥
 कृच्छ्रं कापालिकं कृष्णं पामां चैव विपादिकाम् ।
 वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वामिं कृमिम् ॥ ३३० ॥
 अर्शासि पद्मकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ।
 समाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुर्जयम् ॥ ३३१ ॥
 कुहते च परां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ।
 अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा ।
 भोजने च सदा त्याज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥३३२॥

अतीसारे कुटजाष्टकावलेहः ।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुच्च पक्त्वा रसमाददीत ।
 तस्मिन् सुपूते पलसंभितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥

पाठासमङ्गातिविषाः समुस्ता विल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।
 प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्दर्वाम्लेपं सुरसं च यावत् ॥३३४॥
 पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽथवाऽपि ।
 निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णासितं लोहितपीतकं वा ॥३३५॥
 दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तपित्तं तथाऽर्शासि सशोणितानि ।
 असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुट्टनाष्टक्रोऽयम् ॥ ३३६

धातुक्षये मधुपकामलकी ।

धात्रीफलानि भव्यानि तीक्ष्णलोहेन वेधयेत् ।
 विधावरणपत्रैश्च फलैश्च स्वेदयेद्भृशम् ॥ ३३७ ॥
 उष्णदुग्धेन संस्वेद्य पानीयेन ततः परम् ।
 मधुमध्ये क्षिपेद्भाण्डे स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥ ३३८ ॥
 विनष्टं मधु संत्यज्य मधुमध्ये पुनः क्षिपेत् ।
 अधस्तु शर्करां धात्रीफलान्युपरि च न्यसेत् ॥ ३३९ ॥
 सिताधात्रीफलान्येवमुपर्युपरि धारयेत् ।
 दिनाष्टकमतो दद्याद्घातुक्षीणे बलक्षये ॥ ३४० ॥
 वाजीकरणमत्युग्रं फलानां सेवनं सदा ।
 वीर्यवृद्धिकराण्याहुर्वह्निवृद्धिकराणि च ॥ ३४१ ॥
 त्वग्दोषं पित्तकोषं च शमयन्ति न संशयः ।

स्वरभङ्गे कुलिजनाथोऽबलेहः ।

कुलिजनं समानीय नवीनं पलविंशतिम् ।
 तुलाद्रये जले काथ्यं तुलार्धमवशेषयेत् ॥ ३४२ ॥
 वस्त्रपूते जले तस्मिन् चूर्णान्येषां प्रदापयेत् ।
 कट्फलं पौष्करं भार्गी पञ्चकोलं कटुत्रिकम् ॥ ३४३ ॥
 त्रिफला च विडङ्गं च धान्यकं जीरकद्रवम् ।
 करञ्जः शिखरी वासा प्रत्येकं च पलद्रवम् ॥ ३४४ ॥

सर्वार्थां प्रक्षिपेच्छुद्धां शर्करां गुडमेव च ।
 हन्त्ययं पञ्चकासांश्च हिक्का अपि सवेदनाः ॥ ३४५ ॥
 स्वरभङ्गं महाघोरं कण्ठरोगं मुखामयम् ।
 मन्दाग्निं च प्रतिश्यायं स्वरभङ्गं विशेषतः ॥ ३४६ ॥

कासे भाग्याद्यवलेहः ।

भार्गी हरीतकीं वासां कण्ठकारीं तथैव च ।
 प्रत्येकं प्रस्थमादाय द्रोणेऽपां साधयेद्विषक् ॥ ३४७ ॥
 काथे पादावशेषे तु गुडं प्रस्थमितं क्षिपेत् ।
 ततः पाकघनीभूते शीतेऽर्धकुडवं मधु ॥ ३४८ ॥
 पिप्पलीं कट्फलं शृङ्गीं मधुयष्टिं लवङ्गकम् ।
 त्वक्क्षीरीं रजनीं चैव पलार्धप्रामितां क्षिपेत् ॥ ३४९ ॥
 एषोऽवलेहः शमयेत् पञ्च कासान् मुदारुणान् ।

हृद्रोगे चन्दनावलेहः ।

मातुलुङ्गरसप्रस्थः प्रस्थार्धो दाडिमाद्रसः ॥ ३५० ॥
 तत्तुल्यं नारिकेलाम्बु शर्करा कुडवद्वयम् ।
 पाकं कृत्वा यथान्यायं सिद्धे शीते समावपेत् ॥ ३५१ ॥
 चन्दनं च तुगाक्षीरीं धान्यकं सारिवां तथा ।
 कङ्कालकमुशीरं च कुङ्कुमं शतपत्रिकाम् ॥ ३५२ ॥
 गुडूच्याश्च तथा सत्त्वं कर्षमानं पृथक् पृथक् ।
 लेह एष तु हृद्रागं भ्रमं मूर्च्छां वमिं तथा ॥ ३५३ ॥
 दाहं च सुमहाघोरं शमयेन्नात्र संशयः ।

घातुक्षये गोक्षुराद्यवलेहः ।

गोक्षुरश्चाश्वगन्धा च शतवीर्या विदारिका ॥ ३५४ ॥
 बलाबीजानि यष्ट्याहं बीजानीक्षुरकस्य च ।
 कपिकच्छोश्च बीजानि शाल्मलीमूलकं तथा ॥ ३५५ ॥
 वृद्धादारुक्बीजानि लवङ्गं जातिपत्रिका ।
 केशरं च फलं जात्या त्वक् पलं वंशरोचना ॥ ३५६ ॥

गुड्डीसत्त्वमेले द्वे तथा काश्मीरजन्म च ।
 एतेषां कर्षमादाय मधुनः कुडवत्रयम् ॥ ३५७ ॥
 कृत्वा लेहं ततो मात्रां यथायोग्यां प्रदापयेत् ।
 धातुक्षयं तथा वातं ध्वजभङ्गं नियच्छति ।
 अनेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव च वृषायते ॥ ३५८ ॥

इति श्रीवैद्यसोढलग्रथिते गदनिग्रहे पञ्चमोऽवलेहाधिकारः ।

॥ अथातः षष्ठ आसवाधिकारः प्रारभ्यते ॥

कुमार्यासवः ।

द्रोणमानं कुमार्यास्तु रसं भाण्डे निधापयेत् ।
 तुलार्धं दशमूलं तु तदर्धां पौष्करिं जटाम् ॥ १ ॥
 तत्समं धन्वयासं च चित्रार्धं च परिक्षिपेत् ।
 मस्थार्धममृता ज्ञेया तदर्धमभया तथा ॥ २ ॥
 लोघ्नकामलकं पथ्यं मञ्जिष्ठा च कलिदुमः ।
 चव्यं च कुष्ठयष्ट्याहे कपित्थं सुरदारुकम् ॥ ३ ॥
 कृमिशत्रुः कणा चैव भार्गी स्यादष्टवर्गकः ।
 जीरकं क्रमुको रास्त्रा शटी रेणकमेव च ॥ ४ ॥
 शृङ्गी निशा प्रियङ्गुश्च मांसी मुस्ता च सारिवा ।
 शक्रबीजं वरी वासा नागकेसरमेव च ॥ ५ ॥
 पुनर्नवा समांशानि षड्भिद्रोणैर्जलस्य तु ।
 काथयेदनया रीत्या चतुर्थांशं जलं नयेत् ॥ ६ ॥
 त्रिंशत्पला च मृद्रीका दन्तसंख्यापलं मधु ।
 गुडात्तुलाचतुष्कं च तदर्धां धातकी भवेत् ॥ ७ ॥
 एलाद्वयं लवङ्गानि कङ्कोलं मलयोद्भवम् ।
 चातुर्जातं तथा कृष्णा मरिचं जातिपत्रकम् ॥ ८ ॥
 आकलकं फलं जाल्याः कपिकच्छुश्च दीप्यकम् ।
 वचा खदिरसारश्च दहनो जीरकं तथा ॥ ९ ॥

यवानी बालकं विश्वा मुस्ता धान्यं हरीतकी ।
 हपुषा तित्तिडीकं च चूर्णमेषां प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
 भाण्डे पुराणे मुस्निग्धे धूपिते गन्धभेषजैः ।
 कोष्ठसारे तथा तप्ते भूमौ मासं विनिःक्षिपेत् ॥ ११ ॥
 यो रोगी प्रातरुत्थाय पलमेकं तु भक्षयेत् ।
 धातुक्षयं जयेत्कासं श्वासं पञ्चविधं तथा ॥ १२ ॥
 अर्शासि वातारोगांश्च ग्रहणीपाण्डुकामलाः ।
 हलीमकमुदावर्तं गुल्मं पञ्चविधं जयेत् ॥ १३ ॥
 आध्मानं कुक्षिशूलं च प्रत्याध्मानं गुदग्रहम् ।
 अष्टीलिकां च हृद्रोगानेतान् व्याधीन्विनिर्जयेत् ॥ १४ ॥
 कुमार्यासव इत्येष कथितः शूलपाणिना ।

द्वितीयः कुमार्यासवः ।

कन्यारसस्तुलार्धं वै तदर्धगुडमिश्रितः ।
 चातुर्जातलवङ्गानां सैन्यवस्य निशाद्रयात् ॥ १५ ॥
 कृष्णोषणकुबेराणां धातकीनां पलं पलम् ।
 पथ्याचूर्णं पलद्रन्द्रं पलं चाकलकस्य तु ॥ १६ ॥
 उग्रगन्धाविडङ्गानां जातीपत्र्याः पलं पलम् ।
 एकीकृत्य शुचौ भाण्डे पक्षमेकं निधापयेत् ॥ १७ ॥
 पलार्धं भक्षयेन्नित्यं गुल्मोदावर्तनाशनः ।
 आध्मानं पार्श्वशूलं च जठरार्तिं कफं हरेत् ॥ १८ ॥
 मन्दाग्निं शमयेच्छ्वासं कासं हिक्कां क्षयं तथा ।
 प्लीहानं यकृतं शोफं नाशयत्येष सेवितः ॥ १९ ॥

नवविधा आसवयोनिः ।

त्वक्पत्रकाण्डपुष्पाणि सारमूलफलानि च ।
 धान्यानि च सिता चापि नव ह्यासवयोनयः ॥ २० ॥
 द्रव्यसंयोगतः संख्यातीताः पथ्यतमाश्च ते ।
 द्रव्याणां भेदतो वेदवसु (८४) संख्याः प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
 तद्यथा—

षड् धान्यासवाः ।

सुरासौवीरमैरेयधान्यकाम्लतुषोदकाः ।

समेदा रससंख्यास्ते ह्यासवा धान्यतो मताः ॥ २२ ॥

षड्विंशतिफलासवाः ।

द्राक्षाखर्जूरकाशमर्यजम्ब्वामलविभीतकैः ।

धन्वराजादनैः पथ्यातृणशून्यपरूषकैः ॥ २३ ॥

कपित्थमृगलिण्डीस्तुकर्ककन्धुवदरीफलैः ।

पियालपनसप्लक्ष्मन्ग्रोधोदुम्बरैः सह ॥ २४ ॥

कपीनपीलुवकुलाजमोदाशङ्खिनीफलैः ।

शृङ्गाटाश्वत्थसंयुक्ताः षड्विंशाः फलतो मताः ॥ २५ ॥

एकादश मूलासवाः ।

अश्वगन्धास्थिरादन्तीकृष्णगन्धाशतावरी- ।

श्यामैरण्डद्रवन्तीभिर्विल्ववद्वित्रिवृत्समैः ॥ २६ ॥

मूलैरेकादशैते तु मुनिभिर्मूलतो मताः ।

विंशतिः सारासवाः ।

शालप्रियङ्गुस्यन्दनचन्दनखदिरार्जुनैश्च कदरयुतैः ।

असनाश्वकर्णसप्तपर्णशमीशशिपासहितैः ॥ २७ ॥

अरिभेदतिन्दुकिणिहीशुक्तिशिरीषैश्च वञ्जुलसमेतैः ।

धन्यनमधुकसारैर्विंशतिरात्रेयमुनिनोक्ताः ॥ २८ ॥

दश पुष्पासवाः ।

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपौण्डरीकशतपत्रैः ।

पुष्पैर्मधुकजातैः प्रियङ्गुना धातकीकुमुमैः ॥ २९ ॥

दश पुष्पासवाः पूर्वं मुनिभिः परिकीर्तिताः ।

चत्वारः काण्डासवाः ।

चत्वारः काण्डकैः पुण्ड्रेक्षुकाण्डेश्विक्षुवालिक्कैः ॥ ३० ॥

द्वौ पत्रासवौ ।

पटोलकतमालाभ्यां द्वौ हि पत्रासवौ मतौ ।

चत्वारस्त्व गासवाः ।

क्रमुकैलेयलोध्रैश्च सतिल्वैस्त्वकृता हिताः ॥ ३१ ॥

शर्करासवः ।

शर्करासव एवैको,

आसवानां विकल्पसंस्कारगुणाः ।

द्रव्यसंयोगभागतः ।

विकल्पा बहुधा ज्ञेयाः संस्कारश्च यथाविधि ॥ ३२ ॥

स्वयोनिसंस्कृता ह्येते स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वते ।

संयोगसंस्कृतेर्देशकालमात्रस्वभावतः ॥ ३३ ॥

पृथक्तेषां स्वभावास्तु ज्ञात्वा कार्ये प्रयोजयेत् ।

श्लोकद्वयमिहार्थं तु मुनिरात्रेय उक्तवान् ॥ ३४ ॥

मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम् ।

हर्षप्रदानां प्रवरासवानामशीतिरुक्ता चतुरत्तरैषा ॥ ३५ ॥

शरीररोगप्रकृतौ मतानि तत्त्वेन चाहारविनिश्चयाय ।

उवाच यज्जःपुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथाऽध्याणि वरासवांश्च ३६

धातव्याधौ विडङ्गासवः ।

विडङ्गं पिप्पलीमूलं पाठा धान्येलवालुकम् ।

कुटजत्वक्फलं रास्त्रां भार्गीं पञ्चपलोन्मितम् ॥ ३७ ॥

अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषं तु कारयेत् ।

पूते शीते क्षिपेत्तस्मिन्माक्षिकस्य शतत्रयम् ॥ ३८ ॥

धातक्या विंशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत् ।

व्योषस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजातद्विपलान्यपि ॥ ३९ ॥

फलिनीहेमतोयानां सरोधाणां पलं पलम् ।

घृतभाण्डे समाधाय मासमेकं विधारयेत् ॥ ४० ॥

एष योगो हरत्येव प्रत्यष्टीलाभगन्दरान् ।

ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहं गण्डमालां सविद्रधिम् ॥ ४१ ॥

आल्यवातं हन्नुस्तम्भं विडङ्गाख्यो महासवः ।

प्रमेहे रोध्रासवः ।

रोध्रं शटीं पुष्करमूलमेलान् भूर्वीं विडङ्गं त्रिफलां यवानीम् ।

चव्यं मियङ्गुं क्रमुकं विशालां किराततित्तं कटुरोहिणीं च ४२

भार्गी नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां च पाठाम् ।
 कलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाहं नखं सपत्रं मरिचं पुत्रं च ॥४३॥
 द्रोणेऽम्भसः कर्षसमं हि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ।
 रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥४४॥
 रोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्निक्षमं निहन्याद्विपलप्रयोगात् ।
 पाण्ड्यामयार्शास्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ४५

प्रमेहे देवदार्वीसवः ।

देवदारोस्तुलार्धं तु वासायाः पलविंशतिः ।
 दन्ती शक्राह्वमञ्जिष्ठास्तगरं रजनीद्वयम् ॥ ४६ ॥
 रास्त्रा मुस्तं शिरीषश्च कृमिघ्नः खदिरार्जुनौ ।
 भागान्दशपलानेषां गुडूच्याश्चित्रकस्य च ॥ ४७ ॥
 चन्दनस्य यवान्याश्च रोहिण्या वत्सकस्य च ।
 भागान् पञ्चपलानेषामष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ४८ ॥
 द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ।
 धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ४९ ॥
 चतुष्पलं त्रिजाताञ्च व्योषस्य च पलद्वयम् ।
 केसरस्य पलद्वन्द्वं मियङ्गोश्च पलद्वयम् ॥ ५० ॥
 घृतभाण्डे निदध्याच्च मासमेकं प्रयत्नतः ।
 प्रमेहान्मूत्रकृच्छ्रांश्च वातरोगान् सुदारुणान् ॥ ५१ ॥
 ग्रहण्यर्शोविकारांश्च देवदार्वीसवो जयेत् ।

कुष्ठे कनकारिष्ठः ।

खदिरकषायद्रोणं कुम्भे घृतभाषिते समावाप्य ।
 पलिकां मात्रां क्षेप्यां कृत्वा तामेव सूक्ष्मचूर्णं तु ॥ ५२ ॥
 त्रिफलात्रिकटुकरजनीकतकत्वग्बाकुचीगुडूच्यश्च ।
 सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्रयं प्रक्षिपेत्सर्वम् ॥ ५३ ॥
 धातकीपलान्यष्टौ काथे चास्मिन्प्रदेयानि ।
 प्रातः प्रातस्तु पिबेन्नाशयति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ५४ ॥

मासेन सर्वरोगान्निहन्ति च शोफमेहांश्च ।
निर्जितकासश्वासो गुदकीलभगन्दरैर्विनिर्मुक्तः ॥ ५५ ॥
कनकारिष्टं प्रपिबन्भवति पुमान्कनककान्तिश्च ।

अर्शासि द्वितीयकनकारिष्टः ।

नवस्यामलकस्यैकां कुर्याज्जर्जरितां तुलाम् ।
कुडवांशश्च मागध्या विडङ्गं मरिचानि च ॥ ५६ ॥
यवासः पिप्पलीमूलं क्रमुकं चव्यचित्रकौ ।
मङ्गिष्ठैल्वालुकं रोध्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ ५७ ॥
कुष्ठं दारुहरिद्रां च सुराहं सारिवाद्रयम् ।
मुस्तामिन्द्रयवांश्चैव कुर्यादर्धपलोन्मितम् ॥ ५८ ॥
चत्वारि नागपुष्पस्य पलान्यभिनवस्य च ।
जलद्रोणद्वयेनैतत्साधयित्वाऽवतारयेत् ॥ ५९ ॥
द्रोणावशेषपूते च शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
मृद्रीकादद्यात्कद्रावं शीतं निर्यूहसाधितम् ॥ ६० ॥
शकरायाश्च शुद्धाया दद्याद्विगुणितां तुलाम् ।
कुमुदस्वरसस्यैवमर्धमस्थं नवस्य च ॥ ६१ ॥
त्वगोलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेसरान् ।
मतिमांशूर्णयित्वा तु कार्पिकान्संपदापयेत् ॥ ६२ ॥
तत्सर्वं स्थापयेत्पक्षं सुचौक्षे घृतभाजने ।
प्रलिप्ते सर्पिषा किञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते ॥ ६३ ॥
पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयं कनको नाम विश्रुतः ।
पेयः स्वादुरसो हृद्यः प्रयोगाद्भक्तरोचकः ॥ ६४ ॥
अर्शासि ग्रहणीदोषमानाहमुदरं ज्वरम् ।
हृत्पाण्डुरोगशोथांश्च गुल्मवर्चोऽनिलग्रहान् ॥ ६५ ॥
कासान्कफामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति ।
बलीपलितस्वालित्यं दोषजं तु व्यपोहति ॥ ६६ ॥

ग्रहण्यां दुरालभारिष्टः ।

दुरालभाया द्विप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
 सुष्टी चित्रकदन्त्योर्द्वे प्रत्यग्रं चाभयाशतम् ॥ ६७ ॥
 चतुर्द्वेणऽम्भसः काथ्यं शीतं द्रोणावशेषितम् ।
 गुडस्य द्विशतं पूतं मधुनः कुडवान्वितम् ॥ ६८ ॥
 तद्वत्पियङ्गोः पिप्पल्या विडङ्गानां च चूर्णकम् ।
 कुडवं घृतकुम्भस्थं पक्षादूर्ध्वं पिवेन्नरः ॥ ६९ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत् ।
 स्वरवर्णकरश्चैव रक्तपित्तकफापहः ॥ ७० ॥

अर्शसि दन्त्यरिष्टः ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
 प्रत्येकं षलभापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७१ ॥
 त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ।
 रसे चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ ७२ ॥
 तुलां गुडस्य तच्छिष्टेन्मासार्धं घृतभाजने ।
 तन्मात्रया पिबन्नित्यमर्शोभ्यः स विमुच्यते ॥ ७३ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
 दीपनं रुचिदं चैव दन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥ ७४ ॥

अर्शसि अभयारिष्टः ।

प्रस्थाध तु हरीतक्याः प्रस्थमामलकस्य च ।
 दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धं चेन्द्रवारुणी ॥ ७५ ॥
 विडङ्गं पिप्पली रोध्रं मरिचं सैलवालुकम् ।
 द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्वेण विपाचयेत् ॥ ७६ ॥
 द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत् ।
 गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्सर्वं घृतभाजने ॥ ७७ ॥
 पक्षादूर्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रा यथाबलम् ।
 अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति संक्षयम् ॥ ७८ ॥
 ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगस्त्रीहगुल्मोदरापहः ।

कुष्ठशोफारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ७९ ॥
 सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।
 कृमिग्रन्थ्यबुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ ८० ॥

ग्रहण्यां द्वितीयोऽभयारिष्टः ।

हरीतकीदलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
 विशालायाः कपित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥ ८१ ॥
 द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ।
 पादशेषे च पूते च रसे तस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
 गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्य घृतभाजने ।
 पक्षस्थितं पिबेन्नित्यं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ८३ ॥
 श्लिहहृत्पाण्डुरोगघ्नः कामलाविषमज्वरान् ।
 कासं श्वासमुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति ॥ ८४ ॥

ग्रहण्यां तृतीयोऽभयारिष्टः ।

अष्टौ पलानि वर्षाभूदशमूलार्कचित्रकात् ।
 दन्तीश्यामात्रिवृद्रास्त्राश्रैवं स्युस्त्रिफलाढकम् ॥ ४५ ॥
 अम्बुद्रोणाष्टके पक्त्वा पादशेषे रसे स्थिते ।
 द्वे गुडस्य तुले पूते तत्पश्चाद्दटके क्षिपेत् ॥ ८६ ॥
 गवां मूत्राढकं प्रस्थौ द्वावयोरजसस्तथा ।
 विडङ्गं कुटजं कुष्ठं चित्रकं मरिचं वचाम् ॥ ८७ ॥
 संचूर्ण्य द्विपलान्यस्मिन्दत्त्वा मासस्थितं पिबेत् ।
 अभयारिष्टनामायं मेहार्शःकुष्ठशोफहा ॥ ८८ ॥
 श्लिहपाद्मामयान् गुल्मान् जठराणि च नाशयेत् ।

पाण्डुरोगे मण्ड्यारिष्टः ।

मण्ड्यरस्य तु शुद्धस्य तुलार्धं परिकल्पितम् ॥ ८९ ॥
 तद्रलोहस्य पत्राणि तिलोत्सेधप्रमाणतः ।
 गुडाज्जीर्णात्तु पञ्चाशत्कोलप्रस्थत्रयं तथा ॥ ९० ॥
 निकुम्भचित्रकाभ्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते ।
 पिप्पलीनां विडङ्गानां कुडवं कुडवं पृथक् ॥ ९१ ॥
 त्रींश्चापि त्रिफलाप्रस्थान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
 अर्धमासस्थितो धान्ये पेयोऽरिष्टः प्रमाणतः ॥ ९२ ॥

ऊर्ध्वाधोदोषनिर्हता पाण्डुरोगं नियच्छति ।
 कृमीनर्शासि कुष्ठं च कासश्वासकफामयान् ॥ ९३ ॥
 एषोऽरिष्टस्तु माण्डूरः शोफपाङ्गामयापहः ।

क्षयरोगे पिप्पल्यरिष्टः ।

मरिचपिप्पलीरोध्रपाठान्ध्र्यलवालुकम् ॥ ९४ ॥
 चव्यचित्रकजन्तुघ्नकमुकोशीरचन्दनम् ।
 प्रियङ्गुलवलीमुस्तहरिद्रामिश्रिपेलवम् ॥ ९५ ॥
 नतं पत्रं त्वचं कुष्ठं नागकेसरसंयुतम् ।
 एषामर्षपलान् भागान् द्राक्षां पष्टिपलां क्षिपेत् ॥ ९६ ॥
 पलानि दश धातक्या गुडस्य च शतत्रयम् ।
 तोयद्रोणद्वये सिद्धो भवत्येष सुखावहः ॥ ९७ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगार्णःकासगुल्मोदरापहः ।
 पिप्पल्यादिररिष्टोऽयं ज्वरोरुचिविनाशनः ॥ ९८ ॥

शोफेऽष्टशतारिष्टः ।

काशमर्यधात्रीमरिचाभयाक्षुद्राफलानां तु सपिप्पलीनाम् ।
 शतं शतं शौद्रगुडात् पुराणात्तुलां च कुम्भे मधुना प्रलिप्ते ९९
 सप्ताहमुष्णे द्विगुणं तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिबेत् ॥
 शोफान्विवन्धान्कफवातजांश्च निहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽधिकृच्च १००

तकारिष्टः ।

ह्रुषा सुपवी धान्यमजाजी कारवी शटी ।
 पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको गजपिप्पली ॥ १०१ ॥
 यवानी चाजमोदा च तच्चूर्णं तक्रसंयुतम् ।
 मन्दांम्लकटुकं विद्रान् स्थापयेद्धृतभाजने ॥ १०२ ॥
 व्यक्तांम्लकटुकं जातं तकारिष्टं मुखप्रियम् ।
 पाययेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषितं त्रिषु ॥ १०३ ॥
 दीपनो रोचनो बल्यः कफवातानुलोमनः ।

१. 'क्षयक्षयकरः परम्' इति पाठान्तरम् ।

गुदश्वयथुकण्ठार्तिनाशनो बलवर्धनः ॥१०४॥

अरोचके लघुचुकसन्धानम् ।

गुडक्षौद्रारनालानां समस्तूनां यथोत्तरम् ।

शंसन्ति द्विगुणान्भागान्सम्यक्चुकस्य सिद्धये ॥१०५॥

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सक्षौद्रगुडकाञ्जिकम् ।

धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥ १०६ ॥

मन्दासौ वृहच्चुकसन्धानम् ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात्मस्थत्रयं चाम्लतः

प्रस्थार्धं दधितोऽथ मूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिका ।

मान्यौ शोधितशृङ्गवेरशकलाङ्गे सिन्धुजातात्पले

द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निःक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥१०७॥

स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्वासये-

द्भीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ।

षट् शीतेऽष्टदिनान्यतः परामिदं विस्त्राय्य संचूर्णितै-

श्चातुर्जातपलैः सुसंहितमिदं शुक्तं च चुक्रं तथा ॥ १०८ ॥

हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्

दुर्नामानिलशूलगुल्मजठरान्दृष्ट्वाऽनलं दीपयेत् ॥ १०९ ॥

लवङ्गासवः ।

लवङ्गपिप्पलीलोहमरिचं सैलवालुकम् ।

द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ ११० ॥

द्रोणशेष रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत् ।

गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्सर्वं घृतभाजने ॥ १११ ॥

पक्षादूर्ध्वं रसे जाते दद्यान्मात्रां यथाबलम् ।

अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति संक्षयम् ॥ ११२ ॥

ग्रहणीपाण्डुहृद्रोग्ग्रीहगुल्मोदरापहः ।

अरुचिकृष्टशोफघ्नो बलवर्णाशिवर्धनः ॥ ११३ ॥

सद्यः क्षयहरोऽरिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।

कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ ११४ ॥

शीहि रोहीतकासवः ।

रोहीतकशतमेकं कथितं द्रोणे चतुर्थशेषे तु ।
तस्मिन्गुडशतमेकं योज्यं शेषैः सुचूर्णितैरेभिः ॥ ११५ ॥
पलमेकं त्रिफलाया देयं त्रिपलं च धातकीपुष्पात् ।
पलिकं च पञ्चकोलाद्भूतभाण्डे स्थापयेत्पक्षम् ॥ ११६ ॥
ज्वरगुल्मार्शःप्लीहरुगस्थिग्रहपाण्डुरोगघ्नः ।

अर्शस्तु गण्डिकाद्रोणः ।

दद्यात्सलिलद्रोणं कृतमन्थेषुगण्डिकाद्रोणम् ॥ ११७ ॥
धान्ययवानीदीप्यकपृथ्वीकाश्चेति कुडवांशाः ।
द्विपलीनाः स्युर्देयास्तेजस्वतीचव्यचित्रकाजाज्यः ॥ ११८ ॥
मधुनः कुडवं दत्त्वा घृतरूढे भाजने स्थाप्यः ।
एष काञ्जिकराजो लवणयुतः कद्दृणार्द्रकसुगन्धः ॥ ११९ ॥
दशरात्रात्पातव्यः सलिलं च पुनः पुनर्देयम् ।
अर्शोभगन्दरगदग्रहणीमेदःभमेहदोषांश्च ॥ १२० ॥
नाशयति सेव्यमानो वद्विकरो गण्डिकाद्रोणः ।

कुष्ठे खदिरासवः ।

खदिरस्य तुलार्थं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि ॥ १२१ ॥
वराया विंशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।
वाक्कुच्या द्वादशपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १२२ ॥
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते विनिक्षिपेत् ।
माक्षिकस्य शतद्वन्द्वं धातक्याः पलविंशतिम् ॥ १२३ ॥
शर्करायास्तुलामेकां चूर्णीनीमानि दापयेत् ।
कङ्गोलकं लवङ्गं च ह्येला जातीफलं त्वचम् ॥ १२४ ॥
केसरं मारिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ।
कुडवं पिप्पलीनां तु स्थापयेद्भूतभाजने ॥ १२५ ॥
मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामपेक्ष्यान्निबलावलम् ।

सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत् ॥ १२६ ॥

कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थिगुल्मघ्नी होदरान्तकृत् ।

एष वै खदिरारिष्टः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ १२७ ॥

कुष्ठे द्वितीयः खदिरारिष्टः ।

खदिरस्य तुलामम्भसि विपचेच्चतुर्द्रेणसंमिते शेषम् ।

पादं विगृह्य शीते दद्यान्मधुनस्तुलां सार्धाम् ॥ १२८ ॥

वस्त्रविपूते चूर्णं व्योषत्रिफलापिण्डखर्जूरी-

स्वर्णत्वग्बाकुचिकामृताविडङ्गपलाशानाम् ॥ १२९ ॥

धातकीं दशपलां दत्त्वा प्रविलोडितं नित्यम् ।

यावत्पोडशदिवसाः षोडशके मधुतुलां दद्यात् ॥ १३० ॥

मासात्परतः पेयो दत्त्वा मृगनाभिमाषकं पटे बद्धम् ।

कर्पूरमाषद्रयमेष खदिरासवो महाकुष्ठे ॥ १३१ ॥

क्षयरोगे बन्धुन्यासवः ।

तुलाद्वयं तु बन्धुल्याश्चतुर्द्रेणेषम्भसः पचेत् ।

द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रिशतं क्षिपेत् ॥ १३२ ॥

धातक्याः प्रस्थमेकं तु पिप्पलीनां पलद्वयम् ।

जातीलवङ्गकङ्गोलमैलात्वक्पत्रकेसरम् ॥ १३३ ॥

मरिचेन समायुक्तं पलिकं तत्र कल्पयेत् ।

मासमात्रं स्थितो ह्येष बन्धुल्यासवसंज्ञितः ॥ १३४ ॥

क्षयं कुष्ठं प्रमेहांश्च कासश्वासांश्च नाशयेत् ।

क्षयरोगे पुष्करमूलासवः ।

तुलां पुष्करमूलस्य तदर्धं तु दुरालभा ॥ १३५ ॥

तदर्धेन तु धान्याकं व्योषाच्च पलविंशतिः ।

मञ्जिष्ठाकुष्ठमरिचं कपित्थं देवदारु च ॥ १३६ ॥

विडङ्गं चविका रोध्रं पिप्पलीमूलमेव च ।

काश्मर्यं च तथोशीरं रास्त्रा भार्ज्जी च नागरम् ॥ १३७ ॥

एषां द्विपलिकान्भागान्श्चतुर्द्रेणेषम्भसः पचेत् ।

द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १३८ ॥

गुडस्य त्रिशतं तत्र धातक्याः पलविंशतिम् ।
 मरिचं केसरं श्यामाभिलात्वक्पत्रकं पलम् ॥ १३९ ॥
 कुडवं पिप्पलीनां तु चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ।
 घृतभाण्डे स्थितं मासं पिबेन्मात्रां यथाबलम् ॥ १४० ॥
 क्षयापस्मारकासासृक्शोफुल्मभगन्दरान् ।
 पुष्करासव इत्येष प्रयोगादेव नाशयेत् ॥ १४१ ॥

क्षयरोगे माचिकासवः ।

माचिकायाः शतार्धं तु द्रोणेऽर्धां च विपाचयेत् ।
 तस्मिंश्चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १४२ ॥
 गुडस्य द्विशतं दत्त्वा तत्सर्वं घृतभाजने ।
 विडङ्गपिप्पलीकृष्णात्वगेलापत्रकेसरैः ॥ १४३ ॥
 मरिचैश्च तथा चूर्णं सम्यक्त्वा विचक्षणः ।
 क्षिपेच्च पालिकैर्भागैर्घटनीयं समन्ततः ॥ १४४ ॥
 ततो यथाबलं पीत्वा कासश्वासगलामयान् ।
 हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रपुरःसन्धानकारकः ॥ १४५ ॥
 माचिकासव इत्येष ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।

शोके पुनर्नवासवः ।

पुनर्नवे द्वे च पले सपाठे दन्तीं गुड्डीं सह चित्रकेण ।
 निदिग्धिकां च त्रिपलां विपाच्य द्रोणावशेषे सलिले ततस्तु ॥
 पूत्वा रसं द्वे च तुले पुराणाद्दुडान्मधुमस्थयुतं सुशीते ।
 मासं निदध्याद्भूतभाजनस्थं पल्ले यवानां परतश्च मासात् १४७
 चूर्णीकृतैरर्धपलांशकैस्तं हेमत्वगेलांमरिचाम्बुपत्रैः ।
 गन्धान्वितं क्षौद्रघृतमदिग्धं जीर्णं पिबेच्च्याधिवलं समीक्ष्य १४८
 हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं स्त्रीहृत्प्रमारोचकमेहशुल्मान् ।
 भगन्दराशौजठराणि कासश्वासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ १४९ ॥
 शाखानिलं बद्धपुरीषतां च हिक्कां किलासं च हृलीमकं च ।
 क्षिप्रं जयेद्दर्णवलं पुरोजस्तेजोन्वितो मांसरसाक्षभोजी ॥ १५० ॥

शोफे त्रिकलारिष्टः ।

फलत्रयं पिप्पलिचित्रकौ च सदीप्यकं लोहरजो विडङ्गम् ।
चूर्णीकृतं कौडविकं, द्विरंशं क्षौद्रं, पुराणस्य तुलां गुडस्य ।
मासं निदध्याद्भृतभाजनस्थं यवेषु तानेवं निहन्ति रोगान् १५१

सर्वशोफे वासकासवः ।

वासकस्य तुले द्वे तु द्विट्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
कृत्वा द्रोणार्धशेषं तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १५२ ॥
गुडस्यैकां तुलां तत्र धातक्यास्तु पलाष्ठकम् ।
क्षिपेच्चूर्णीकृतं तस्मिन् त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १५३ ॥
कङ्कगोलव्योषतोयानि पलिकान्युपकल्पयेत् ।
सम्यक्पकं ततो ज्ञात्वा पक्षादूर्ध्वं पिबेद्गुम् ॥ १५४ ॥
वासकासव इत्येष सर्वश्वयथुनाशनः ।

अर्शास्तु शर्करासवः ।

प्रस्थं दुरालभायास्तु चित्रकस्य वृषस्य च ॥ १५५ ॥
पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ।
दद्याद्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १५६ ॥
पादशेषे रसे पूते सुशीते शर्कराशतम् ।
दत्त्वा कुम्भे दृढे स्थाप्यं मासार्धं घृतभाजने ॥ १५७ ॥
प्रलिप्ते पिप्पलीचव्यमियङ्गुमधुसर्पिषा ।
तस्य मात्रां पिबेत्काले शर्करस्य यथावलम् ॥ १५८ ॥
अर्शासि ग्रहणीरोगमुदावतमरोचकम् ।
शकृन्मूत्रानिलोद्गारविवन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५९ ॥
हृद्रोगं पाण्डुरोगं च सर्वमेतत्प्रणाशयेत् ।

ग्रहण्यां द्राक्षासवः ।

सृष्ट्रीकायास्तुलामेकां चतुद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १६० ॥
द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
द्वे शते क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ॥ १६१ ॥

कङ्गोलकलवङ्गे च जातीफलमथैव च ।
 पलांशकानि मरिचत्वगोलापत्रकेसरम् ॥ १६२ ॥
 पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुकम् ।
 घृतभाण्डे स्थितं चेदं चन्दनागुरुधूपिते ॥ १६३ ॥
 कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहणीदीपनः परः ।
 अशंसां नाशनः श्रेष्ठ उदावर्तास्रपित्तनुत् ॥ १६४ ॥
 जठरकृमिकृष्टानि व्रणांश्च विविधांस्तथा ।
 अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगविनाशनः ॥ १६५ ॥
 ज्वरं हन्ति महाव्यार्धि पाण्डुरोगं सकामलम् ।
 नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष वृंहणो बलवर्णकृत् ॥ १६६ ॥
 अशंसि द्वितीयो द्राक्षासवः ।
 द्राक्षापलशतं दत्त्वा चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
 द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १६७ ॥
 शर्करायास्तुलां दत्त्वा तत्तुल्यं मधुनस्तथा ।
 पलानि सप्त धातक्याः स्थापयेदाज्यभाजने ॥ १६८ ॥
 जातीलवङ्गकङ्गोललवलीफलचन्दनम् ।
 कृष्णां त्रिगन्धसंयुक्तां भागानर्धपलांशकान् ॥ १६९ ॥
 त्रिःसप्ताहाद्भवेत्पेयस्तस्य मात्रा यथाबलम् ।
 नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष नाशयेद्दुदकीलकान् ॥ १७० ॥
 शोफारोचकहृत्पाण्डुरक्तपित्तभगन्दरान् ।
 गुल्मोदरकृमिग्रन्थिक्षतशोषज्वरान्तकृत् ॥ १७१ ॥
 वातपित्तप्रशमनः शस्तश्च बलवर्णकृत् ।
 ग्रहण्यां बीजकासवः ।
 बीजकात्प्रस्थयेकं तु त्रिफलायाश्च विंशतिः ॥ १७२ ॥
 द्राक्षायाः पञ्च लाक्षायाः सप्त द्रोणे तथाऽम्भसि ।
 साध्यं पादावशेषे च पूतशीते प्रदापयेत् ॥ १७३ ॥
 शर्करायास्तुलां प्रस्थं क्षौद्रं दद्याच्च कार्षिकम् ।

व्योषव्याघ्रनखोशीरं क्रमुकं सैलवालुकम् ॥ १७४ ॥

मधुकं कुष्ठमित्येतच्चूर्णितं घृतभाजने ।

यवेषु दशरात्रस्थं ग्रीष्मे, द्विः शिशिरे स्थितम् ॥ १७५ ॥

पिवेत्तद्गहणीपाण्डुरोगार्शःशोफगुल्मनुत् ।

मूत्रकृच्छ्राश्मरीकुष्ठकामलासन्निपातनुत् ॥ १७६ ॥

अर्शसि पीत्वासवः ।

द्रोणं पीलुरसस्य वल्लगलितं न्यस्तं हविर्भाजने

युञ्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः ।

पाठामाद्रिदुरालभाञ्जलविदुलव्योषत्वगेलोल्लकैः

स्पृक्काकोललवङ्गवेलेचपलामूलाग्निकैः पालिकैः ॥ १७७ ॥

गुडशतविनियोजितं निवाते

निहितमिदं प्रपिवेच्च पक्षमात्रात् ।

प्रशमयति गुदाङ्कुरान्सगुल्मा-

ननलवलं प्रथलं च संविधत्ते ॥ १७८ ॥

रक्तपित्ते उशीरासवः ।

उशीरं पद्मकं रोध्रं प्रियङ्गुं नीलगुत्पलम् ।

प्रपौण्डरीकं काश्मीरं ञ्हीविरं धन्वयासकम् ॥ १७९ ॥

सेव्यं किराततिकं च पटोलं काञ्चनारकम् ।

पद्मं शालमलिनिर्यासं न्यग्रोधोदुम्बरं शटी ॥ १८० ॥

माञ्जिष्ठा पर्पटं जम्बूर्भागानेषां पलोन्मितान् ।

सूक्ष्मचूर्णीकृतान् दद्याद्वाक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १८१ ॥

धातक्याः प्रस्थमेकं तु तोयद्रोणे विनिक्षिपेत् ।

शर्करायास्तुलां दत्त्वा माक्षिकस्य तुलां तथा ॥ १८२ ॥

उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः ।

पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोफहरस्तथा ॥ १८३ ॥

श्वासकार्येऽत्रायमाणासवः ।

त्रायन्ती कदफलं दन्ती पौष्करं कण्टकारिका ।

दुरालभाऽञ्जनं सिंही पिप्पलीमूलमेव च ॥ १८४ ॥

धात्री कृमिहरं भार्ज्जीं माचिका चैलवालुकम् ।
 पथ्या शटी विशाला च भागानष्टपलोन्मितान् ॥ १८५ ॥
 चतुर्द्वेणोऽम्भसः पक्त्वा शृतं द्रोणावशेषितम् ।
 शतत्रयं मांसिकस्य धातक्या पलविंशतिम् ॥ १८६ ॥
 श्यामापलानि चत्वारि ह्येलात्वक्पत्रकेसरम् ।
 भागान्द्विपलिकानेषां चूर्णं कृत्वा विनिःक्षिपेत् ॥ १८७ ॥
 त्रायमाणसवो ह्येष कासश्वासामयप्रणुत् ।
 पाण्डुहृद्रोगगुल्मार्शःसन्निपातज्वरापहः ॥ १८८ ॥

गुल्मे चविकासवः ।

तुलार्थं चविकायास्तु तदर्थं चित्रकस्य च ।
 वाष्पिका पौष्करं मूलं पद्मन्था ह्युषा शटी ॥ १८९ ॥
 पटोलमूलत्रिफलायवानीकुटजत्वचः ।
 विशाला धान्यकं रास्त्रा दन्ती दशपलोन्मिताः ॥ १९० ॥
 कृमिघ्नमुस्तमङ्गिष्ठादेवदारुकटुत्रिकात् ।
 भागान्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १९१ ॥
 द्रोणशेषे सुशीते च देयं गुडशतत्रयम् ।
 धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातपलाष्टकम् ॥ १९२ ॥
 लवङ्गव्योषकङ्कणेलं पलिकानि प्रकल्पयेत् ।
 निदध्यान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ १९३ ॥
 चतुष्पलां पिवेन्मात्रां प्रातः पीतो नियच्छति ।
 सर्वान्गुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ १९४ ॥
 प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्टीलां वातशोणितम् ।
 उदराण्यन्नद्विंशं चैव चविकारुयो महासवः ॥ १९५ ॥

ग्रहण्यां मूलासवः ।

द्विपञ्चमूलरजनीजीवकर्षभजीरकम् ।
 पृथक्पञ्चपलैर्भागैश्चतुर्द्वेणोऽम्भसः पचेत् ॥ १९६ ॥
 द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य द्विशतं तथा ।

चूर्णितान्कुडवार्धशान्दत्त्वा चात्र समाक्षिकान् ॥ १९७ ॥

मियङ्गुमुस्तमञ्जिष्टाविडङ्गमधुकप्लवान् ।

रोध्रं सावरकं चैव मासार्धं स्थापयेद्भृशम् ॥ १९८ ॥

एष मूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तहा ।

आमहृत्कफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १९९ ॥

क्षयरोगे बृहन्मूलासवः ।

महावृक्षवटाकाणां विना मूलैः परैः शुभैः ।

अष्टोत्तरशतैरम्भस्त्रिंशद्द्वटमितं पचेत् ॥ २०० ॥

तुलात्रयप्रमाणं च दशमूल्यास्तथैव च ।

अष्टावशेषमुत्तार्य गुडस्यानु दिनद्वयम् ॥ २०१ ॥

पलानां विंशतिशतं क्षिपेत्तच्च दृढे घटे ।

आतपे तं विनिक्षिप्य धारयेत्त्रिदिनं ततः ॥ २०२ ॥

उद्धृत्य धूपिते पात्रे वस्त्रपूतं क्षिपेद्भिषक् ।

पलाष्टकं हरीतक्या धातक्याः पलविंशतिम् ॥ २०३ ॥

पूगानां विंशतिपलं पिप्पल्याः पलपञ्चकम् ।

एलालवङ्गकङ्कोलजातीत्वक्पत्रकेसरम् ॥ २०४ ॥

पलं पलं समरिचं चूर्णांकृत्य भिषग्वरः ।

आसवे निक्षिपेत्तत्र मधुनः कुडवद्वयम् ॥ २०५ ॥

संजातेऽष्टदिने तस्मादुद्धृत्यान्यत्र तं न्यसेत् ।

आसवे सकषाये तु गुडमन्यं प्रदापयेत् ॥ २०६ ॥

निष्कास्य पूर्वचूर्णं तु नवं तत्र नियोजयेत् ।

नाम्ना मूलासवो ह्येष रोगराजनिकृन्तनः ॥ २०७ ॥

श्वासामवातविध्वंसी पाण्डुप्लीहोदरापहः ।

कुमिगुल्मप्रमेहाणां नाशनो वह्निदीपनः ॥ २०८ ॥

धातुक्षये भृङ्गराजासवः ।

भृङ्गराजरसद्रोणं गुडस्य द्वितुलां तथा ।

प्रस्थार्धं तु हरीतक्याः स्त्रिग्धे भाण्डे निवेशयेत् ॥ २०९ ॥

पक्षादूर्ध्वं पिबेदेनं मात्रया च यथाबलम् ।
जाते ह्यस्मिन्पुनर्दत्त्वा पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥ २१० ॥
जातीफलं लवङ्गानि त्वगेलापत्रकेसरम् ।
धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ॥ २११ ॥
कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम् ।
कामवृद्धिं करोत्येष बन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २१२ ॥

भगन्दरे गुग्गुल्वासवः ।

शतं हरीतकीनां तु विभीतकशतं तथा ।
प्रस्थमामलकानां च गुग्गुलोश्च चतुष्पलम् ॥ २१३ ॥
त्वगेलापिप्पलीमूलचव्यचित्रकदीप्यकम् ।
व्योषं तालीसपत्रं च मुस्तकेसरकट्फलम् ॥ २१४ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादशेषे जले ततः ।
धातक्याः प्रस्थमेकं तु तथा गुडशतद्वयम् ॥ २१५ ॥
द्राक्षादाडिमखण्डानां भागान्दशपलोन्मितान् ।
सर्वमेतत्समालोड्य स्थापयेद्राजने शुभे ॥ २१६ ॥
यदा युक्तरसः स्याच्च मुजातो गन्धवर्णतः ।
तं पूरयेत्तदा भाण्डे शुक्तस्येक्षुरसस्य तु ॥ २१७ ॥
पण्माससंयुतो ह्येष द्रवो पेयः प्रयोगतः ॥ २१८ ॥
गुग्गुल्वासव इत्येष देयः सर्वेषु रोगिषु ।
प्राग्भक्तं मध्यभक्तं वा ग्रासे ग्रासान्तरे तथा ॥ २१९ ॥
दद्यात्क्रमेण योगं तु वयः सात्म्यमपेक्ष्य च
नाशयेदुदरं ग्रीहामूर्खस्तम्भं सकामलम् ॥ २२० ॥
चिरोत्थितमपि श्वासं कासशोफभगन्दरान् ।
कृमिकुष्ठप्रमेहेषु हितश्चैवाग्निदीपनः ॥ २२१ ॥

अर्शस्तु ताम्बूलासवः ।

जतुलितं ननु कृत्वा भाण्डकमर्धप्रवेशितं भूमौ ।
तत्तरुणहरितजम्बूपत्रकाथेन संशुद्धम् ॥ २२२ ॥

शुद्धे च शर्कराभिरगरं दद्यात्सुगन्धतरम् ।
 वासार्थं, धातक्याः पलानि खलु सप्त देयानि ॥ २२३ ॥
 पूगीफलानि खदिरं दशपलिकानि दापयेत्तत्र ।
 ताम्बूलीपत्रशतैर्दशभिः क्षुण्णैश्च पञ्चभिश्चान्यैः ॥ २२४ ॥
 पलशतमेकं मधुनः शतं च सार्धं तु वारिणो देयम् ।
 कङ्कालककृष्णानां प्रत्येकं द्वे पले च स्युः ॥ २२५ ॥
 त्रिफलाजातिफलैलालवङ्गकुसुमानि चैकपलिकानि ।
 दत्त्वाऽबलोद्धमेतत्रीणि दिनानि पाणिना पात्रे ॥ २२६ ॥
 स भवेद्यदा सशब्दस्ततो गुडशतपलानि त्रीणि ।
 देयानि प्रविलीनमग्नियोगात्तं तु जलद्रोणसंयुक्तम् ॥ २२७ ॥
 पक्षद्वयेन पेयो रसनाक्षिमनोहरः सुरभिगन्धः ।
 ताम्बूलासव एष रसायनानां भवेदग्न्यः ॥ २२८ ॥
 प्रीणयति हन्ति गुदजान् सर्वाश्च कफोद्भवास्तथा रोगान् ॥
 बलवर्णशुक्रजननो ह्युपयोगादश्मरीं हन्यात् ।
 संवत्सरमुपयुक्तः स्थिरवयसं मानवं कुरुते ॥ २३० ॥

अपस्मारे पञ्चमूत्रासवः ।

अजागोसुरभीणां च चतुष्कर्षं खरोष्ट्रयोः ।
 मूत्रं संग्राह्यं कुम्भे च दत्त्वा चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २३१ ॥
 वचाया वातकुम्भस्य लशुनस्यैलया सह ।
 प्रत्येकं तु लवङ्गस्य पलार्धं कृमिनाशिनः ॥ २३२ ॥
 व्योषस्यापि पलं सार्धमभयैकपला मता ।
 चुह्यग्रे वासरान्सप्त निक्षिप्याशु समुद्धरेत् ॥ २३३ ॥
 ग्रीहोदरहरं दिव्यं मूढवातकफापहम् ।
 अशीतिवातशमनं पञ्चमूत्रासवं विदुः ॥ २३४ ॥

धातुक्षये हरीतक्यासवः ।

प्रस्थार्थं तु हरीतक्याः धात्रीप्रस्थद्वयं तथा ।
 दशमूलशतार्धं च पौष्करं च तदर्धकम् ॥ २३५ ॥

तत्तुल्यं चित्रकं दद्याच्चित्रकार्थी दुरालभा ।
 गुड्ढ्या विंशतिपलं विशालापलपञ्चकम् ॥ २३६ ॥
 खदिरस्य पलान्यष्टौ तदर्धं बीजपूरकम् ।
 मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपित्थं देवदारुकम् ॥ २३७ ॥
 विडङ्गं चविकां रोत्रं भाङ्गीं स्यादेलवालुकम् ।
 संवर्तकं कणां चैव क्रमुकं शटिसुप्रभम् ॥ २३८ ॥
 म्रियङ्कुसारिवामांसीनागकेसररेणुकम् ।
 त्रिवृतां रजनीं रास्नां मेपगृङ्गीं पुनर्नवाम् ॥ २३९ ॥
 शताह्वां रोहिणीं दन्तीं पलांशां काथयेज्जले ।
 चतुर्थभागशेषे तु द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत् ॥ २४० ॥
 त्रिंशत्पलानि धातक्या गुडाच्छुद्धाच्चतुःशतम् ।
 द्वात्रिंशत्पलिकं सौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ २४१ ॥
 भाण्डे पुराणे सुस्निग्धे मांसीमरिचधूपिते ।
 धूपिते च पुनर्दद्यात्पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ २४२ ॥
 जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेसरान् ।
 कर्षमात्रां च नेपालीं दत्त्वा पंक्षं निधापयेत् ॥ २४३ ॥
 कतकफलचूर्णेऽपि क्षिप्ते निर्मलता भवेत् ।
 पक्षादूर्ध्वं पिबेद्यस्तु मात्रया च यथावलम् ॥ २४४ ॥
 धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ।
 अर्शासि षट्प्रकाराणि तथाऽष्टाबुदराणि च ॥ २४५ ॥
 प्रमेहं च महान्याधिभरुचिं पाण्डुतां तथा ।
 सर्वान् वातान् तथाऽप्यामं श्वासं छर्दिं तथैव च ॥ २४६ ॥
 अष्टादशैव कुष्ठानि शोषं शूलं भगन्दरम् ।
 शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च ह्यमरीं च विनाशयेत् ॥ २४७ ॥
 कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम् ।

महावेगो महातेजो महावीर्यबलोद्धतः ।

कामपुष्टिं करोत्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २४८ ॥

आर्तत्रयाद्यासवः ।

नेत्रभेषजशिफापलाष्टकं सार्धमैलपलमर्थमस्तकीम् ।

हेमजार्धपलमेकतः कृतं द्रोणवारिमिलितं दिनत्रयात् ॥ २४९ ॥

यः पिवेद्विपलिकं दिनोदये नीरमस्तसमये समाहितः ।

तस्य नश्यति कटीसमुद्भवं दद्रु मासयुगलेन निश्चितम् ॥ २५० ॥

क्षये दशमूलासवः ।

दशमूलतुलार्धं तु पौष्करं च तदर्धकम् ।

तत्तुल्यं चित्रकं दद्याच्चित्रकार्धां दुरालभाम् ॥ २५१ ॥

गुडुचीं च तथा रोध्रं श्रद्धयात् पलविंशतिम् ।

खदिरस्य पलान्यष्टौ तत्समं बीजसारकम् ॥ २५२ ॥

प्रस्थमामलकीनां च तदर्धां च हरीतकी ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपित्थं देवदारु च ॥ २५३ ॥

विडङ्गं चविका हृक्षं भार्ङ्गी स्यादष्टवर्गकम् ।

त्रिवृता रजनी रास्त्रा कर्कटाख्या पुनर्नवा ॥ २५४ ॥

मियङ्गुसारिवामांसीनागकेसररेणुकम् ।

शताह्वेन्द्रयवामुस्तं द्विपलान् काथयेज्जले ॥ २५५ ॥

अष्टद्रोणे, चतुर्थांशं काथयित्वा चतुर्गुणे ।

द्राक्षायाः पलषष्टिं वै काथयित्वा चतुर्गुणे ॥ २५६ ॥

जले त्रिभागशेषे तु पूते तस्मिन्विनिक्षिपत् ।

त्रिंशत्पलानि धातक्या गुडाच्छुद्धाच्चतुःशतम् ॥ २५७ ॥

द्रात्रिंशत्पालिकं क्षौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

भाण्डे स्निग्धे पुराणे च मांसीमरिचधूपिते ॥ २५८ ॥

१ नेत्रभेषजं 'सना' 'सोनामुखी' इति ख्यातं, तन्मूलं अष्टपलं; ऐलः 'एलिया' 'मुसब्बर' इति ख्यातः, तस्य सार्धपलं; मस्तकी 'रूमामस्तकी' इति ख्याता, तस्या अर्धपलं; हेमजा 'रेवंदचीनी' इति ख्याता, तस्या अर्धपलं; अन्य-
स्फटम ।

धूपिते च पुनर्दद्यात्पिप्पलीनां पलद्वयम् ।
 जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेसरान् ॥ २५९ ॥
 जातीपत्रीं च कङ्कोलं चन्दनं बालुकं तथा ।
 कर्षमात्रां च नेपालीं दत्त्वा भूमौ निधापयेत् ॥ २६० ॥
 पक्षादूर्ध्वं पिबेदेतं मात्रया च यथाबलम् ।
 धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ॥ २६१ ॥
 अर्शासि षट्प्रकाराणि तथाऽष्टाबुदराणि च ।
 प्रमेहं च महाव्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ २६२ ॥
 सर्वान्वातांस्तथाऽप्यामं श्वासं छर्दिमरोचकम् ।
 अष्टादशच कुष्ठानि शोफं शूलं भगन्दरम् ॥ २६३ ॥
 शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च हृश्मरीं च विनाशयेत् ॥ २६४ ॥
 महावेगो महावीर्यो महातेजा महाद्युतिः ।
 कामप्राष्टिकरो ह्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २६५ ॥

स्वर्जरासवः ।

खर्जूरमुस्तामलकीनिकुम्भाद्राक्षाभयापूगफलानि पाठा ।
 भाङ्गीशटीकुष्ठजलाजमोदं मूलं कणायाः सपलङ्कषं वै ॥ २६६ ॥
 पुनर्नवा कायफलं प्रियङ्गुः कर्चूरकं कृष्णमजाजिविसे ।
 त्रिवृच्छिवाच्छलिधमासकं च लज्जालुरोहीतकलिञ्जमूलम् २६७
 अमूनि सर्वाणि महौषधानि चत्वारि चत्वारि पलानि चैव ।
 मांसीचतुर्जातकणालवङ्गं जातीफलं चन्दनलोहचूर्णम् ॥ २६८ ॥
 प्रमाणतो द्विद्विपलान्यमूनि सुधातकीपुष्पपलानि सप्त ।
 गुडस्य सप्त त्रिगुणानि दद्यान्मणानि संचूर्ण्य ततः समस्तम् २६९
 घृतस्य भाण्डे विपुले निवेश्य दशोत्तरं प्रस्थशतं जलस्य ।
 क्षिप्वा क्षिपेत्पञ्च दिनानि भूमौ निष्पन्नकल्पं हृदये विचार्य २७०
 षष्ठे दिने तच्च सुयोजनीयं ताम्रस्य यन्नद्वयमध्यभागे ।
 शतत्रयं नागलतादलानां सहस्रयुग्मं शतपत्रकाणाम् ॥ २७१ ॥

प्रक्षाल्य देयं विधिनाऽथ सन्धिं विमुञ्च्य चुल्यां विनिवेश्य यत्रम् ।
 निष्काशयेदर्कमतो यथावद्वत्त्वा जलं चोपरि यत्रकस्य ॥ २७२ ॥
 बलावलं रोगनिपीडितानां विमृश्य देयः पलकप्रमाणः ।
 खार्जूरसंज्ञः प्रिय आसवोऽयं विमूचिकायक्ष्मभयं निहन्ति २७३
 हृद्रोगकासविषमज्वरशोफतर्पश्वासप्रमेहबलसंक्षयपाण्डुरोगान् ।
 हिष्माश्च नाशयति सर्वशिरोविकारान् रुच्यग्निवर्धनबलप्रद-
 वृष्य एषः ॥ २७४ ॥

मस्त्वासवः ।

वंशपत्रीप्रतीकाशमस्तुद्रोणे मुनिर्मले ।
 क्षिपेद्बुडतुलां भाण्डे वचाकुष्ठविलेपिते ॥ २७५ ॥
 तस्मिन् दद्यात्तु कृष्णायाः प्रस्थं प्रस्थत्रयं तथा ।
 त्रिफलाया विडङ्गानां कुडवं मरिचस्य च ॥ २७६ ॥
 काश्मरीफलघृद्रीकापरूषकफलानि च ।
 वत्सकस्य च बीजानि समानि मरिचेन तु ॥ २७७ ॥
 पञ्चमूलं च षड्ग्रन्थां दन्तीं चित्रकमेव च ।
 द्वे द्वे पले च भल्लाताद्विषक् समुपकल्पयेत् ॥ २७८ ॥
 यवपल्ले स्थितः पेयोऽरिष्टो मात्रावलं प्रति ।
 पाण्डुरोगोदरे हन्ति ग्रहण्यशोविकारनुत् ॥ २७९ ॥
 परं भगन्दरुहीहशोषकासामयापहः ।
 अग्निसंदीपनः पथ्यो वाधिर्यस्थौल्यनाशनः ॥ २८० ॥
 मस्त्वासव इति ख्यातो लेखनो मेदुरे हितः ।

ज्वरे कुब्जकासवः ।

शतं कुब्जकमूलस्य मृद्रीकार्धशतं तथा ॥ २८१ ॥
 मधुकपुष्पकाश्मर्यभागान् दशपलोन्मितान् ।
 चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शीते पादावशेषिते ॥ २८२ ॥
 शतत्रयं गुडस्याथ धातक्या पलविंशतिम् ।
 कनकस्य तु चत्वारि व्योषं कङ्गोलमेव च ॥ २८३ ॥

प्लात्वकपत्रजातीनां लवङ्गस्य तथैव च ।
 भागान् पलप्रमाणार्थं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ २८४ ॥
 कुञ्जमूलासवो ह्येष मासमात्रं विधारितः ।
 शमयेत्सन्निपातोत्थान् ज्वरान् सर्वान् न संशयः ॥ २८५ ॥

नालिकेरासवः ।

नालिकेरोदकं चैव द्रोणमात्रं प्रदापयेत् ।
 द्रोणार्थं रसमिक्षोश्च रसप्रस्थं तु शाल्मलेः ॥ २८६ ॥
 दशमूलरसस्यापि प्रस्थमात्रं तथैव च ।
 घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मध्ये चूर्णं निवेशयेत् ॥ २८७ ॥
 चातुर्जातकधातकयोः पलानि खलु षोडश ।
 शाणमात्रा तु कस्तूरी केशरं तगरं तथा ॥ २८८ ॥
 चन्दनं देवपुष्पं च पलमात्रं पृथक् पृथक् ।
 मासादूर्ध्वं पिबेच्चायुं रूपे कामसमो भवेत् ॥ २८९ ॥
 वृद्धोऽपि तरुणीं गच्छेत् षण्ढोऽपि पुरुषायते ।
 बलीपलितसंत्यक्तः शतायुश्च भवेन्नरः ॥ २९० ॥
 नालिकेरासवः प्रोक्तः शम्भुना परमेष्ठिना ।

कूष्माण्डासवः ।

कूष्माण्डं जर्जरीकृत्य रसमादाय यत्नतः ॥ २९१ ॥
 द्रोणं, गुडार्थं दातव्यं, चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ।
 कटुत्रिकं लवङ्गं च चातुर्जातं तथैव च ॥ २९२ ॥
 जातीफलं च कङ्करोलं जातीपत्री प्रियङ्गुकम् ।
 कपित्थं बत्सकं चैव बीजं गोक्षुरकस्य च ॥ २९३ ॥
 अमृतासत्त्वभाग्यौ च बलाबीजं तथैव च ।
 हृषुषा क्रमुकं चैव देवदारु मदावहम् ॥ २९४ ॥
 मुस्तं खदिरसारं च चित्रकं च फलत्रिकम् ।
 रास्त्रा यष्ट्याहकं चापि तुम्बरु नागकेशरम् ॥ २९५ ॥

ग्रन्थिकं चाजमोदा च कारवी दीप्यकस्तथा ।
 कदफलं च तुगाक्षीरी ह्याकलकमुट्टिङ्गणम् ॥ २९६ ॥
 कपित्थवल्कलं चैव शताह्वा गजशेलुकम् ।
 कलिङ्गकाश्च काकोली शटी मोचरसो घनम् ॥ २९७ ॥
 कोकिलाक्षस्य बीजानि कसेरुः सहदेविका ।
 भूनिम्बश्चविका स्पृक्का पद्मकं च निशाद्रयम् ॥ २९८ ॥
 धान्यकं सुरदाली च क्षीरकन्दस्तथैव च ।
 एतानि चाक्षमात्राणि लोहचूर्णं पलाष्ठकम् ॥ २९९ ॥
 भक्षिपेदथ धातक्याः पलानि खलु षोडश ।
 मासार्धं घृतभाण्डे तु यत्नतः स्थापयेत्क्षितौ ॥ ३०० ॥
 अनेन विधिना सिद्ध आसवः परिकीर्तितः ।
 पीत्वाऽस्य पलमेकं तु प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥ ३०१ ॥
 धातुक्षयं च मन्दाग्निं प्रमेहं पाण्डुमेव च ।
 अर्शासि ग्रहणीदोषान् प्लीहोदरभगन्दरान् ॥ ३०२ ॥
 रक्तपित्तामवाते च श्लेष्मरक्तं तथैव च ।
 निहन्ति वातजान् रोगान् भेदःस्थौल्यापहाऽऽसवः ॥ ३०३ ॥

रसायनारिष्टः ।

समूलां पिप्पलीं शृङ्गीं बृहतीमश्मभेदकम् ।
 पाटलां देवकाष्ठं च श्वदंष्ट्रामभयां तथा ॥ ३०४ ॥
 षोडशपलमेकैकं कोलानामाढकं पृथक् ।
 दन्तीचित्रकमूलानां पलानि पञ्चविंशतिम् ॥ ३०५ ॥
 चतुर्गुणे जले पक्त्वा ग्राह्यमर्धावशोषितम् ।
 शीते समावपेद्भाण्डे प्रलिप्ते मधुसर्पिषा ॥ ३०६ ॥
 खण्डस्य द्विशतं शुद्धं तद्रहोहस्य दापयेत् ।
 पत्रीकृतं तिलोत्सेधं सूक्ष्मचूर्णान्यमूनि च ।
 प्रियङ्गुं पिप्पलीं लोभ्रं मृद्रीकां चैलवालुकम् ॥ ३०७ ॥

क्रमुकं शतपुष्पां च निम्बं तेजस्वतीमापि ।
 पलिकं देवदारोश्च खदिराच्च चतुष्पलम् ॥ ३०८ ॥
 क्षौद्रमस्थद्वयं चापि समावाप्य घटे शुभे ।
 सौम्ये पुष्ये तथा हस्ते रोहिण्याष्टचरामु च ॥ ३०९ ॥
 दशरात्रस्थितः पेयोऽरिष्टश्चात्रेयपूजितः ।
 अश्विभ्यां कथितः पूर्वं रसायनवरो ह्ययम् ॥ ३१० ॥
 मात्रामश्विवलापेक्षी पिवेदस्य हिताशनः ।
 धन्यः पुष्टिकरो बल्यो बलीपलितनाशनः ॥ ३११ ॥

ज्वरे धान्यकाद्यरिष्टः ।

धान्यकोशीरमुस्तानां पलमेकत्र कारयेत् ।
 द्विपलं पन्नकं कुष्ठं कुर्यान्निम्बं तदर्धकम् ॥ ३१२ ॥
 सर्वांशेन ततो दद्याच्छिन्नाङ्गां च फलत्रिकम् ।
 जलद्रोणद्वयं दत्त्वा षोडशांशेन संहरेत् ॥ ३१३ ॥
 पलं दान्वास्ततस्तस्मिन् शीते पूते भिषग्वरः ।
 पलानि षोडश क्षौद्रादृत्त्वा सर्वं विमन्थयेत् ॥ ३१४ ॥
 स्थापयेद्धृतभाण्डे तु मासाद्धर्वं प्रयोजयेत् ।
 धान्यकादिररिष्टोऽयं सर्वज्वरविनाशनः ॥ ३१५ ॥

धातुक्षये लवङ्गसवः ।

देवपुष्पं वराङ्गं च केशरं पृथुकां तथा ।
 कलौर्जीं मर्कटीबीजं मूशलीद्वयगोक्षुरम् ॥ ३१६ ॥
 बलावीजानि पोस्तत्वग्बीजं च करहाटकम् ।
 पृथक् पृथक् प्रकुर्वीत पलानां पञ्चकं तथा ॥ ३१७ ॥
 चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्यात्पादावशेषितम् ।
 शटी च पिप्पलीमूलं मरिचं साश्वगन्धकम् ॥ ३१८ ॥
 शुण्ठी जातीफलं चापि कुङ्कुमं जातिपत्रिका ।
 आकलकं कवावं च होला कृष्णाऽगुरुस्तथा ॥ ३१९ ॥

तालिसं चन्दनं चैव विजया क्षीरकन्दका ।
 वृद्धदारुभवं बीजं क्रमुकं वंशरोचना ॥ ३२० ॥
 धतूरस्य च बीजानि पलमात्राणि कारयेत् ।
 सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ ३२१ ॥
 द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं धातक्याश्च पलाष्टकम् ।
 तुलार्धं तु गुडाज्जीर्णाद्भूतभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ३२२ ॥
 मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ।
 धातुक्षयं जयेच्छीघ्रं लवङ्गाद्यासवस्त्वयम् ॥ ३२३ ॥

विद्रवौ वरुणासवः ।

शतं पलानां वरुणस्य मूलं त्वक् शिशपायाश्च तदर्धमात्रा ।
 तावत्तथा पुष्करमूलमुक्तं तदर्धमात्रिश्च तदर्धमात्रः ॥ ३२४ ॥
 कुरण्टको रोहितकत्वचश्च तावच्च शिगुर्दशमूलकं च ।
 पलानि त्रिंशत्खलु देवदारोः क्षुद्रा च तुल्या सुरदारुणा च ॥ ३२५ ॥
 दर्भस्य मूलानि पलानि पञ्च हिंसातरोस्त्रीणि च कण्टकार्याः ।
 राजादनस्यापि पलानि सप्त शतावरीमूलपलत्रयं च ॥ ३२६ ॥
 तत्तुल्यकाश्मर्यकमर्जुनश्च शृङ्गी शताह्वा गजपिप्पली च ।
 बलाशटीनागवलाकरञ्जत्रायन्तिकाकेवुकमेषशृङ्गचः ॥ ३२७ ॥
 कुष्ठं च वासासितकर्बुकं च विडङ्गकृष्णातिविषाश्च जीरम् ।
 चव्यं च रास्त्रोत्पलसारिवा च स्यात्कौटजश्चाऽप्यथ दीप्यकं च ॥
 वातार्यरिष्टाररनार्यतिकं रक्ताऽमृता तेजनीवल्कलं च ।
 सव्याधिघाता ह्रुषा च भृङ्गी प्रत्येकमेषां हि पलद्वयं तु ३२९
 पचेज्जलद्रोणचतुष्टये च तत्पादशेषे पलपदशतं च ।
 क्षिपेद्दुडं माक्षिकधातकीनां पलानि त्रिंशत्सकलं पुनस्तत् ३३०
 निधापयेन्मांस्यगुरुप्रधूपिते भाण्डे ततः कुङ्कुमचन्दनद्वयम् ।
 पलं क्षिपेद्द्वै कतकं निशाकरं लवङ्गमाकलुकवंशरोचनम् ३३१
 भार्गी सुराष्ट्री तगरं कवावं जातीफलं पत्रकजातिपञ्चौ ।
 लोहं चतुर्जातकवालकं च प्रत्येकमेषां हि पलं विनिक्षिपेत् ३३२

मासं निधेयो यवमध्यतस्तु पेयो यथाव्याधिवलं समीक्ष्य ।
 ग्रीहोदरं विद्रधिगुल्मकासं श्वासं तथा रक्तविकाराहिके ॥ ३३३ ॥
 शूलामवातार्बुदपाण्डुरोगं कुष्ठं तथा छर्दिमरोचकं च ।
 शोफं तथाऽऽध्मानभगन्दरं च शुक्राश्मरीं ग्रन्थिमनेकभेदम् ३३४
 शोषापतानादितपक्षघातसन्धिग्रहार्तीश्च हलीमकं च ।
 निहन्ति बन्ध्यासुतदोऽथ वृष्यः प्राणप्रदोऽयं वरुणासवो हि
 पित्तानिलश्लेष्मरुजापहश्च वैतालरक्षोग्रहभीतिहन्ता ।
 ग्रन्थान्समालोक्य चिकित्सकानां हिताय नूनं कथितो मया हि

ग्रीहरोगे रोहीतकासवः ।

रोहीतकाचुलामेकं चतुर्द्वेणेऽम्भसः पचेत् ।
 द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥ ३३७ ॥
 पलानि खलु धातक्याः षोडश द्विशतं गुडात् ।
 पलं पृथक् त्रिजातस्य पञ्चकोलपलं तथा ॥ ३३८ ॥
 चूर्णाकृतं क्षिपेत्सर्वं घृतलिप्ते तु भाजने ।
 पक्षादूर्ध्वं पिबेच्चापि ततो मात्रां यथावलम् ॥ ३३९ ॥
 ग्रीहं ग्रीहोदरं चैव ग्रीहशूलं तथैव च ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथा सर्वमरोचकम् ॥ ३४० ॥
 हन्ति विबन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम् ।
 नाशयेच्छर्द्यतीसारं ज्वरं जीर्णं तथैव च ॥ ३४१ ॥
 रोहितकासवो ह्यपि ग्रीहं च शमयेद्भुवम् ।

गण्डीरासवः ।

जातसारं तु गण्डीरं सपुष्पं परिशोषयेत् ॥ ३४२ ॥
 खण्डशः क्षोदितं कृत्वा तस्य पञ्चाढकं पचेत् ।
 त्रिंशैव त्रिफलाप्रस्थान् दशमूलीतुलां तथा ॥ ३४३ ॥
 दद्यात्कुटजवल्कस्य पलानां पञ्चविंशतिम् ।
 इन्द्रयवं सभल्लातं विडङ्गं घनमेव च ॥ ३४४ ॥
 अर्धप्रस्थसमं भागानेकैकस्य समावपेत् ।
 पाठा मधुरसा दन्ती पङ्गन्था चित्रकस्तथा ॥ ३४५ ॥

एषां दशपलान् भागान्मृद्रीकायास्तथाऽऽढकम् ।
 दशद्रोणेषु तोयस्य पचेद्विद्रोणशेषितम् ॥ ३४६ ॥
 पूते तस्मिन्कषाये तु गुडस्यैकां तुलां क्षिपेत् ।
 तथा तु शोधितस्यापि, शुभ्रे भाण्डे निधापयेत् ॥ ३४७ ॥
 द्रौ प्रस्थौ मधुनश्चैव द्वावयोरजसस्तथा ।
 अर्धप्रस्थो विडङ्गानां कुडवो मरिचस्य च ॥ ३४८ ॥
 एतयोः सूक्ष्मचूर्णानि प्रतिवापार्थमाहरेत् ।
 चूर्णं मरिचकानां च मधुना सह योजयेत् ॥ ३४९ ॥
 कर्तव्यो भाण्डलेपस्तु समाक्षिच्य निधापयेत् ।
 एष मासस्थितः पेयो यथाव्याधिबलाबलम् ॥ ३५० ॥
 गण्डीरारिष्ट इत्येष व्यासतः परिकीर्तितः ।
 एष शोषान् प्रमेहांश्च गुल्मांश्च जठराणि च ॥ ३५१ ॥
 क्रिमिकुष्ठानि वर्ध्मानि प्लीहाशीसि भगन्दरम् ।
 इव्यधून् पाण्डुरोगांश्च ग्रहणीदोषमेव च ॥ ३५२ ॥
 ग्रन्थीश्च गलगण्डं च गण्डमालां तथैव च ।
 विषमज्वरकासांश्च विद्रधीन् वातशोणितम् ।
 अरिष्टः शमयत्याशु युधि शक्र इवासुरान् ॥ ३५३ ॥

प्लीहरोगे रोहीतकासवः ।

तुलाद्वयं रोहितमूलकानां द्विद्रोणमात्रेण जलेन पक्त्वा ।
 क्षेप्यं गुडस्य त्रिशतं पलानामष्टादश स्युस्त्रिफलापलानि ३५४
 लवङ्गजातीफलधातकीनां पलानि लोहस्य पडेव दद्यात् ।
 देयं चतुर्जातकपञ्चकोलं पृथक् पृथक् पञ्चपलं तथैव ॥ ३५५ ॥
 गुल्मज्वरारोचकहृद्विकारभगन्दरप्लीहनिपीडितानाम् ।
 रक्तामयश्वासनिपीडितानां सदाऽऽसवोऽयं विधिना प्रयोज्यः ५६

योगराजास्रवः ।

द्राक्षायाः शंकरायाश्च गुडस्य च पृथक् पृथक् ।
 पलानि दश कार्याणि पथ्यापलचतुष्टयम् ॥ ३५७ ॥

लवङ्गवदरीसर्जाजुनानां तु त्वचस्तथा ।
 पलं पलं पृथग्ग्राह्यं देवदारुपलं तथा ॥ ३५८ ॥
 चित्रकस्य च लोभ्रस्य पिप्पलीमूलकस्य च ।
 धातकीकुसुमानां च तद्रहेयं पलं पलम् ॥ ३५९ ॥
 तथा पूगफलानां तु कषायाणां पलं मतम् ।
 मञ्जिष्ठायाः पले द्वे तु काथ्यसंज्ञानि तानि च ॥ ३६० ॥
 लवङ्गकलिकाजातीपत्रैलानागकेशरम् ।
 मरीचपिप्पलीशुण्ठीत्वञ्जांसीचव्यमुस्तकम् ॥ ३६१ ॥
 कुष्ठं जातीफलं ग्रन्थिपर्णं स्नुक् कटुरोहिणी ।
 एषां पलं पलं ग्राह्यं तज्ज्ञेयं चूर्णसंज्ञितम् ॥ ३६२ ॥
 काथ्यद्रव्यात्ततः सम्यग्जलमष्टगुणं क्षिपेत् ।
 काथं तदुदके कुर्यादर्धभागवशेषितम् ॥ ३६३ ॥
 तत्काथं वस्त्रपूतं तु भाण्डेऽन्यस्मिन्मनोहरे ।
 कृत्वाऽत्र प्रक्षिपेच्चूर्णं तद्भाण्डं धान्यराशिगम् ॥ ३६४ ॥
 कृत्वा सप्तदिनं शीते काले चोष्णमये तथा ।
 यावद्दिनानि त्रीणि स्युः पश्चाद्भाण्डं समुद्धरेत् ॥ ३६५ ॥
 पुनस्तद्वस्त्रपूतं तु भाण्डे कर्पूरवासिते ।
 निक्षिप्य सेवयेत्यातः पलमात्रोपलक्षितम् ॥ ३६६ ॥
 स दचो वातपित्तघ्नो दीपनो रक्तरोगनुत् ।
 योगराज इति ख्यात आसवोऽयं गुणोत्तरः ॥ ३६७ ॥

अश्वोरोगे पीत्वासवः ।

मूर्वाखर्जूरपाठानिलरिपुमधुकं कच्छुरा हारहूरा
 कौलत्वर्षेतसाम्लं दहनमिशिकणाकृष्णविश्वालवङ्गम् ॥
 त्वग्लोधाद्वाडिमाच्च पलमितमिति पृथक् दन्तिमूलेन युक्तं
 पीलुद्रोणे द्विपक्षं गुडपलशतयुक् धान्यराशौ निदध्यात् ३६८
 अश्वः श्लिहं च गुल्मं जठरगदमथो नाशयेच्चाग्निमाद्यं
 कुर्याच्चाग्निं मदीसं प्रबलबलयुतं पीलुसंज्ञासवोऽयम् ॥ ३६९ ॥

प्रमेहे मध्वासवः ।

विशालातिविषाभार्गीकुष्ठमुस्ताप्रियङ्गवः ।
 विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचञ्चग्रन्थिकदीप्यकाः ॥ ३७० ॥
 अक्षांशान् सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ।
 दत्त्वा क्षौद्रं तदर्धं हि स्त्रिग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
 एष मध्वासवो हन्ति मेहं द्विपलयोजितः ॥ ३७१ ॥

लोहासवः ।

फलत्रिकं निम्बपटोलमुस्तापाठामृताचित्रकचन्दनं च ।
 वेङ्गं समंज्जा च मधूकसारकर्चूरवासान्निवृताहरिद्राः ॥ ३७२ ॥
 दुरालभापर्पटकण्टकारीशक्राशनं यासकचर्मरङ्गे ।
 शशाङ्कलेखाकपिकच्छुमूलं मेथी च विल्वं कुटजश्च तित्ता ३७३
 त्रायन्तिका पुष्करकस्य मूलं पलैकमानानि महौषधानि ।
 षष्टिः पलानां खदिरस्य सारो हयोरजः स्यात्पलयुग्ममानम् ॥
 स्याल्लोहकिट्टं च तुलाप्रमाणं तत्पञ्चकं केवुकजीवनीयम् ।
 प्रक्षिप्य भाण्डे शशियुग्मघसान् सूर्यातपे स्थाप्य ततस्तु योज्यः
 लोहासवोऽयं भिषजोपदिष्टः सर्वोत्तमो रोगविनाशहेतुः ॥ ३७५

इति श्रीशोढलप्रथिते गदनिग्रहे षष्ठ आसवाधिकारः संपूर्णः ।

समाप्तश्चायं प्रथमः प्रयोगखण्डः ।

स्नेहचूर्णगुटीलेहासवानां परिभाषा ।

अत्र गदनिग्रहे वैद्यवरसोदलेन घृतादिसाधनपरिभाषा नोक्ता, अतोऽभ्येतृणां सौकर्यार्थं मया संक्षेपेण परिभाषा निर्दिश्यते । तत्र पूर्वं मानपरिभाषैव ज्ञेया भवति । अतः सूच्यते—

न मानेन विना युक्तिर्द्वयाणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोग-
कार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्त-
च्चतुष्टयम् । षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥ माषै-
श्चतुर्भिः शाणः स्याद्वरणं तस्मिन्निगद्यते । टङ्कः स एव कथितस्तद्वयं
कोल उच्यते ॥ शुद्रको वटकश्चैव द्रव्यक्षणः स निगद्यते । कोलद्वयं
च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षः पिचुः पाणितलं
किञ्चित्पाणिश्च तिष्ठुकम् । विडालपदकं चैव तथा षोडशिका
मता ॥ करमध्यो हंसपद्मं सुवर्णं कवडग्रहः । उदुम्बरं च पर्यायैः
कर्ष एव निगद्यते ॥ स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं शुष्टिराम्नं चतुर्थिका ॥ प्रकृञ्चः षोडशी
बिल्वं पलमेवात्र कीर्यते । पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निग-
द्यते ॥ प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः । अष्टमानं च
स ज्ञेयः, कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्वेयमत्र
विचक्षणैः । शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽटकम् ॥ भाजनं
कंसपात्रे च चतुःषष्टिपलं स्मृतम् । चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो
नक्षत्रणोऽर्मणः ॥ उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकः ।
द्रोणाभ्यां सूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ॥ सूर्पाभ्यां च भवे-
द्द्रोणी बहो गौणी च सा स्मृता । द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता
सूक्ष्मवृद्धिभिः ॥ चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यत्रिका च सा ।
पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः ॥ तुला पलशतं ज्ञेयं
सर्वत्रैव विनिश्चयः । माषटङ्काक्षत्रिल्वानि कुडवः प्रस्थ आढकम् ।
राशिर्द्रोणिः खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

युक्तिः योजना, कर्तव्यविधिरिति यावत् । यवेत्यादि अत्र परमाण्वादिमाना-
कथनं तु तेषां विकित्सायामनुयोगादेव । सर्षपोऽत्र गौरसर्षपः । तैरष्टभिरको
यवः । यवोऽत्र निस्तुपो प्राज्ञः । चतुर्भिर्यवेरेका गुञ्जा, सा चात्र रक्ता ज्ञेया ।
षड्भिः रक्तगुञ्जाभिरको माषकः । अयं च सुवर्णमाषक इति सुश्रुतादौ
प्रसिद्धः । चतुर्भिर्माषकैरेकः शाणः । द्वाभ्यां शाणाभ्यामेकः कोलः । द्वाभ्यां

कोलाभ्यां चैकः कर्षः । स च संप्रति भारतवर्षे प्रचलितरूप्यकाह्वयव्यावहारिक-
द्रव्यपरिमितः । अतो माषशाणकोला यथाक्रमं एकःणक-आणकचतुष्टय-अर्धरूप्यक-
(६० ८८, ६० -१, ६० -११,) परिमिता ज्ञेयाः । (शरावस्य 'शेर' इति नाम्ना
भाषायां व्यवहारः, द्रोणस्य च 'मण' इति नाम्ना ।) अन्यत्स्पष्टम् ।

शुष्काणां स्यादिदं मानं द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः । न द्वैगुण्यं तुला-
माने पलोल्लेखागते तथा ॥ शुष्कद्रव्येषु यन्मानमार्द्रस्य द्विगुणं हि
तत् । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वं तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ॥ शुष्कं नवीनं
यद्द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु । आर्द्रं च द्विगुणं दद्यादेष सर्वत्र
निश्चयः ॥

यत्र प्रयोगे यद्द्रव्यं शुष्कमुपयुज्यते तस्य यावन्मानं लिखितं तावन्मितमेव
तद्ग्राह्यं; तदेव यद्यार्द्रमुपयुज्यते तदोक्तमानोपेक्षया द्विगुणं ग्राह्यं; यच्च द्रव्यं क्षीर-
तोयादिकं द्रवमेवोपयुज्यते तदप्युक्तमानोपेक्षया द्विगुणं ग्राह्यं; एतच्च द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यं
रक्तिकादौ कुडवादौ च सर्वत्रैव ज्ञेयं; परं यत्र तुलामानं यत्र वा पलशब्देन मानो-
ल्लेखः यथा—'रोहितकत्वचः श्रेष्ठात्पलानां पञ्चदशतिः' इत्यादौ तत्र तु द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यं
न कार्यम् । यत्तु "गुह्यादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः । द्रवार्द्र-
शुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ अस्यादिमानमारभ्य द्विगुणं
तद्द्रवार्द्रयोः"—इति तत्तु न प्रमाणं, युक्तिविरोधाच्चरकसुश्रुताविरोधाच्च ।
येषां तु द्रव्याणामार्द्रतायामेव नियमतः प्रयोगो न शुष्कतायां, तेषामार्द्राणां
द्वैगुण्यं न कार्यं; आर्द्रतायामेवैवामुपयोगस्तु तदवस्थायामेवैवामुत्कृष्टवैयर्थत्वात् ।
तानि च यथा—

"गुह्याच्चा कुटजो वासा कुष्माण्डं च शतावरी । अश्वगन्धा-
सहचरौ शतपुष्पा प्रसारणी ॥ प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव
कारयेत्" इति । अन्यच्च— "वासानिम्बपटोलकेतकिबलाकुष्मा-
ण्डकेन्द्रीवरीवर्षाभृकुटजाश्वगन्धसहितास्ताः पृथिगन्धाऽमृता ।
मांसं नागबला सहाचरपुरौ हिङ्गवार्द्रके नित्यशो ग्राह्यास्तत्क्षण-
मेव न द्विगुणिता ये चक्षुजाता घनाः"—इति ।

अथ भेषजादिग्रहणसंकेतः—लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्द-
नम् । चूर्णलेहासवज्जेहाः साध्या धवलचन्दनैः ॥ कषायलेपयोः
प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् । पयःसर्पिःप्रयोगेषु गव्यमेव हि
गृह्यते ॥ शकृद्रसो गोमयकं मूत्रं गोमूत्रमुच्यते । सिद्धार्थः सर्षपे
ग्राह्य उत्पले नीलमुत्पलम् ॥ कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते
जटा भवेत् । भागेऽनुक्ते च साम्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते च मूत्रमयम् ॥
द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम् । एकमप्यौषधं योगे

यस्मिन्पुनरुच्यते ॥ मानतो द्विगुणं ग्राह्यं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ।
 व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोकमपि तस्यजेत् ॥ अनुकमपि युक्तं यद्यो-
 ज्येतत्र तद्बुधः । कदाचिद्द्रव्यमेकं हि यदि योगे न लभ्यते ॥ तत्त-
 द्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तेन गृह्यते । द्रव्याभावे तु तत्तुल्यं द्रव्यमेव
 प्रदीयते ॥ न्यग्रोथादेस्त्वचो ग्राह्या सारः स्याद्बीजकादितः ।
 तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्वाञ्जिकलादितः ॥ घातक्यादेश्च पुष्पाणि
 स्तुह्यादेः क्षीरमाहरेत् । महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि
 च ॥ तेषां तु वक्त्रकलं ग्राह्यं सूक्ष्ममूलानि कृत्स्नतः । जाङ्गलानां
 वयःस्थानां चर्मरोमनखादिकम् ॥ क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे तु
 ग्राहयेत् । चतुष्पात्सु स्त्रियः श्रेष्ठाः पुमांसो विदग्धेषु च ॥ वल्मीक-
 कुत्सितान्पद्मशानोषरमार्गजाः । जन्तुवाणिहमंयाता नौबन्धः
 कार्यसाधिकाः ॥ शरद्व्यलिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् । विरे-
 कवमनार्थं च वसन्तान्तं समाहरेत् ॥

अथ ज्ञेयपाकपरिभाषा—अत्राह सुश्रुतः,—“ज्ञेयाच्चतुर्गुणो द्रवः, ज्ञेह-
 चतुर्थांशो भेषजकल्कः, तदैकभ्यं संभुज्य विपचदित्येव ज्ञेयपाक-
 कल्पः । भवति चात्र—ज्ञेहभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
 तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु ” इति । ज्ञेयाच्चतुर्गुणो द्रव इति
 वचनं एकद्वित्रिदशेषु चतुर्गुणत्वम्युने ज्ञेयधननिषेधार्थं, नतु पञ्चप्रभृतिदशेषु
 चतुर्गुणाधिक्ये प्रतिषेधार्थं, तेन यत्रैकेन द्रवेण पाकात्तत्रैकेनैव चातुर्गुणं, यत्र
 द्वाभ्यां द्वाभ्यां ज्ञेयपाकस्तत्र ज्ञेयद्विगुणाभ्यां ताभ्यां चातुर्गुणं, यत्र त्रिभिर्द्रवैः
 ज्ञेयपाकस्तत्र त्रिभिः मिलित्वातुर्गुणं, यत्र तु चतुर्भिर्द्रवैः ज्ञेयपाकस्तत्र ज्ञेह-
 समैश्वतुर्भिश्चातुर्गुणमिति । यत्र तु पञ्चप्रभृतीनि द्रवाणि तत्र तु सर्वाणि ज्ञेह-
 समान्येव प्राधान्यानि । तत्र क्षीरे विशेषः—यत्र द्रवान्तरं नोक्तं तत्र क्षीरं
 चतुर्गुणम् । द्रवान्तरप्रयोगे तु क्षीरं स्नेहसमं मतम्—इति । अस्या-
 यमर्थः—यत्र केवलेन क्षीरेणैव पाकस्तत्र क्षीरमेव चतुर्गुणं दत्त्वा ज्ञेहः साध-
 नीयः । यत्र तु एकद्रवन्तरयुनेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं ज्ञेहसमं द्रवन्तरं च
 ज्ञेहत्रिगुणमिति मिलित्वा ज्ञेयचतुर्गुणं द्रवेण पाकः, यत्र च द्रवान्तरद्रवयुनेन
 क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं ज्ञेहसमं द्रवान्तरद्रव्यं च ज्ञेयसार्धमिति मिलित्वा ज्ञेहचतु-
 र्गुणेन द्रवेण पाकः, यत्र द्रवान्तरत्रययुनेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं द्रवान्तरत्रयं च
 ज्ञेहसममिति प्रत्येकं मिलित्वातुर्गुणैः ज्ञेहपाकः । तदूर्ध्वं चतुःप्रभृतिद्रवान्तरयोगे
 क्षीरं द्रवान्तरं च प्रत्येकं ज्ञेहसमं दत्त्वा पाको निष्पादनायः । अथ कंठकामार्ग्यादेः—
 “लृष दिक्कुप्यैः कन्नैर्यत्रोक्तं ज्ञेहसाधनम् । कल्काख्यत्वात्तु पादार्थं
 तत्र कल्कं प्रदापयेत् ” इति । यत्र ज्ञेह कश्चि नोक्तस्तत्र केवलेन द्रवणैव

चतुर्गुणेन ज्ञेहसाधनम् । यदुक्तं—“ अकल्कः खलु यः स्नेहः स साध्यः
 केवलं द्रवे ” इति । यत्र योगे द्रव्यगण एव निर्दिष्टः काथो वा कल्को वा न
 निर्दिष्टस्तस्मिन्ननिर्देशे तस्माद्द्रव्यगणात्कल्ककाथावुभावपि प्रयोजयेत् । यदुक्तं
 सुश्रुते—“ कल्ककाथावनिर्देशे गणान्तस्मात्प्रयोजयेत् ”—इति । अत्र
 च गणशब्दो गणसंज्ञया यो गणः पञ्चमूलादिरुक्तस्तन्मात्रे न विवक्षितः, किंतु
 त्रिप्रभृतिद्रव्यसमूहे विवक्षितः, गणान्तस्मादित्युक्तेः । एतेन यत्रैकेन द्रव्येण द्रव्य-
 द्वयेन वा पाकस्तत्र कल्केनैव, यत्र तु त्रिप्रभृतिभिर्द्रव्यैः पाकस्तत्र कथं कल्काभ्या-
 मुभाभ्यामिति ज्ञेयम् । ज्ञेहसाधने काथकल्पनोक्ता सुश्रुतेन—“ तत्र यथायोगं
 त्वक्त्वात्फलमूलादीनामातपपरिशोषितानां छेदानि खण्डशब्दे-
 यित्वा भेदान्यणुशो भेदयित्वाऽवकुट्याष्टगुणेन षोडशगुणेन
 वाऽम्भसाऽभिषिच्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं काथयित्वाऽपहरे-
 दित्येष कषायपाककल्पः ” इति । अत्राष्टगुणतोयं सृद्धादिसंघाताभिप्रायेण
 द्रवद्वैगुण्येनैवोक्तम् । यदुक्तमन्यत्र—“ षट्पदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं
 जलम् । कठिनात्कठिनं यच्च तत्र षोडशिकं जलम् ॥ सृद्धादौ द्रव्य-
 संघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः । मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्य-
 ष्टगुणं जलमिति । तथा—“ काथादष्टगुणं वारि, पादस्थं स्याच्चतुर्गु-
 णम् । ज्ञेहात्, ज्ञेहसमं क्षीरं, कल्कस्तु स्नेहपादिकः । चतुर्गुणं
 त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् ” इति । यत्र काथद्रव्यमानमल्पमष्टगुणे
 तोये काथकरणे ज्ञेहचतुर्गुणः काथो न भवति तत्रोक्तमानेन काथद्रव्यं पृष्ट्वा
 षोडशगुणे तोये काथयित्वा पादशेषं ज्ञेहचतुर्गुणं कुर्षादित्यभिप्रायेणोक्तं षोडश-
 गुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्येति । “ अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्त्वात्पञ्चमूलादीनां
 तुलाभावाप्य चतुर्भागावशिष्टमपहरेदित्येष कषायपाककल्पः ।
 तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुलाऽम्भसि । ततः पलप्रते द्रव्ये
 जलद्रोणोऽपि चेप्यते ॥ ” यत्र तुलाद्रव्यं जले पचेदित्युक्तं परं जलप्रमाणं
 नोक्तं, तत्र द्रोणमितं जलं ग्राह्यं; यत्र तु द्रोणमिते जले द्रव्यं पचेदित्युक्तं परं
 द्रव्यप्रमाणं नोक्तं, तत्र द्रव्यं तुलाप्रमाणं ग्राह्यमिति भावः । यत्र कियत्प्रमाणः
 ज्ञेहः साध्य इति नोक्तं तत्र प्रस्थप्रमाणः ज्ञेहः साधनीयः; तथाच ‘ अनिर्दिष्ट-
 प्रमाणानां ज्ञेहानां प्रस्थ इष्यते ’ इति ।

ज्ञेहपाककालनियमः—ज्ञेहान् विपाच्यैव विरामयेत्तु क्षीरे द्विरात्रं
 स्वरसे त्रिरात्रम् । कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रं दध्न्यारनाले पुनरे-
 करात्रम् ॥ अस्याथमर्थः—क्षीरादिद्रवाणि कल्कं चैकथं संसृज्य विपचत् । तत्र,
 क्षीरं कल्कश्च यत्र तत्रैकथं द्वयं संसृज्य पक्त्वा द्विरात्रं विश्रामयेत्; स्वरसः
 कल्कश्च यत्र तत्रैकथं द्वयं संसृज्य पक्त्वा त्रिरात्रं विश्रामयेत्, यत्र केवलः

कल्कस्तत्र कल्कं चतुर्गुणं जलं च संसृज्य पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत्; यत्र कषायः कल्कश्च तत्रैकध्वं द्वयं संसृज्य पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत्; यत्र दधि कल्कश्च तत्रैकध्वं द्वयं संसृज्य पक्त्वा एकरात्रं विश्रामयेत्, यत्र आरनालः कल्कश्च तत्रैकध्वं द्वयं संसृज्य पक्त्वा एकरात्रं विरामयेत्; अत्र दधिसाब्दस्तकस्य, आरनालशब्दश्च सुरादीनां संधानविशेषाणां मूत्रादीनां च उपलक्षणम् । यत्र कल्कश्च क्षीरादीनां द्विध्यादिकानि द्रवाणि च तत्र कल्कं गर्भे दत्त्वा तत्तत् क्षीरादिकं प्रत्येकं दत्त्वा संसृज्य पक्त्वा स्वस्वोक्तकालं विरामयेत्, यथा—क्षीरे द्विरात्रं, स्वरसे त्रिरात्रं, कषाये पञ्चरात्रं, दध्नेकरात्रं, आरनाले चैकरात्रमिति । एतच्च विशेषेण गुणाधानार्थम् । उक्तं हि—“घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् । ऋषि-
तास्तु प्रकुर्वन्नि विशेषेण गुणान् यतः”—इति । विरामरात्राभ्यूनत्वे तु विशेषेण गुणाधानाभावमात्रं न तु ज्ञेहपाकासिद्धिः, अधिकं च न दोषः । सिद्धं ज्ञेहं वलाद्गालयित्वापयुञ्ज्यात् । तत्र मृदुपाकं द्रवसद्रागात्किञ्च सर्वथा न पीडनीयं; मध्यमे मनाङ् पीडनीयं, द्रवाभावात्; खरे तु यथेष्टं पीडनीयं, द्रव-
रहितत्वात् । मध्यपाकस्तु सर्वत्र प्रशस्तः । यदुक्तं,—“चरं पाको मृदुः कार्यः ज्ञेहादीनां न वै खरः । स पूर्णं वीर्यमादत्ते तज्जाहति खरः पुनः” ।

अथ ज्ञेहपाकविज्ञानम् । अत्राह सुश्रुतः—अत ऊर्ध्वं ज्ञेहपाककममु-
पदेश्यामः । स च त्रिविधः । तद्यथा—मृदुः, मध्यः, खरः, इति । तत्र ज्ञेहौषधियेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुः, मधुच्छिद्रमिव विशादमपिलेपि च यत्र भेषजं स मध्यमः, कृष्णमवसन्नमीपद्विगार्दं चिकणं च यत्र भेषजं स खर इति । अत ऊर्ध्वं दग्धज्ञेहो भवति, तं पुनः साधु साधयेत् । तत्र पानाभ्यवहारयोर्मूढः, नस्यःभ्य-
अनयोर्मध्यमः, वस्तिकर्णपूरणयोस्तु खर इति । भवतश्चात्र—
ज्ञानस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा । गन्धवर्णरसादीनां संपत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ घृतस्यैवं विपकस्य जानीयात्कुशलो भिपक् । फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ इति ॥

अथ चूर्णगरीमाश—अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वज्रगालितम् । तत् स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा वर्षसंमिता ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् । चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं लोक्लेद-
कृद्भवेत् ॥ लिङ्गैश्चूर्णं द्रवैः सर्वघृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिबेच्चतु-
गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ चूर्णविधाने द्विविधः प्रचरो दृश्यते घृद-
वैवानाम् । तत्रैके द्विध्यादिद्रव्यनिध्याये चूर्णप्रयोगे प्रत्येकं द्रव्यं संचूर्ण्य द्रव्यगालितं कृत्वा ततो मयोक्तमानेन गृहीत्वा एकैकृत्य प्रयुज्जन्ति; अपरे तु सर्वार्ण्यपि द्रव्याणि यथोक्तमानानि संगृह्य एकध्वं संचूर्ण्य वज्रगालितं कृत्वा व्यवहरन्ति ।

बहुषु प्रयोगेषु चूर्णं जम्बीरार्द्रकादीनां रसैर्भावयेदित्युक्तं, तत्र यस्य भावना देया तस्य यदि स्वरस उपलभ्यते तदा स्वरसेनैव भावयेत्, यदा तु स्वरसो नोपलभ्येत तदा “ भाव्यद्रव्यसमं काथ्यं काथ्यादष्टगुणं जलम् । अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेषु भावना—” इति परिभाषया क्वाथं निष्पाद्य तेनैव भावयेत् । भावनाविधिस्तु— “द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत् । भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णं प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ दिवा दिवाऽऽतपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत् । शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं यथोक्तं भावनाविधिः ” इति । यथोक्तं भावनाविधिरिति सप्तवारं त्रिवारमेकवारं वा यावद्द्वारं भावनोक्ता तावद्द्वारं भावयेदित्यर्थः । अनुक्ते तु सप्तवारं भावयन्ति वृद्धवैद्याः ।

गुटिकापरिभाषा—वटकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नम गुटिका वटी । मोदको वटकः पिण्डी गुण्डी वर्तिस्तथोच्यते ॥ लेडवत्साध्यते वह्नौ गुडा वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलुर्वा, क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी । कुर्याद्वह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटीम् । द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ यथा लेहार्थं गुडदिकं साध्यते तथैवात्र गुडः शर्करा गुग्गुलुर्वा पक्तव्यः । पाके सति चूर्णं प्रक्षिप्य वटकान् कुर्यादिति भावः । गुडपाकश्चक्षुं तु गदनिग्रह एव प्रोक्तम् (प्रयोगखण्ड पृ. १४७) । गुडचद्गुग्गुलोः पाकः सवन्वस्तु विशेषतः । मण्डूराणां च सर्वेषां पाको यं परिकीर्तितः ॥ पक्षान्तरमाह—क्वचिदिति; न सत्र । अवह्निसिद्धेन कुट्टिनेन गुग्गुलुना वटकाः कायाः । अथवा द्रवेण तोवक्षीरदिना, वा मधुना क्षौ-
द्रेण संप्लव्य संमर्थं वटिकां कारयेत् । वटिकायां गुडशर्करादीनां मानं—सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । चर्माङ्गुर्णसप्तः कार्यो गुग्गुर्दुग्धु तत्सप्तम् । द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ एतच्च शर्करादीनां मानमनुक्तप्रमाणेषु प्रयोगेषु ज्ञेयम् ।

अवलेहपरिभाषा—क्वाथदीनां पुनःपाकाद्धनत्वं सा रसक्रिया । क्षोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलेऽन्मिता ॥ अनुक्ते सितादीनां परिमाणमुच्यते—सिता चतुर्गुणा देया चूर्णञ्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ द्रवमिति क्षं द्रवृतादिकम् । चतुर्धा खलु निष्पाद्यते लेहः । तत्र प्रथमः दार्ढ्यादिद्रव्याणां सामान्यक्वाथपरिभाषया क्वाथं निष्पाद्य तं पुनर्यस्यगलितं यावद्धनं भवेत्तावत्पक्वता निष्पाद्यते, तस्य विशेषतो ‘रसक्रिया’ इति नाम्ना प्रसिद्धिः । तथाहि—“गृहीत्वा क्वाथकलेपेन क्वाथं पूतं पुनः पुनः । काथयेत्कृण्विताकारमेवा प्रेक्ता रसक्रिया” इति । द्वितीयास्तु कथ्यद्रव्याणि यथोक्तमानेन काथयित्वा तं कथं वज्रपूतं कृत्वा, तत्र शर्करादिकं प्रक्षिप्य पुनः पक्त्वा पाके सिद्धे चूर्णं प्रक्षिप्य निष्पाद्यते ।

तृतीयः केवलं शर्करादिकं जल पक्त्वा सिद्धे पाके चूर्णादिकं प्रक्षिप्य निष्पाद्यते ।
चतुर्थस्तु चूर्णं यथोक्तमानैः क्षौद्रघृतादिभिः संप्लव्य निष्पाद्यते । अथ लेह्यादौ
चूर्णप्रक्षेपविचारः—प्रायो न पाकश्चूर्णानां भरिचूर्णस्य तेन हि ।
आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते ॥ आसन्नपाक इति उपस्थि-
तपाके नतु पाकमापने, तथा सति प्रचुरचूर्णस्य प्रवेशो न स्यादित्यर्थः । स्वरस्य
चूर्णस्य पाकान्ते कटुष्णदशायां प्रक्षेप इति । पाकलक्षणं तु—सुपक्के तन्तु-
मस्रं स्यादवलेहेऽस्तु मज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्ण-
रसोद्भवः ॥ तथा—रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्वाढमर्दनात् ॥
इति । स्थिरत्वमिति निश्चलत्वम् । एतेन द्रवरहित इत्यर्थः । मुद्राऽत्र निम्नता ।

अथ आसवारिष्टपरिभाषा—द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संहितं भवेत् ।
आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ यदपक्वौषधाम्बुभ्यां
सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः काथसिद्धः स्यात्तन्मानं त्रिपलो-
न्मितम् ॥ अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडात्तुलाम् । क्षौद्रं दद्याद्गुडा-
दर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ प्रक्षेपं पञ्चाह्वयं द्रव्यं धातकीगुणादिकं, दशमां-
शिकं गुडपरिमाणादित्यर्थः । काथ्यद्रव्याणि द्राक्षादीनि यथोक्तमानैर्जले निष्काथ्य
वल्गुपूतं विधाय गुडादिकं धातकीकुसुमादिकं च यथोक्तमानेन प्रक्षिप्य घृतभाषिते
दृढे मृन्मये कुम्भे यावदर्धं प्रपूय कुम्भं शरावेण पिधाय पक्षं मासं वा भूमा
संस्थाप्य जातरसे उद्धृत्य वल्गुगालितं कृत्वा उपयुज्यादित्यरिष्टविधिः । आसव-
करणे तु जलादौ द्रवे एव गुडादीनि प्रक्षिप्य संधानं, न काथकरणम् । शेषं अरिष्टवत् ।

अथ भेषजमात्राविचारः—न्यूनं चेन्मात्राया द्रव्यं न व्याधीन् चिति-
वर्तयेत् । मात्रयाऽधिकया युक्तं जनयेच्चापदं परम् ॥ मात्राया
नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः । व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य
मात्रां प्रयोजयेत् ॥ तथाऽप्यल्पबुद्धीनामवबोधाय तत्र तत्र यथास्थूलं मात्रा-
निर्देशः कृत इति ज्ञेयम् । संप्रति मनुष्याणां अल्पदेहबलवत्त्वात् प्राचीनग्रन्थयुक्त-
मात्रापेक्षया पादप्रमाणा अर्धा वा मात्रा देया ।

आयुर्वेदीयग्रन्थमालायां प्रसिद्धीभूता ग्रन्थाः ।

गदनियमः—श्रीसोढलवैद्यविरचितः । तस्य प्रयोगखण्डात्मकः प्रथमो भागः (द्वितीयं संस्करणं) मूल्यं रूप्यकद्वयं; तस्यैव द्वितीयो भागः कायचिकित्सा-शल्य-शालाक्य-भूततन्त्र-कौमारतन्त्र-रसायनतन्त्र-वाजीकरणतन्त्र-पद्म-कर्मविध्याख्यानखण्डात्मकः । मूल्यं—सार्धरूप्यकचतुष्टयम् ।

रसरत्नाकरान्तर्गतश्चतुर्थो रसायनखण्डः—श्रीनित्यनाथसिद्धविरचितः मूल्यं ८ आणकाः ।

आयुर्वेदप्रकाशः—श्रीमदुपाध्यायमाधवविरचितः । द्वितीयं संस्करणम् । मूल्यं रूप्यकद्वयम् ।

क्षेमकुतूहलम्—क्षेमशर्माविरचितः पाकशास्त्रग्रन्थः । मूल्यं १२ आणकाः ।

रसप्रकाशसुधाकरः—श्रीयशोधरविरचितः तथा रससंकेतकलिहा-कायस्थचामुण्डविरचिता । द्वितीयं संस्करणं; मूल्यं रूप्यकद्वयम् ।

रसपद्धतिः—श्रीविन्दुपण्डितविरचिता श्रीमहादेवविरचितटीकासहिता; तथा लोहसर्वस्वम्—श्रीपुरेश्वरविरचितम् । मूल्यं—रूप्यकद्वयम् ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्य जादवजी त्रिकमजी आचार्य—

नं. १८, होली चकला, फोर्ट, बंबई.

चरकसंहिता—वैद्यरत्नकविराजश्री गोगान्द्रनाथसेनीवरीचतचरकपेक्षाः व्याख्यासहिता. सूत्रस्थानात्मकः प्रथमः खण्डः, मूल्यं दशरूप्यकाः । निदान-विमान-शारीर-इन्द्रियस्थानात्मको द्वितीयः खण्डः, मूल्यं षड् रूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्यरत्न कविराज श्रीयोगीन्द्रनाथसेन एम. ए.

न० ३१. प्रसन्नकुमार टागोर स्ट्रीट, पाथुरिया घाट—कलकत्ता.

अष्टाङ्गसंग्रहः (बृद्धवाग्भटः) मूल्यं—द्वादशरूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—वैद्य कृष्णशास्त्री देवधर; नासिक.

प्रत्यूषशारीरम्—महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथसेनविरचितम्—प्रथमो भागः—मूल्यं रूप्यकपञ्चकम्

सिद्धान्तनिदानम्—महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनविरचितम् । प्रथमो भागः । मूल्यं रूप्यकद्वयम् ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेन—

नं. ९४ प्रेस्ट्रीट, कलकत्ता.

भेडसंहिता—मूल्यं नवरूप्यकाः ।

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

Oriental Book Supplying Agency.

Shukravar path. Poona

१००४